नवीनावृत्तिकी प्रस्तावना.

यह ग्रन्थ सवत् १९५७ में छपकर प्रकाशित हुआ था. आज ७
पश्चात् यह दूसरा सस्करण प्रकाशित होता है । पहला सस्करण मूल
सहित प्रकाशित हुआ था, परन्तु जैनसमाजमें सस्कृत जाननेवालोंकी
थोडी है. इससे तथा मूल्य अधिक न होने पावे इस ख्यालसे इस सस्क
केवल भाषानुवादही प्रकाशित होता है।

आकलूजकी प्रतिष्ठामें बाटनेके कारण जिसप्रकार इसका पहला स
शीघ्रतासे तयार किया गया था, उसी प्रकारसे कुडलपुरके मेलेमें लेजानेके
ण यह दूसरा संस्करण भी जल्दी मुद्रित कराया है । इसलिये अव
हमारी इच्छानुसार इसका सशोधन नहीं हो सका है । तौभी एक पं
शयने इस अनुवादको एकबार मूलसे मिलाकर सशोधित कर दिया
सम्बन्धी अशुद्धियोंके लिये पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं ।

इस ग्रन्थके मूलकर्त्ता श्रीअमितगत्याचार्य विक्रमकी दशवीं
उत्तरार्धमें हुए हैं । उनके बनाये हुए सुभाषितरत्नसंदोह, श्रावकाचा
धर्मपरीक्षा ये तीन ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं । सुभाषितरत्नसदोह का
प्रकाशित हो चुका है । श्रावकाचारकी भाषाटीका पडितवर्य भाघचन्द्र
है । परन्तु अभीतक प्रकाशित नहीं हुई है । इनके सिवाय जम्बूद्वीप प्रज्ञ
द्वयद्वीप प्रज्ञप्ति, भावनाद्वात्रिंशतिका, पंचसग्रह, चन्द्रप्रज्ञप्ति और व्याख
ये छह ग्रन्थ औरभी उक्त आचार्यकृत हैं। परन्तु अभीतक

आचार्य महाराजने यह धर्मपरीक्षा ग्रन्थ संवत्
श्रावकाचार और सुभाषित रत्नसंदोह सवत १०५० में ब
धारा नगरीमें राजा मुञ्ज राज्य करते थे। सुनते हैं कि म
९ रत्न थे. जिनमें एक यह भी थे । स्मरण रहै कि, इनके
उत्पत्ति नहीं हुई थी । ये काष्ठासघके माथुर साम्प्रदायिक पट्ट
वर्णन ग्रन्थके अन्तमे जो प्रशस्ति दी है, उससे जानना
परीक्षा ग्रन्थ उन्होंने केवल दो महीनेमें बनाया था । जिसर
पाडित्यका अनुमान सहज ही हो सकता है ।

मूल ग्रन्थमें जो आनन्द है, और कविताकी जैसी छटा है, उसका
पाठकोंको इस अनुवादसे नहीं हो सकता तौ भी जहातक बन सका हमने
किया है । यदि मूलका दशाश आनन्द भी पाठक प्राप्त कर सके, तो हम
परिश्रमको सफल समझेंगे । इति शुभम

बम्बई,
१५-३-०८ ई.

समाजका हितैषी—
ल बाकलीवाल.

श्रीवीतरागाय नमः ।

धर्मपरीक्षा ।

मङ्गलाचरणम्

श्रीमान्नभस्वत्त्रयतुङ्गशालं जगद्गृहं बोधमयः प्रदीपः ।
समन्ततो द्योतयते यदीयो भवन्तु ते तीर्थकराः श्रिये नः ॥ १ ॥
कर्मक्षयानन्तरमर्चनीयं विविक्तमात्मानमवाप्य पूतं ।
त्रैलोक्यचूडामणयो भवन्ति भवन्तु मुक्ता मम मुक्तये ते ॥ २ ॥
वचोंऽशुभिर्भव्यमनःसरोजं निद्रा न वै बोधितमेति भूयः ।
कुर्वन्तु दोषोदयनोदिनस्ते चर्यामगर्ध्यां मम सूरिसूर्याः ॥ ३ ॥
शरीरजानामिव भाक्तिकानामनुग्रहार्थं पितरौ वनानि ।
यच्छन्ति शास्त्राण्यपसेदुषा ये तेऽध्यापका मे विधुनन्तु दुःखं ॥ ४ ॥
कदर्थिताशेषजगत्त्रयं ये विदारयन्ते समशीलशस्त्रैः ।
कषायशत्रुं शमसाधुयोधाः कुर्वन्तु ते सिद्धिवधूवरत्वं ॥ ५ ॥
यस्याः प्रसादेन विनीतचेता दुर्लंघ्यशास्त्रार्णवपारमेति ।
सरस्वती मे विदधातु सिद्धिं सा चिन्तिता कामदुघेव धेनुः ॥ ६ ॥
स्तवैरमीभिर्मम धूयमानाः नश्यन्तु विघ्नाः क्षणतः समस्ताः ।
द्विजयन्तो जनता प्रवृद्धैः सद्यः समीरैरिव रेणुपुञ्जाः ॥ ७ ॥

दोहा

पंचपरमपद वंद करि, धर्मपरीक्षा ग्रन्थ ।
लिखूं वचनिकामय सरल, जो शिवपुरको पन्थ ॥ १ ॥

जिनका ज्ञानरूपी दीपक तीन वातवलयरूपी उत्तङ्ग ...हर कोटवाले इस जगत्‌रूपी गृहको चारों तरफ उद्योत ...ता है, वे तीर्थङ्कर भगवान् हमारे कल्याणरूपी लक्ष्मीके ... कारणरूप होवो ॥ १ ॥ जो समस्त कर्मोंके नाश होनेपर ...प, अतिपवित्र और परकीय उपाधिसे रहित निजस्वरू-

पको प्राप्त होकर तीन लोकमें शिरोमणिभूत होते हैं, वे सिद्ध भगवान् मेरी मुक्तिके लिये कारणभूत होवो ॥ २ ॥ जिनके वचनरूपी किरणोंसे भव्यपुरुषोंके मनरूपी कमल प्रफुल्लित होकर पुनर्वार निद्राको (संकोचभावको) प्राप्त नहिं होते, और दोषरूपी रात्रिके उदयको दूर करनेवाले हैं, वे आचार्योंमें सूर्य्यसमान आचार्य परमेष्ठी मेरी चर्य्याको निर्दोष करो ॥ ३ ॥ जैसे भक्तिमान् पुत्रको मातापिता धनादिक सम्पत्तियें प्रदान करते हैं, उसीप्रकार अपने शिष्य वर्गोंको धार्मिक शिक्षारूपी धनके देनेवाले उपाध्याय मेरे समस्त दुख हरो ॥ ४ ॥ जो तीन जगत्को पीड़ित करनेवाले कषायरूपी शत्रुको समता शीलादि शस्त्रोंसे विदारण करते हैं, वे समभावके धारक साधुरूप योद्धा मुझे मोक्ष-रूपी लक्ष्मीका पति करो ॥ ५ ॥ जिसके प्रसादसे विनयी पुरुष दुर्लंघ्य शास्त्ररूपी समुद्रके पार हो जाते हैं, वह सरस्वती (जिनवाणी) मुझे कामधेनुकी तरह मनोरथकी सिद्धि करो ॥ ६ ॥ जिस प्रकार प्रवल पवनसे रेणुपुंज शीघ्र ही उड़ जाते हैं, उसी तरह इन स्तवनोंकर जगत्को उपद्रव करनेवाले कम्पायमान होते हुए मेरे समस्त विघ्न क्षणभरमें नाशको प्राप्त होवो ॥ ७ ॥

अपने गुणोंसे तीन लोकको आनन्द करनेवाले सुजनपर दुष्ट (खल) कोप करता है। जैसे अपनी किरणोंसे रात्रिको शोभायमान करनेवाले चन्द्रमाको देखकर क्या राहु नहिं ग्रसता? ग्रसता ही है ॥ ८ ॥ क्योंकि सत्पुरुषको देखकर दुर्जन, त्यागी ब्रह्मचारीको देखकर कामी, स्वभावसे

रात्रिमें जगनेवालेको देखकर चौर, धर्मात्माको देखकर पापी, शूरवीरको देखकर भीरु (कायर) और कविको देखकर अकवि (मूर्ख) कोपको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ मैं शंका करता हूं कि विधाताने सर्प, खल और काल (यमराज) ये परके अपकारार्थ ही बनाये हैं। यदि ऐसा नहिं होता तो, ये सब सुखरूप तिष्ठती प्रजाको देख किसलिये उद्वेगरूप करते ? ॥ १० ॥ कवियोंकर आराध्यमान किया हुवा भी खल अपनी वक्रताको नहिं छोड़ता. जैसे, परको ताप करनेमें प्रवीण अग्नि, पूजा की हुई भी जला देती है. अपने स्वभावको नहिं छोड़ती ॥ ११ ॥ आचार्य्य शंका करते हैं कि, विधाताने मेघ, चन्दन, चन्द्रमा और सत्पुरुष ये ४ पदार्थ एक ही जातिके बनाये है. यदि ऐसा नहिं होता तो ये सब विना कारण ही जनोंका निरन्तर महान् उपकार क्यों करते ? ॥१२॥ क्या राहुकर पीड़ित किया हुवा (ग्रसा हुवा) भी चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणोंसे तृप्त नहिं करता ? अवश्य करता है. इसी प्रकार दुर्जनोंकर तिरस्काररूप किया हुवा भी सज्जन पुरुष अपने गुणोंसे सदा उपकार ही करता है ॥ १३ ॥ जैसे स्वभावसेही चन्द्रमाको शीतल और सूर्यको उष्ण देख कोई भी रागद्वेष नहिं करते. उसी प्रकार सज्जनमें गुण और दुर्जनमें दोष देखकर सत्पुरुष कुछ भी तोष रोष (हर्षविषाद) नहिं

---

(१) यह दृष्टान्त अन्यमतकी अपेक्षा है क्योंकि अन्यमतावलम्बी ब्रह्माको (विधाताको) जगत्का कर्ता मानते हैं जैनी जगत्को अनादिनिधन मानते हैं. परतु कहीं २ दृष्टान्त वगेरहमें अन्यमतकी अपेक्षा कहनेकी अनेक आचार्य्योंकी रूढि है सो पाठक महाशय इसको सत्य व जिनमतप्रतिपाद्य न समझ लें ।

करते ॥ १४ ॥ जो धर्म गणधरोंकर परीक्षा किया गया है वह मुझकर किसप्रकार परीक्षा किया जा सक्ता है? क्योंकि जिस वृक्षको गजराज तोड़ डालता है उसको शशक (खरगोश) कदापि नहिं तोड़ सक्ता ॥ १५ ॥ परंतु प्रवीण आचार्य्योंनें जिस धर्ममें प्रवेशकर सरल कर दिया, उसमें मुझ सरीखे मूर्खका भी प्रवेश हो सक्ता है. क्योंकि वज्रकी (हीरेकी) सूईसे छिद्र किये हुए मुक्तामणिमें नरम सूत्र भी प्रवेश करता देखिये है ॥ १६ ॥

अथानन्तर अकृत्रिम जम्बूवृक्षकर चिन्हित, अनेक रत्नमयी रचनाकर युक्त, तथा अनेक राजाओंकर सेव्यमान चक्रवर्ति राजाकी सदृश चारों तरफसे अनेक द्वीप समुद्रोंकर वेष्टित, लक्ष योजन है व्यास जिसका ऐसा गोलाकार यह जम्बूद्वीप है ॥ १७ ॥ इसमें हिमाचल पर्वतकी दक्षिण तरफ तीन तरफसे समुद्रकर वेष्टित, धनुषाकार अति मनोहर यह भरतक्षेत्र है. सो ऐसा शोभता है कि मानो अपनी धनुषाकाररूप शोभासे कामदेवके धनुषको भी तिरस्कार करता है ॥ १८ ॥ और षट् आवश्यकोंकर मुनियोंके निर्दोष चारित्रकी तरह अपने अति मनोहर छहखंडोंके द्वारा मनुष्योंकर याचना करने योग्य चक्रवर्त्तिकीसी लक्ष्मीको (शोभाको) प्रगट करता है ॥१९॥ क्योंकि यह क्षेत्र हिमाचलसे निकली हुई गंगा सिन्धु दो वडी नदियोंकर तथा विजयार्द्ध पर्वतकर विभाग किया हुवा ६ खंड हो गया है. शुभ अशुभ रूप कर्मोंका समूह जैसे अनेक विशेषता लिये मन वचन कायके तीनों योगोंकर ६ प्रकार हो जाता है ॥ २० ॥ इस

भरतक्षेत्रके मध्य अनेक रमणीय स्थानोंकर संयुक्त पूर्वके समुद्र तटसे लेकर पश्चिम समुद्रकी तट पर्यन्त लम्बा (यहां-तक चक्रवर्त्तीकी आधी विजय होनेके कारण) यथार्थ नामका धारक विजयार्द्ध नामा पर्वत है. सो कैसा शोभता है कि मानों अपना देह पसारकर शेषनाग ही पड़ा है ॥ २१ ॥ वह विजयार्द्ध बढ़ी हुई अपनी किरणोंके समूहसे नाश किया है महा अन्धकार जिसने ऐसा प्रकाशमान होता हुवा पृथिवीको भेदकर निकले हुये दूसरे सूर्य्यकी सदृश शोभाको प्राप्त हो रहा है ॥ २२ ॥ इस विजयार्द्ध पर्वतके उत्तर और दक्षिण तरफ विद्याधरोंकर सेवनीय दो श्रेणी हैं. सो कैसी हैं कि श्रवण करने योग्य मनोहर हैं गीत जिनके ऐसे, भ्रमरोंकर सहित हस्तीके दोनों गंडस्थलोंपर मानो मदरेखा ही है ॥ २३ ॥ उनमेंसे दक्षिण श्रेणीपर ५० और उत्तर श्रेणी-पर ६० इसप्रकार ११० निर्दोष कांतिवाले विद्याधरोंके नगर द्वादशांगके ज्ञाता गणधर भगवान्‌ने कहे हैं ॥ २४ ॥ सो यह उत्तंग विजयार्द्ध पर्वत विचित्र प्रकारके पात्र (पूज्य पुरुष) कटक (सेना) और रत्नोंके खजानोंकर प्रकाशमान, देव और विद्याधरोंकर सेवनीय है चरण जिसके ऐसे चक्रवर्त्ति राजाकी समान शोभता है॥२५॥उसपर सिद्धवरकूटके अकृत्रिम चैत्यालयोंमें विराजमान जिनेन्द्र भगवान्‌के अकृत्रिम प्रतिबिम्ब सेवन किये हुये भव्यपुरुषोंके दुःखोंको शीतको अ-ग्निशिखाकी समान नष्ट करते हैं॥२६॥ जहांपर कर्मरूपी रजको नष्ट करनेमें तत्पर ऐसे चारणऋद्धिके धारक मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छा करनेवाले) मुनिगण अपने वचनोंकर गर्दको दूर

करनेमें उद्यत ऐसे गंभीर शब्दवाले वादलोंकी वर्षा समान जनसमूहको आस्वासन करते हुए उपदेश करते हैं ॥ २७ ॥ उस विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीपर वैजयंती नामकी प्रसिद्ध नगरी है. सो कैसी है कि, मानो अनेक प्रकारके प्रकाशमान अपने विमानोंकर शोभित देवोंकी नगरीको जीतती है ॥ २८ ॥ उस नगरीमें समस्त जन भोगभूमियोंकी समान निराकुलतापूर्वक मनोवांछित भोगोंको भोगते हुये परस्पर गाढानुराग सहित सुखसे काल विताते हैं ॥ २९ ॥ आचार्य्य शंका करते हैं कि,—मानो प्रजाको समस्त सुन्दरता एक ही जगहँ दिखानेके लिये ही विधाताने उस नगरीमें समस्त गृह उत्तमोत्तम मनोहर चुन चुनके वनाये हैं ॥ ३० ॥ आचार्य कहते हैं कि,—जिस नगरीमें अपनी प्रभा करके स्त्रियोंने तो स्वर्गकी देवांगनाओंको, विद्याधरोनें देवोंको, विद्याधरोंके राजाओंने इन्द्रोंको, मकानोने विमानोंको जीत लिया, उस वैजयन्ती नगरीका वर्णन हमसे किसप्रकार होसक्ता है ? कदापि नहिं हो सक्ता ॥ ३१ ॥ उस नगरीमें स्वर्गके इन्द्रकी समान अपने प्रतापकर तिरस्कार किया है शत्रुओंका तेज जिसने ऐसा, तथा वज्रसे (वज्रशस्त्र वा हीरामणिसे) शोभायमान है हाथ जिसका ऐसा जितशत्रुनामा विद्याधरोंका मंडलीक राजा राज्य करता था ॥ ३२ ॥ यद्यपि वह राजा अन्यके दोप प्रगट करनेमें तो मौनी था, परन्तु न्यायशास्त्रके विचार करनेमें मौनी नहीं था. तथा परधन हरनेके लिये तो हस्तरहित था, परन्तु गर्विष्ठ वैरियोंका गर्व दूर करनेके लिये हाथ रहित नहीं था

॥ ३३ ॥ तथा परस्त्रियोंको अवलोकनमें तो वह अन्धा था परन्तु जिनेन्द्र भगवान्‌की मनोहर प्रतिमाओंके दर्शन करनेके लिये अन्धा नहीं था। यद्यपि पाप कार्य्य करनेके लिये तो वह शक्ति रहित निर्बल था, परन्तु शिवसुखकारी धर्मकार्योंको सम्पादन करनेके लिये शक्तिहीन नहीं था ॥ ३४ ॥ चन्द्रमा तो कलंकी है, सूर्य आतापकारी है, समुद्र जड़रूप है, सुमेरुपर्वत कठोर है और इन्द्र गोत्रभेदी है. इसकारण चन्द्र सूर्य्य समुद्र सुमेरु और इन्द्र उस राजाकी समान नहिं होसके. क्योंकि उस राजामें उपर्युक्त अवगुणोंमेंसे एक भी अवगुण नहीं था ॥ ३५ ॥ यद्यपि वह राजा पार्थिव था, परन्तु पार्थिव कहिये पृथ्वीका विकार पापाणादि जड़रूप अज्ञानी नहीं था, किन्तु उत्तम ज्ञानका धारक था. तथा वह राजा पावन (पवित्र) था, परन्तु पावन कहिये पवनका विकार अस्थिर नहीं था, अर्थात् स्थिरचित्त वाला था. तथा वह राजा कलानिधान (कलाओंका निधान चतुराइयोंका सागर) था, परन्तु कलानिधान कहिये चन्द्रमाकी सदृश कलंकी नहीं था, अर्थात् सर्वदोषरहित था. इसके सिवाय वह राजा वृषवर्द्धन (धर्मका वढानेवाला) होनेपर भी वृषवर्द्धन कहिये महादेवकी तरह स्त्रीका अनुरागी नहिं था, किन्तु सत्यानुरागी था ॥ ३६ ॥ उस राजाके जिन धर्म सम्बन्धी पारमार्थिक तथा सांसारिक विद्याओंकी जानकार, और वृद्धिरूप है कामरूपी पवनका वेग जिसके ऐसी, वायुवेगा नाम विद्याधरी अतिशय प्यारी रानी होती भई ॥३७॥ किसी किसी स्त्रीमें नेत्रोंको हरण करनेवाला रूप होता है

और किसी २ स्त्रीमें विद्वानोंकर प्रशंसनीय शील भी होता है. परन्तु उस वायुवेगा रानीमें अनन्यलभ्य कहिये अन्य किसी स्त्रीमें नहिं पाया जाय ऐसा महाकान्ति सहित रूप और शील दोनो होते भये ॥ ३८ ॥ महादेवके पारवतीकी सदृश, विष्णुके लक्ष्मीकी सदृश, दीपकके शिखाकी तरह, साधुके दयाकी समान, चन्द्रमाके चांदनीकी समान, सूर्यके प्रभाकी समान उस जितशत्रु राजाके वह मृगाक्षी अभिन्नरूप (दो देह होनेपर भी एक रूप) प्रिया होती भई ॥ ३९ ॥ आचार्य्य उत्प्रेक्षा करते हैं कि,—विधाताने उस महाकान्तिवाली वायुवेगाको वनाकर उसकी रक्षा करनेके लिये कामको मानो रक्षक ही वनाया है. यदि ऐसा न होता तो उसे देखनेवाले समस्त जनोंको कामदेव अपने वाणोंसे काहेको वेधता ? अर्थात् वह रानी वडी रूपवती थी. उसको जो कोई देखता वही कामवाणके मारे पागलसा हो जाता था ॥४०॥ वह वायुवेगा हाथोंकर तो पत्रमयी और, नेत्रोंकर पुष्पमयी और स्तनोंकर फली हुई, और तरुण पुरुषोंके नेत्ररूपी मृगोंकर अवगाहित (अवगाही हुई) तरुणतारूपी मनोहर वेलकी समान शोभती थी ॥ ४१ ॥ चिंतवन करते ही प्राप्त है मनोहर भोग जिसको ऐसा, वह परम सुन्दर जितशत्रु राजा उस वायुवेगाके साथ रमता हुवा सचीके साथ इन्द्र तथा रतिके साथ कामकी तरह समय विताता था ॥४२॥ सो वह तन्वी उस विद्याधरोंके राजा द्वारा सेवन की हुई, प्रशंसनीय है वेग जिसका, महा उदयरूप, शोकको दूर करनेवाले, नीतिकी तरह प्रार्थना करनेयोग्य मनोवेग नामा पुत्रको जनती हुई

॥४३॥ सो अपने कलाके समूहसे चन्द्रमाकी तरह नष्ट किया है अन्धकार जिसने ऐसा, निर्मल चरित्रवाला वह कुमार दिनों-दिन अपने निर्मल गुणसमूहके साथ २ बढ़ता हुवा ॥ ४४ ॥ जैसे लक्ष्मीका (रत्नोंका) घर, स्थिर, गंभीर, समुद्र अपनी लहरोंसे नदियोंका ग्रहण करता है, तैसें यह कुमार भी अपनी निर्मलबुद्धिसे राजाओंकी चार प्रकारकी विद्यायें ग्रहण करता हुवा॥४५॥ तथा यह महानुभाव बाल्यावस्थामें ही मुनींद्र महाराजोंके चरणकमलोंका भँवरा, जिनेन्द्र भगवानके वाक्यामृतके पानसे पुष्ट, समीचीन जैनधर्मका अनुरागी, पूजनीयबुद्धिका धारक होता भया ॥ ४६ ॥ अनन्त है सुख जिसमें ऐसी परमपूज्य, सिद्धवधूको शीघ्र ही वश करनेमें समर्थ, भवरूपी दावानलको जलकेसमान ऐसे क्षायिक सम्यक्तरूपी रत्नको वह कुमार धारण करता हुवा ॥ ४७ ॥ उस सुचतुर मनोवेगका मनवांछित कार्य्यकी सिद्धि करनेवाला प्रियापुरी नगरीके विद्याधर राजाका वेगशाली पवनवेग नामा पुत्र प्रिय मित्र होता. भया सो जिसप्रकार अग्निको वेगरूप करनेके लिये पवन होता है, उसीप्रकार यह पवनवेग भी मनोवेगके मनको वेगरूप (चंचल) करनेवाला मित्र होता हुवा ॥ ४८ ॥ ये दोनों मित्र परस्पर एक दूसरेके विना एक क्षण भी रहनेमें असमर्थ, महा प्रतापशाली, सूर्य्य और दिनकी तरह एकही जगहँ रहनेवाले, सज्जन पुरुषोंको सन्मार्ग प्रकाश करनेमें प्रवीण होतेभये ॥ ४९ ॥ इन दोनोंमेंसे प्रियापुरीके राजाका पुत्र पवनवेग महा मिथ्यात्वरूपी विषसे मूर्छित, जिनेन्द्र भगवानके कहे हुये तत्त्वोंसे बाह्य, कुतर्क और खोटे दृष्टान्त देने

आदिमें बड़ा विवाद करनेवाला था ॥ ५० ॥ परन्तु जिनेन्द्रके धर्मरूपी अमृतमें मग्न है चित्तकी वृत्ति जिसकी ऐसा मनोवेग भव्य, उसको जिनधर्मसे विमुख मिथ्याती देख मनही मन असह्य शोकके साथ संतापित होता भया ॥ ५१ ॥ बडे कष्टसे है अन्त जिसका ऐसे दुःखमें पड़ते हुये मिथ्यात्वसे मूर्च्छित इस मेरे मित्रको निवारण करूंगा क्योंकि सुधीलोग उसीको हितैषी मित्र कहते हैं कि जो कुमार्गसे छुड़ाकर समीचीन पवित्र धर्ममें लगावे ॥ ५२ ॥ मिथ्यात्वसे छुड़ाकर किसप्रकार अपने मित्रको जिनधर्ममें लगाना चाहिये, इत्यादि विषयको ही अहोरात्र चिंतवन करता हुवा मनोवेग निद्रारहित होता भया अर्थात् इसी चिंताके कारण मनोवेगको रात्रिमें निद्रा भी नहिं आती थी ॥ ५३ ॥ वह मनोवेग नित्य ही अढाई द्वीपके कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयोंका (मंदिरोंका) दर्शन करता हुवा फिरता था. क्योंकि सत्पुरुष हैं वे धर्म कार्य्योंमें कदापि आलस्य नहिं करते ॥ ५४ ॥

एकदिन मनोवेग कृत्रिम अकृत्रिम दोभेदरूप समस्त चैत्यालयोंके दर्शन करके अपने घरको लोटकर आता था, सो मार्गमें एक जगहँ उसका विमान अटक गया ॥ ५५ ॥ अपने विमानके अटक जानेसे घबरा गया है चित्त जिसका ऐसा मनोवेग विचार करने लगा कि यह विमान किसी वैरीने अटका दिया अथवा किसी ऋद्धिधारी मुनिके प्रभावसे अटका है ? ॥ ५६ ॥ विमानके अटकनेका कारण जाननेके लिये मनोवेग नीचे पृथिवीको देखता हुवा सो उसने अनेक पुर ग्रामोंकर अत्यन्त रमणीय मालव देशको देखा ॥ ५७ ॥

उस मालव देशके मध्यभागमें जगत्प्रसिद्ध अतिविस्तीर्ण, पृथिवीकी उत्तम ऋद्धि और शोभाको देखनेके लिये मानो स्वर्गपुरी ही आई हो, ऐसी उज्जयिनी नामा नगरी देखी॥५८॥ उस नगरीका कोट चन्द्रमाकी किरणसमान उज्ज्वल और बहुत ऊंचा शोभायमान है सो मानों उज्वल रत्नसे विभूषित मस्तकसे पृथ्वीको भेदकर स्वर्गको देखनेके लिये शेषनाग ही प्रवर्त्ता है॥५९॥ उस नगरीके चारों तरफ वेश्याकी मनोवृत्तिके सदृश उत्पन्न हुये है बड़े बड़े जलजंतु जिसमे उनकर वक्र और कष्टरूप है प्रवेश जिसका तथा अतलस्पर्श है मध्यभाग जिसका ऐसी खाइ शोभायमान है भावार्थ—वह खाई वेश्याके मनोभावको जतानेवाली है ॥ ६० ॥ उस नगरीमें मकान ऐसे हैं कि जिनके शिखर आकाशको स्पर्श करते है, और जिनमें मृदंगादि अनेक प्रकारके वाजोंके शब्द हो रहे हैं मानो वे राजभवन अपनेपर फहराते हुये धुजारूपी हाथोंके द्वारा कलिके प्रवेशको निवारण ही कर रहे हैं ॥ ६१ ॥ उस नगरीमें स्त्रियें वडी चतुर रमणीय रूपवती शोभायमान भ्रूरूपी धनुपके द्वारा नेत्रोंके कटाक्षरूपी वाणोंको चलाकर तरुणजनोंके समूहको व्यथित करती हुई स्वर्गकी देवांगनाओंको भी जीतती थीं ॥ ६२ ॥ ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि, जिस नगरीको देखकर महानिधानके अधिपतिपनेका गर्व रखनेवाले कुवेर भी अपने हृदयमें दुर्निवार लज्जाको प्राप्त होते हैं, उस नगरीका वर्णन किसप्रकार हो सक्ता है ? ॥६३ ॥ उस नगरीकी उत्तर दिशामें परस्पर विरोध रखनेवाले जीवोंकर विगाह्यमान, समस्त दिशाओंको उद्योत करनेवाला

एक मनोहर वन सत्पुरुषोंके समान शीघ्र फल देनेवाले तथा तृप्त किये हैं समस्त प्राणियोंके समूह जिन्होंने ऐसे, और समस्त ऋतु सम्बन्धी दिखाई है विचित्र शोभा जिन्होंने, समस्त इन्द्रियोंको आनन्द देनेवाले और मनको अतिशय प्रिय ऐसे जीवोंके समान अनेक महाफलोंसे शोभायमान है ॥ ६४–६५ ॥ उस वनमें नर सुर और विद्याधरोंकर उपासित, केवलज्ञानी, नष्ट किया है घातिया कर्म जिन्होंने, संसारसमुद्रसे तरनेको नौका समान, बहुत ऊंचे स्फटिकमयी सिंहासनपर विराजमान, प्रफुल्लित किरणोंके समूहकर चन्द्रमाकी तरह मुनियोंकर सेवित, अपने यशरूपी पुंजको प्रकाश करते हुये एक महामुनि देखे ॥ ६६–६७॥ सो तीनभवनके इन्द्रों-कर वंदनीय ऐसे मुनीश्वरको देखकर जैसे मयूरको रजके हरण करनेवाले मेघको देखकर अथवा चिरकालके बिछुरे हुये प्रिय सहोदरको देखनेसे आनन्द होता है उसी प्रकार मनो-वेग महाआनन्दको प्राप्त होता भया ॥ ६८ ॥ तत्पश्चात् वह मनोवेग मुनिमहाराजके चरणोंके दर्शनार्थ अति उत्सुक हो आकाशसे उतरकर इन्द्रकी समान वनमें प्रवेश करता हुवा. कैसा है मनोवेग कृती कहिये पंडित है, और फैली हुई है रत्नोंकी ज्योति जिसमेंसे ऐसे मुकटकर अत्यंत शोभाय-मान है ॥ ६९ ॥ अप्रमाण है श्रुत अवधि आदि ज्ञानके भेद जिनके, मस्तकपर स्थापे हैं हाथ जिन्होंने ऐसे, मनुष्य विद्याधर देवनेक समूहकर वंदनीक, यति मुनियोंकर सहित जिनेन्द्र केवली भगवानको वारंवार नमस्कार करके वह

मनोवेग सन्तुष्टचित्त हो मुनियोंकी सभामें बैठता हुवा ॥७०॥

इति श्री अमितगत्याचार्य्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें प्रथमपरिच्छेद पूर्ण भया ॥ १ ॥

अथानन्तर उस सभामें किसी एक भव्य पुरुषने अवधि ज्ञानी मुनिमहाराजको नमस्कार करके विनय सहित पूछा कि ॥ १ ॥ हे भगवन् ! इस असार संसारमें फिरते हुये जीवोंको सुख तो कितना है और दुःख कितना है सो कृपा करके मुझे कहिये ॥ २ ॥ यह प्रश्न सुनकर मुनिमहाराजने कहा कि हे भद्र ! संसारके सुख दुःखका विभागकर कहना बडा कठिन है, तथापि एक दृष्टान्तके द्वारा किंचिन्मात्र कहा जाता है. क्योंकि दृष्टान्तके विना अल्पज्ञ जीवोंकी समझमें नहिं आता सो ध्यान देकर सुन ॥ ३–४ ॥

अनेक जीवोंकर भरी हुई इस संसाररूपी अटवीकी समान एक महा वनमें दैवयोगसे कोई पाथिक (रस्तागीर) प्रवेश करता हुवा ॥ ५ ॥ सो उस वनमें यमराजकी समान सूंडको ऊंची किये हुये क्रोधायमान वहुत वडे भयङ्कर हाथीको अपने सन्मुख आता हुवा देखा ॥ ६ ॥ उस हाथीने उस भयभीत पथिकको भीलोंके मार्गसे अपने आगें कर लिया सो उसके आगे २ भागता हुवा वह पथिक पहिले नहिं देखा ऐसे अन्धकूपमें गिर पडा ॥ ७ ॥ जिसप्रकार दुर्गम नरकमें नारकी धर्मका अवलम्बन करके रहता है, उसीप्रकार वह भयभीत पथिक उस कूपमें गिरता २ सरस्तंव कहिये सरकी जडको अथवा वडकी जडको पकडकर लटकता हुवा

एक मनोहर वन सत्पुरुषोंके समान शीघ्र फल देनेवाले तथा तृप्त किये हैं समस्त प्राणियोंके समूह जिन्होंने ऐसे, और समस्त ऋतु सम्बन्धी दिखाई है विचित्र शोभा जिन्होंने, समस्त इन्द्रियोंको आनन्द देनेवाले और मनको अतिशय प्रिय ऐसे जीवोंके समान अनेक महाफलोंसे शोभायमान है ॥ ६४–६५ ॥ उस वनमें नर सुर और विद्याधरोंकर उपासित, केवलज्ञानी, नष्ट किया है घातिया कर्म जिन्होंने, संसारसमुद्रसे तरनेको नौका समान, वहुत ऊंचे स्फटिकमयी सिंहासनपर विराजमान,प्रफुल्लित किरणोंके समूहकर चन्द्रमाकी तरह मुनियोंकर सेवित, अपने यशरूपी पुंजको प्रकाश करते हुये एक महामुनि देखे ॥ ६६–६७॥ सो तीनभवनके इन्द्रों-कर वंदनीय ऐसे मुनीश्वरको देखकर जैसे मयूरको रजके हरण करनेवाले मेघको देखकर अथवा चिरकालके विछुरे हुये प्रिय सहोदरको देखनेसे आनन्द होता है उसी प्रकार मनो-वेग महाआनन्दको प्राप्त होता भया ॥ ६८ ॥ तत्पश्चात् वह मनोवेग मुनिमहाराजके चरणोंके दर्शनार्थ अति उत्सुक हो आकाशसे उतरकर इन्द्रकी समान वनमें प्रवेश करता हुवा. कैसा है मनोवेग कृती कहिये पंडित है, और फैली हुई है रत्नोंकी ज्योति जिसमेंसे ऐसे मुकटकर अत्यंत शोभाय-मान है ॥ ६९ ॥ अप्रमाण है श्रुत अवधि आदि ज्ञानके भेद जिनके, मस्तकपर स्थापे हैं हाथ जिन्होंने ऐसे, मनुष्य विद्याधर देवनेक समूहकर वंदनीक, याति मुनियोंकर सहित जिनेन्द्र केवली भगवानको वारंवार नमस्कार करके वह

मनोवेग सन्तुष्टचित्त हो मुनियोंकी सभामें बैठता हुवा ॥७०॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें प्रथमपरिच्छेद पूर्ण भया ॥ १ ॥

अथानन्तर उस सभामें किसी एक भव्य पुरुषने अवधिज्ञानी मुनिमहाराजको नमस्कार करके विनय सहित पूछा कि ॥ १ ॥ हे भगवन् ! इस असार संसारमें फिरते हुये जीवोंको सुख तो कितना है और दुःख कितना है सो कृपा करके मुझे कहिये ॥ २ ॥ यह प्रश्न सुनकर मुनिमहाराजने कहा कि हे भद्र ! संसारके सुख दुःखका विभागकर कहना बडा कठिन है, तथापि एक दृष्टान्तके द्वारा किंचिन्मात्र कहा जाता है. क्योंकि दृष्टान्तके विना अल्पज्ञ जीवोंकी समझमें नहिं आता सो ध्यान देकर सुन ॥ ३–४ ॥

अनेक जीवोंकर भरी हुई इस संसाररूपी अटवीकी समान एक महा वनमें दैवयोगसे कोई पथिक (रस्तागीर) प्रवेश करता हुवा ॥ ५ ॥ सो उस वनमें यमराजकी समान सूंडको ऊंची किये हुये क्रोधायमान वहुत वडे भयङ्कर हाथीको अपने सन्मुख आता हुवा देखा ॥ ६ ॥ उस हाथीने उस भयभीत पथिकको भीलोंके मार्गसे अपने आगें कर लिया सो उसके आगे २ भागता हुवा वह पथिक पहिले नहिं देखा ऐसे अन्धकूपमें गिर पड़ा ॥ ७ ॥ जिसप्रकार दुर्गम नरकमें नारकी धर्मका अवलम्बन करके रहता है, उसीप्रकार वह भयभीत पथिक उस कूपमें गिरता २ सरस्तंव कहिये सरकी जड़को अथवा वड़की जडको पकड़कर लटकता हुवा

तिष्ठा ॥ ८ ॥ सो हाथीके भयसे भयभीत हो नीचेको देखता है तो उस कूएमें यमराजके दण्डकी समान पड़ा हुवा वहुत बड़ा एक अजगर देखा ॥ ९ ॥ फिर क्या देखा कि उस सरस्तंबकी जड़को एक श्वेत और एक काला दो ऐसे मूसे निरन्तर काट रहे हैं. जैसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष मनुष्यकी आयुको काटते हैं ॥१०॥ इसके सिवाय उस कूएमें चारों कषायोंकी समान वहुत लम्बे २ अतिभयानक चलते फिरते चारों दिशाओंमें चार सर्प देखे ॥ ११ ॥ उसी समय उस हाथीने क्रोधित होकर संयमको असंयमकी तरह कूपके समीप खड़े हुये किसी वृक्षको पकड़कर जोरसे हिलाया– ॥ १२ ॥ सो उसके हिलनेसे उसपर जो मधुमक्खियोंका छत्ता था उसमेंसे समस्त मक्खियें निकल कर उस पथिकके शरीरपर चिपट, महा दुःख देने लगीं– ॥ १३ ॥ तब वह पथिक चारों तरफसे मर्मभेदी पीड़ा देनेवाली उन मधुमक्खियोंसे घिरा हुवा अतिशय दुःखित हो उपरिको देखने लगा– ॥ १४ ॥ सो वृक्षकी तरफ मुखको उठाकर देखते ही उसके होटों पर वहुत छोटा एक मधुका विन्दु आ पड़ा ॥ १५ ॥ तव वह मूर्ख उस नरककी वाधासे भी अधिक वाधाको कुछ भी दुःख न समझ उस मधुविन्दुके स्वादको लेता हुवा अपनेको महा सुखी मानने लगा ॥ १६ ॥ इसकारण वह अधम पथिक उन समस्त दुःखोंको भूलकर उस मधुकणके स्वादमें ही आसक्त हो फिर भी मधुविन्दुके पड़नेकी अभिलाषा करता हुवा निश्चलमुख हो लटकता रहा ॥ १७॥ सो हे भाई उस समय पथिकके जितना सुख दुःख है उतना ही सुख दुःख महा

कष्टोंकी खानिरूप इस संसाररूपी घरमें इस जीवके है ॥ १८ ॥ सो जिनेन्द्र भगवान्ने कहा है कि-वह वन तो पाप है वह पथिक है सो जीव है. हस्ती है सो मृत्यु (यमराज) की समान है. वह सरस्तम्ब है सो जीवकी आयु (उमर) है और कूआ है सो संसार है ॥१९॥ अजगर है सो नरक है. श्वेत श्याम दो मूषक है सो शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष हैं, सो उमरको घटा रहे हैं, और चार सर्प है सोई क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय है. तथा मधुमक्षिकायें हैं सो शरीरके रोग हैं ॥ २० ॥ मधुके बिन्दुका जो स्वाद है सो इन्द्रियजानित सुख (सुखाभास मात्र) है. इसप्रकार संसारमें सुख दुःखका विभाग है ॥ २१ ॥ वास्तवमें इस संसारमें भ्रमण करते हुए जीवोंके सुख दुःखका विभाग किया जाय तो मेरुपर्वतकी बराबर तो दुःख है और सरसोंकी बराबर सुख है. इस कारण संसारके त्याग करनेमें ही निरन्तर उद्यम करना चाहिये ॥ २२-२३ ॥ जो मूढ अणुमात्र सुखके लिये विषयभोग सेवन करते हैं, वे मानो शीतकी बाधा दूर करनेके लिये वज्राग्निसे (बिजलीकी अग्निसे) तापनेकी इच्छा करते हैं ॥ २४ ॥ यदि ढूंढा जाय तो कहींपर अग्निमें भी बर्फ मिल सक्ता है. परन्तु संसारमें सुखकी प्राप्ति किसी कालमें कहीं भी नहीं है ॥ २५ ॥ मूढ लोक विषयभोगसम्बन्धी दुःखोंको सुखके नामसे कहते हैं परन्तु वास्तवमें वे सुख नहीं है. जैसे बुझे हुये दीपकको 'बढ गया' कहते हैं उसीप्रकार यह भी है ॥ २६ ॥ जिस प्रकार धतूरेके पीनेसे नसा होनेपर मनुष्यको सब सोना (पीला

ही पीला) दीखता है, उसीप्रकार विषयोंकी आकुलतासे संसारी जीव दुखदायक भोगोंको भी सुखदायक मानते हैं ॥ २७ ॥ सुख धर्मके प्रभावसे ही होता है सो धर्मकी रक्षा-पूर्वक विषयसुख भोगना चाहिये. जैसे वृक्षसे फल मिलते हैं, पन्रतु वृक्षकी रक्षा करके फलको भोगना चाहिये. ना कि वृक्षको बिगाड़कर ॥ २८ ॥ सज्जन पुरुष हैं वे दुःखोंको पापसे उत्पन्न होतेहुये देख पापको छोडते हैं क्योंकि ऐसा कौनं मूर्ख है जो 'अग्निसे आताप होता है' ऐसा जानता हुवा भी अग्निमें प्रवेश करै ? ॥ २९ ॥ ये जीव धर्मके प्रभावसे ही सुन्दर, सुभग, सौम्य, उच्चकुली, शीलवान पंडित चन्द्रमाकी समान उज्वल स्थिर कीर्तिके धारक होते हैं ॥३०॥ और पापके प्रभावसे कुरूप दलिद्री सवको बुरे लगने वाले, नीचकुली, कुशीली, मूढ, वदनाम और दुष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥ धर्मके प्रभावसे तो ये जीव हाथीपर सवार हो सवसे आदरसत्कार पाते हुये चलते हैं और पापके प्रभावसे निन्दित हो उन्हीके आगे आगे दौड़ते हैं. ॥ ३२ ॥ धर्मके प्रभावसे तो सुन्दरताको उत्पन्न करने-वाली पृथिवीकी समान प्रिय स्त्रियोंको पाते हैं. पापके प्रभावसे विचारे दीन होकर उन्हीं स्त्रियोंको पालखीमें विठा-कर कहार वनके उठाये फिरते हैं ॥ ३३ ॥ धर्मके प्रभावसे कोई तो कल्पवृक्षकी समान दान करते हैं और कोई पापके प्रभावसे नित्य हाथ पसार कर याचना करते हैं ॥ ३४ ॥ धर्मात्मा पुरुष हैं वे तो मनोहर स्त्रियोंसे आलिंगन करते हुये रत्नमयी महलोंमें सोते हैं और पापी हैं वे हाथमें शस्त्रधा-

रण कर उन्हींकी रक्षा करते हैं अर्थात् पहरा देते हैं ॥३५॥ धर्मात्मा पुरुष तो सुवर्णके पात्रोंमें मिष्ट आहार भोजन करते हैं. और पापी हैं वे कुत्तेकी समान उनकी उच्छिष्ट खाते हैं ॥ ३६ ॥ धर्मात्मा पुरुष तो बहु मूल्य कोमल सचिक्कण वस्त्रोंको धारण करते हैं. पापियोंको सैंकड़ों छिद्र-वाली एक लंगोटी भी नाहिं मिलती ॥ ३७ ॥ पुण्यके प्रतापसे तो महापुरुषोंके लोकमें प्रसिद्ध यशोगान किये जाते हैं. और पापी हैं वे उन्हीं लोगोंके आगे सैंकड़ों खुशामदें करते हैं ॥ ३८ ॥ धर्मके ही प्रभावसे दशों दिशावोंमें फैली है कीर्ति जिनकी ऐसे तीर्थंकर, चक्रवर्ति, नारायण प्रतिनारायण आदि महापुरुष होते हैं और ॥ ३९ ॥ पापके प्रभावसे लोकमें निंदनीक बावने, पांवले, लंगडे, अधिक रोमवाले, परके दास, दुष्ट और नीच होते हैं ॥ ॥ ४० ॥ धर्म है सो मनोवांछित भोग, धन और मोक्षको देनेवाला है और पाप है सो इन सबको नाश करनेवाला समस्त अनर्थोंकी खानि है ॥ ४१ ॥ ज्ञानी अज्ञानी सभी जन कहते है कि 'इस संसारमें जो कुछ भला (इष्ट) है वह तो धर्मसे होता है और बुरा (अनिष्ट) है सो पापसे होता है' यह नियम जगत्में विख्यात है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार प्रत्यक्षतया धर्म अधर्मका फल जानकर बुद्धिमान् पुरुष अधर्मको सर्वथा त्यागकर सदैव धर्माचरण ही करते रहते हैं और— ॥ ४३ ॥ नीच हैं वे एक इसी जन्मके लिये ऐसा कुछ कर्म करते हैं जिससे वे लक्षों भवोंमें अनेक प्रकारके दुःख पाते हैं ॥ ४४ ॥ असह्य दुःखोंको बढ़ा-

नेवाले विषयरूपी मादिरासे मोहित हुए कुटिलजन आजकलके (दो दिन मात्रके) जीवनमें भी पापकार्योंको करते है ॥ ४५ ॥ इस क्षणभंगुर संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो सुखदायक, साथ जानेवाली, पवित्र, स्वाधीन और अविनश्वर हो क्योंकि ॥ ४६ ॥ तरुण अवस्था है सो तो जराकर ग्रसित है, आयु है सो मृत्युकर और सम्पदा है सो विपदाकर ग्रस्त है. निरुपद्रव है तो एक मात्र पुरुषोंकी तृष्णा ही है ॥ ४७ ॥ यह प्राणी चाहे परबतपर चढ़े, चाहे पातालमें पैठि जावे, चाहे पृथिवीमात्रमें भ्रमण करते रहै, परन्तु काल (मृत्यु) तो कहीं भी नहिं छोड़ता ॥ ४८ ॥ आते हुए कालरूपी मदोन्मत्त हस्तीको रोकनेके लिये, सज्जन, माता, पिता, भार्या बहन, भाई, पुत्र वगैरह कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ४९ ॥ कालरूपी राक्षसकर भक्षण करते हुए जीवकी रक्षा करनेको हस्ती, घोडा, रथ, पयादा, इनकर अतिपुष्ट चार प्रकारकी सेना भी समर्थ नहीं है ॥ ५० ॥ कुपित हुवा यमरूपी सर्प, दान, पूजा, मिताहार, (ऊनोदर तप) मंत्र तंत्र और रसायनों करके भी निवारण करना अशक्य है ॥ ५१ ॥ जलती हुई मृत्युरूपी अग्नि बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्री, धनाढ्य, निर्धन, मूर्ख, पंडित, शूर, कायर, समर्थ, असमर्थ, दानी, कृपण, पापी, धर्मात्मा, सज्जन, दुर्जन, आदि किसी जीवको भी नहिं छोड़ती अर्थात् काल किसीको भी नहिं छोड़ता ॥ ५२-५४ ॥ जो मृत्यु बलिष्ठ इन्द्रोंकर सहित देवोंको भी हनती है, उस मृत्युको मनुष्योंके मारनेमें

तो कुछ भी खेद नही है. क्योंकि– ॥ ५४ ॥ जो अग्नि दृढ पाषाणोंसे वन्धे हुए पर्वतोंको जला देता है तो वह तृण समूहको कैसे छोड़ैगी ? ॥ ५५ ॥ जीवोंको चर्वण करनेमें प्रवृत्ता हुवा काल जिससे निवारण किया जाय ऐसा कोई भी उपाय न तो है और न हुवा और न हो सक्ता है, ॥ ५६ ॥ अथवा रत्नत्रयरूप है लक्षण जिसका ऐसे सर्वज्ञ भाषित धर्मके सिवाय जरा और मरणको मर्दन करनेमें अन्य् कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ५७ ॥ जीवन, मरण, सुख दुःख, सम्पत्ति विपत्तिमें यह जीव सदाकाल अकेला ही रहता है इसका कोई भी सहायक नहीं है ॥ ५८ ॥ इस जीवके वान्धवादि कुटुंवी जन है वे इस जन्ममें ही भिन्न २ स्वभावके धारक होते हुए भिन्न २ हैं तो वे अपने कर्मोंके वशीभूत रहनेवाले अगले भवमें किसप्रकार भिन्न नहिं होंगे ? अवश्य होंगे. ॥ ५९ ॥ इसकारण वास्तवमें विचार किया जाय तो इस आत्माका अपनेको छोड़कर दूसरा कोई भी आत्मीय (अपना) नहीं है. और " यह मेरा है यह पर है " इत्यादि जो कल्पना है सो मोहकर्म–जनित कल्पना मात्र ही है ॥ ६० ॥ जिस आत्माकी देहके साथ ही एकता नहीं है. तो उसके प्रत्यक्षमें वाह्यभूत मित्र पुत्र स्त्री धनादिकसे किसप्रकार एकता हो सक्ती है ? ॥ ६१ ॥ जगत्के समस्त जन अपना स्वार्थ देखकर ही मनुष्यकी सेवा करते हैं जव स्वार्थ नहिं सधता है, तव अपमा एक वचनमात्र भी व्यय नहिं करते ॥ ६२ ॥ यह भलेप्रकार निश्चित है कि विना स्वार्थके कोई भी स्नेह नहिं करता और तो क्या,

छोटासा बच्चा भी माताके स्तनोंको दूधरहित होनेपर झट छोड़ देता है ॥ ६३ ॥ संसारी जन हैं वे दुःखदाताको सुखदाता, विनस्वरको स्थिर और अनात्मीयको अपना स्वरूप मानकर पापका संग्रह करते हैं, सो बड़ा खेद है ॥ ६४ ॥ संसारी जन कैसे मूर्ख हैं कि पाप तो पुत्र मित्र और शरीरके निमित्त करते हैं, परन्तु नरकादिकके घोर दुःख अकेले आप ही सहन करते हैं ॥६५॥ संसाररूपी समुद्रमें ढूंढा जाय तो कहीं भी सुख नहीं दीखता. क्योंकि केलेके थंभको छीला जाय तो क्या उसमेंसे किसीने सार निकलते देखा है ? कदापि नहीं. उसीप्रकार यह संसार साररहित है ॥ ६६ ॥ 'कोई भी अपने साथ नहिं जा सक्ता' इसप्रकार जानते हुए भी उसके लिये पापारंभ रचते हैं सो इससे अधिक मूर्खता क्या होगी ? ॥ ६७ ॥ इन्द्रियजनित विषयोंके भोगनेसे दुःख ही होता है और तपादिकमें क्लेश करनेसे सुख होता है. इसकारण उस सुखकी रक्षाकेलिये इन्द्रियजनित सुखको छोड़कर विद्वज्जन हैं वे तपश्चरण ही करते हैं ॥ ६८ ॥ जो विषय, पोषण किये हुये निरन्तर महा दुःखदायक हैं तो उन विषयोंके सिवाय अन्य दूसरा वैरी कौन है ? जो दुस्त्यज (विना दुःख दिये न छोड़नेवाला) हो ॥६९॥ जो प्रार्थना करनेसे तो आते नहीं और विना भेजे ही अपने आप चले जांय, ऐसे धन कुटुम्ब गृहादिक अपने किसप्रकार हो सक्ते हैं ? ॥७०॥ जिस संसारमें विश्वास है, वहां तो भय है और जिस मोक्षमें विश्वास नहीं है, वहांपर सदा श्रेष्ठ सुख है ॥ ७१ ॥ जो जीव अपना आत्मकल्याण

छोड़कर अपनेसे भिन्न इस देहके कार्य्यमें लगे हैं, वे परके दास हैं; उनसे अधिक कोई दूसरा निन्द्य नहीं है ॥ ७२ ॥ जो अनेक भवोंके पवित्र सुख हर लेते हैं, वे पुत्रादिक कुटुंबी जन चौरोंसे अधिक क्यों नहीं है ? अवश्य हैं ॥ ७३ ॥ विद्वानोंको चाहिये कि सांसारिक समस्त सुखोंको अनात्मीय जानकर सदा जिनेन्द्र भगवानकर भाषित आत्मीय धर्मको धारण करैं ॥ ७४ ॥ जो क्षमासे क्रोधको, मार्दवसे (कोमलतासे) मानको, आर्जवसे (सरलतासे) मायाको और संतोषकेद्वारा लोभको नष्ट कर देता है. उसीके धर्म होता, है ॥ ७५ ॥ तथा शुद्ध ब्रह्मचर्य्य धारण करनेवालोंके भगवानकी पूजा करनेवालोंके, उत्तम पात्रोंको दान देनेवालोंके, पर्वके दिन उपवास धारण करनेवालोंके—॥७६॥ जीवोंकी रक्षा करनेवालोंके, सत्य वचन बोलनेवालोंके,अदत्त ग्रहण न करनेवालोंके, राक्षसीकी तरहँ स्त्रीका त्याग करनेवालोंके—॥७७॥ सन्तोपामृतपानसे परिग्रह तजनेवाले धीर वीरोंके वात्सल्य (धर्मसे प्रीति) के धारण करनेवालोंके और विनयी पुरुषोंके ही पवित्र धर्म होता है ॥ ७८ ॥ जो कोई जिनेन्द्रभगवान्‌कर भाषित धर्मको चित्तसे भावना करता है सो महा दुःखदायक संसाररूपी दावानलको शीघ्र ही शमन कर देता है ॥ ७९ ॥ योगिराजके इसप्रकार धर्मोपदेशामृतसे समस्त सभा ऐसी तृप्त हो गई कि, जैसे मेहके जलसे तप्तायमान पृथिवी शीतल हो जाती है ॥ ८० ॥

अवधिज्ञान है नेत्र जिनके,वात्सल्य कार्यमें कुशल, धर्मोपदेश देनेमें सदा तत्पर ऐसे वे योगीराज जितशत्रुके पुत्र मनोवेगको

जिनमती जानकर निम्नलिखित प्रकारसे कुशल समाचार पूछते हुये. क्योंकि धर्मात्मा पुरुषोंका भी भव्य पुरुषोंके लिये पक्षपात होता है ॥ ८२ ॥ "हे भद्र! धर्मकार्य्योंमें तत्पर भव्य तुम्हारा पिता स्वजन परवारसहित कुशलरूप है न?" इस प्रश्नको सुनकर विद्याधरका पुत्र मनोवेग प्रसन्नचित्त होकर इस प्रकार कहता हुवा कि ॥ ८२ हे भगवन्! जिनकी रक्षा सदाकाल आपके चरणारविन्द करते हैं उस विद्याधर पति-जितशत्रुके किसप्रकार विघ्न हो सक्ते हैं? क्योंकि जिसकी रक्षा साक्षात् गरुडराज करते हैं, उनको किसी कालमें भी सर्पकी पीड़ा नहिं हो सक्ती ॥ ८३ ॥ इसप्रकार कहके मस्तकपर हाथ रख विनयपूर्वक खड़े होकर केवलज्ञानरूपी किरणोंसे प्रकाशित किये हैं समस्त पदार्थ जिन्होंने ऐसे केवलरूपी भगवान सूर्य्यको विनयके साथ नमस्कार करके निन्मलिखित प्रश्न करता हुवा क्योंकि ऐसे सूर्य्यके अतिरिक्त समस्त प्रकारके संशयरूपी अन्धकारका नाशक अन्य कोई नहीं है ॥८४॥ हे देव! प्राणोंसे भी प्रिय मेरा मित्र पवनवेग विद्याधर मिथ्यात्व रूपी दुर्जर विषसे आकुलित व विपरीत श्रद्धान होकर प्रवर्त्तता है सो कभी इस पवित्र जिनेन्द्रधर्ममें भी प्रवर्त्तेगा या नहीं? सो कृपाकर मुझे सूचित कीजिये ॥ ८५ ॥ हे देव! उस पवनवेगको कुमार्गमें प्रवर्त्तता हुवा देखता हूं तो मेरे हृदयमें वज्राग्निकी शिखाके समान अनिवार्य तापकी उपजानेवाली चिन्ता उत्पन्न हो जाती है. क्योंकि समानशील गुणवालोंके साथ की हुई मित्रता ही सुखदायक होती है ॥ ८६ ॥ जो अनेकप्रकारके दुःखोंकी खानिरूप मिथ्यात्वमार्गमें लवलीन

चित्त हो प्रवर्त्ते हुये अपने मित्रका निवारण नहिं करते; वे निश्चय करके उसको सर्पोंकर भयंकर महागंभीर कुएमें डालते हैं ॥ ८७ ॥ जीवोंके मिथ्यात्वकी समान तो दूसरा महा अन्धकार नहीं है और सम्यक्त्वकी समान और कोई विवेककारी नहीं है. जिसप्रकार संसारकी बराबर अन्य कोई निषेध करनेयोग्य वस्तु नहीं है उसी प्रकार मोक्षकी बराबर अन्य कोई प्रार्थना करनेयोग्य नहीं है ॥८८॥ हे भगवन्! उसके पवित्र भव्यपणा है कि नहीं? क्योंकि भव्यताके विना तत्त्वसमूहकी रचना व्यर्थ होती है. जैसे कोरडू मूंगको सिजानेकेलिये समस्त प्रकारके किये हुये उपाय व्यर्थ होते हैं तैसे अभव्यको वस्तुका स्वरूप समझाना भी व्यर्थ है ॥८९॥ इसप्रकार प्रश्न करके मनोवेगको चुप रहनेके पश्चात् केवली भगवान्की उज्ज्वल मनोहर वाणी प्रगट हुई कि, हे भद्र! पुष्पनगरमें (पटनेमें) ले जाकर तत्त्वोपदेश कर समझावेगा तो तेरा मित्र शीघ्र ही मिथ्यात्वरूपी पापको छोड़ देगा॥९०॥ हे सुबुद्धे! जिस प्रकार निरन्तर असह्य दुःखके देनेवाले शरीरमें गडे हुये कांटे वगेरहको सुई चिमटी आदिसे निकालते हैं, उसीप्रकार पवनवेगके चित्तमें ठसे हुये मिथ्यात्वरूपी कांटेको अनेक दृष्टांतोंके समूहसे अवगाहन कर निकालना ॥ ९१ ॥ वहां पटनेमें पूर्वापरादि अनेक दूषणोंसे दूषित अन्य मतोंको प्रत्यक्ष देखता हुवा अनेक दोषवाले मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको छोड़कर शीघ्र ही ज्ञानरूपी प्रकाशमें आ जायगा ॥ ९२ ॥ जबतक लोकमें जिनेन्द्रभगवानके वचनोंका प्रकाश नहीं है, तभीतक मिथ्यादृष्टियोंके वचन प्रकाशरूप

हैं. क्या जगत्‌मात्रको प्रकाश करनेमें 'कुशल' ऐसे सूर्यके प्रकाश होते हुये ग्रहगणोंका (तारोंके समूहका) प्रकाश हो सक्ता है ? कदापि नहीं ॥ ९३ ॥ विपरीत दृष्टिवाले अभव्यके सिवाय ऐसा कौनसा जीव है जो जिनेन्द्र भगवानके कहे हुये निर्दोप वाक्योंसे प्रतिबोध नहिं होता ? क्योंकि उल्लूके (घुघूके) सिवाय प्रायः सभी जने महा अन्धकारको नाश करनेवाले सूरजकी किरणोंके प्रभावसे पदार्थोंको देखते हैं ॥ ९४ ॥ इसप्रकार महा आनंदकारक वचनोंको श्रवण कर पापोंको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणकमलोंको भलेप्रकार नमस्कार करके अपनी विद्याके प्रभावसे रचे हुये सुन्दर विमानमें बैठकर वह मनोवेग विद्याधर शीघ्रगतिसे अपने घरको जाता हुवा ॥ ९५ ॥

इति श्रीअमितगति आचार्य्यकृत धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें दूसरा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ २ ॥

अथानन्तर जबतक देवतुल्य स्फुरायमान है प्रभा जिसकी ऐसा वह मनोवेग दिव्य विमानपर आरूढ़ हो अपने नगरप्रति जाता है—॥१॥ इसी बीचमें जिसप्रकार विमानपर बैठे देव अन्यदेवसे मिलै, उसप्रकार सामनेसे आते हुए पवनवेगने मनोवेगको देखा ॥ २ ॥ देखते ही पवनवेगने मनोवेगसे कहा कि जैसे कामातुर न्यायरहित हो रहता है, तैसे मुझे छोड़ कर इतने समयतक तू कहां रहा ? ॥ ३ ॥ हे मित्र, सूर्य्यके विना दिनकी तरह मैं तेरेविना एक क्षण भी रहनेको असमर्थ हूं सो इतने समयतक तेरे विना कैसे रह सक्ता हूं ? ॥ ४ ॥ हे मित्र, मैने तुझे सर्वत्र ढूंढा जैसे शुद्धश्रद्धानी मोक्षके दाता

धर्मको ढूंढता है ॥ ५ ॥ जब मैंने बाग, नगर, बाजार, राजगृहांगण और समस्त जिन मंदिरोंमें तुझे नहिं देखा ॥ ६ ॥ तब घबराकर तेरे पिता पितामहको जाकर पूछा, सो ठीक ही है. इष्ट संयोगकी वांछा करनेवाला क्या नहिं करता ? अर्थात् सब कुछ करता है ॥७॥ जब इसप्रकार सर्वत्र पूछने पर भी तेरा पता न लगा, तब दैवयोगसे इधर आते हुए तुझे देखा ॥ ८ ॥ हे मित्र ! जैसे संयमी सन्तोषको छोड़कर स्वेच्छाचारी हो इधर उधर भटकता है, तैसे तुझे आनन्द उपजानेमें समर्थ, तथा तेरे वियोग सहनेको असमर्थ ऐसे मुझ मित्रको छोड़कर तू किसप्रकार फिरता है ॥९ ॥ यदि हम दोनोंका कदाचित् वियोग भी हो तो तिर्यक् और ऊर्ध्व गमन करनेवाले वायु और अग्निके समान ही होना चाहिये कि जिनकी लोकमें मित्रता ही प्रसिद्ध है। प्ररन्तु—॥ १० ॥ जिनके देह और आआत्माकी समान जन्मसे मरणपर्यंत वियोग नहीं होय, उन्हींकी मित्रता सर्वोत्तम है ॥ ११ ॥ एक तो उष्ण और एक शीतल ऐसे सूर्य्य और चन्द्रमाकी प्रीति कैसी ? जो महीनेमें एकबार मिलाप हो ॥१२॥ बुद्धिमानोंको ऐसा मित्र व मनोहर कलत्र (स्त्री) करना चाहिये जो चित्राम की तरहँ किसी कालमें भी पराधीन न होय ॥ १३ ॥ जगत्में उन्हींकी मित्रता प्रशंसनीय है कि जो दिन और सूर्य्यकी समान निरन्तर अव्यभिचारपनेसे (भेदभावरहित एकत्र) रहते हैं ॥ १४ ॥ हे मित्र ! जो मित्रके क्षीण होने पर क्षीण होता है और वृद्धि होनेपर वृद्धिरूप होता है उसीको सच्चा मित्र कहते हैं और वे ही प्रशंसनीय हैं. जैसें समुद्रके साथ चन्द्रमाकी मित्रता

है. अर्थात् चन्द्रमाकी कला वढ़नेसे समुद्र वढ़ता है और चन्द्रमाकी कला जैसे २ क्षीण होती है तैसे २ समुद्रका पाणी भी घटता जाता है ॥ १५ ॥ इसप्रकार सुनकर मनोवेगने कहा कि हे महामते! इस प्रकार कोपको प्राप्त मत हो, क्योंकि आज मैं इस मध्यलोकके समस्त जिनप्रतिमाओंके दर्शनार्थ गया था ॥ १६ ॥ सो सुरनरकर वंदनीय अढाई द्वीपके मध्य जो कृत्रिम अकृत्रिम अनेक चैत्यालय हैं,–॥ १७ ॥ उन सबकी मैंने भाक्तिपूर्वक पूजा वन्दना स्तुति करके समस्त दुःखोंको नष्ट करनेवाला निर्मल पुण्योपार्जन किया ॥ १८ ॥ हे मित्र! तेरे विना मैं क्षणमात्र भी नहिं रह सक्ता. जिसप्रकार कि साधुके हृदयको सन्तुष्ट करनेवाले प्रशमभावके विना संयम नहिं रहता. परन्तु– ॥ १९ ॥ भरतक्षेत्रमें भ्रमण करते हुये मैंने स्त्रियोंके समस्त शृंगारोंमें तिलककी समान अत्यन्त शोभायमान वहुत वर्णोंकी वस्तीवाला पाटलीपुत्र (पटना) नामका एक नगर देखा– ॥ २० ॥ जिसमें निरन्तर जगहँ २ भ्रमरोंके समूहकी समान अथवा स्त्रीके केशोंकी समान श्यामवर्ण यज्ञका धुआं आकाशमार्गमें फैल रहा है ॥ २१ ॥ जहांपर वधिर किया है आकाश जिसने ऐसी चार वेदकी ध्वनि सुनकरके मयूरगण मेघकी गर्जनासमान आशंका करके नृत्य कर रहे हैं ॥२२॥ तथा वशिष्ट, व्यास, वाल्मीकि, मनु, ब्रह्मादिकर रची हुई वेदके अर्थको प्रतिपादन करनेवाली स्मृतियें सुनी जाती हैं ॥ २३ ॥ जहांपर चारों तरफ सरस्वतीके पुत्रकी समान वगलमें पुस्तक लिये अति चतुर विद्यार्थी विचरते हुये दृष्टि पड़ते हैं ॥ २४ ॥ उस नगरमें परस्पर मर्मभेदी

वचनोंके द्वारा वाद करते हुये वादी ऐसे शोभते हैं किमानों मरमभेदी वाणोंके द्वारा क्षोभरहित योद्धा ही युद्ध कर रहे हैं ॥ २५ ॥ जैसे भ्रमरोंके समूहसे सरोवर (तलाव) शोभता है तैसे उस नगरके पंडित जन मिष्टभाषी शिष्योंके समूहसे वेष्टित और मेनोहर भासते हैं ॥ २६ ॥ और गंगाके किनारे पर चारों तरफ ध्यानाध्ययनमें निमग्न मस्तक मुंडे हुये भद्र सन्यासी ही सन्यासी नजर पड़ते हैं ॥ २७ ॥ जहां पर शास्त्रार्थको निश्चय करती हुई वादरूपी नदीका शब्द सुनकर वादकी खाजसे आकुलित आयेहुये वादीगण शीघ्र ही भाग जाते हैं ॥२८॥ अग्निहोत्रादि कर्म करते हुये अनेक विद्वा॰ न् ब्राह्मण रहते हैं सो मानो मूर्तिमन्त वेद ही हैं ॥ २९ ॥ तथा सर्वत्र समस्त शास्त्रोंके विचार करनेवाले मीमांसक द्विज निरंतर मीमांसा (वेदान्त) शास्त्रका विचार कर रहे हैं सो मानो सरस्वतीके विभ्रम कहिये विलासही हैं ॥३० ॥ तथा दुःखरूपी काष्ठको अग्निकी समान जो धर्म उसको प्रकाश करनेके लिये हजारों ब्राह्मण अष्टादशपुराणोंके व्याख्यान कर रहे हैं ॥३१॥ वह नगर पैंड पैंडपर तर्क, (न्याय) व्याकरण, काव्य, नीतिशास्त्रको व्याख्यान करनेवाले विद्वानोंके द्वारा सरस्वतीके मंदिरकी समान भासता है ॥३२॥ सो हे भद्र, ये सव चारों ओर देखते देखते मुझे वहुत समय लग गया॰ क्योंकि विक्षिप्तचित्त होनेके कारण समय जाता हुवा मालुम नहिं पड़ता ॥ ३३ ॥ हे मित्र, उस आश्चर्यकारक स्थानमें जो जो आश्चर्य मैंने देखे, वे वचनद्वारा कदापि नहिं कह सक्ता– ॥ ३४ ॥ क्योंकि जो विषय शरीरधारियोंकी

इन्द्रियोंसे अनुभव किये जाते हैं, उनको सरस्वती भी वचनद्वारा नहिं कह सक्ती ॥ ३५ ॥ हे मित्र, धर्मकी समान तुझे छोड़ कर मैं इतने समयतक वहांपर रहा, सो मुझ अविनयीका यह अपराध क्षमा करना चाहिये ॥ ३६ ॥ ये वचन सुनकर पवनवेग शुद्ध चित्तसे हास्यपूर्वक कहने लगा कि ऐसा कौन धूर्त है जो धूर्तोंके मिष्ट वचनोंको सुनकर नहिं ठगाता ? ॥ ३७ ॥ हे मित्र, जो कौतुक तूने देखा सो मुझे भी दिखा ! क्योंकि जो सज्जन पुरुष होते हैं वे विभाग किये विना कुछ भी नहिं भोगते ॥ ३८ ॥ मित्रवर्य्य, मुझे उस कौतुकके देखनेकी वड़ी उत्कंठा है, सो वहां फिर चलो. जो मित्र है वह मित्रकी प्रार्थनाको कदापि निष्फल नहिं करते ॥ ३९ ॥ इसप्रकार सुनकर मनोवेगने कहा कि—हे मित्र-अवश्य चलेंगे. परन्तु जल्दी मत करो. क्यों कि उदुम्बर फल शीघ्र ही नहिं पकता है ॥ ४० ॥ सो कल प्रातःकाल ही भोजन करके निराकुलतासे चलैंगे. क्यों कि भूख लगने पर जिनका चित्त ग्लानिरूप हो जाय उनके समस्त कौतुक (आनन्द) भाग जाते हैं ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् दोनों मित्र एक साथ हो अपने घरको चले गये. कैसे हैं कि प्रकाशमान है शोभा जिनकी सो मानो उत्साह और नय दोनों एक ही रूप होरहे हैं ॥ ४२॥ अपने घर पहुंच कर वे दोनों मित्र मिलकर साथ२ भोजन करके या बैठे और सोये सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहसे वशीभूत है चित्त जिनका ऐसे पुरुष परस्पर एक क्षण भी वियोग नहिं सह सकते ॥ ४३ ॥

दूसरे दिन प्रातःकाल ही अपनी इच्छानुसार गमन करने-

वाले विमान पर चढके वे दोनों मित्र दिव्य मनोहर वस्त्राभूषण पहर कर श्रेष्ठ आकारके धारक देवोंके समान पटने नगरकी तरफ चल दिये ॥ ४४ ॥ सो वहांसे चल कर शीघ्र ही अनेकप्रकार आश्चर्योंसे भरे हुये मनोवांछित उस पुष्पपत्तन कहिये पटने नगरको प्राप्त हुये ॥४५॥ वहां पहुंच कर मनोवांछित फल देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुये पटने नगरके एक उद्यानमें (बागमें) नंदनवनमें देवोंकी समान उतरते हुये ॥ ४६ ॥ उस बागके समस्त वृक्ष पुष्पोंके गुच्छेमयी स्तनोंकर नम्रीभूत बल्लोंसे वेष्टित हुये कामिनीसहित कामी पुरुषकी तरहँ शोभते थे ॥ ४७ ॥ वहां उतर कर मनोवेगने पवनवेगसे कहा कि यदि तुमको वास्तवमें कौतुक देखनेकी उत्कंठा है तो जिस प्रकार मैं कहूं, उसीतरह करने पर तुमारी इच्छा पूर्ण होगी ॥४८॥ यह मनोवेगका वचन सुनकर पवनवेगने कहा कि हे महामते ! तू किसीप्रकारकी शंका मत कर, जिसप्रकार तू कहैगा उसीप्रकार करनेको मैं तयार हूं ॥४९॥ हे मित्र, तेरे कहे हुये वचनको अवश्य मानूंगा ऐसा मैंने निश्चय करलिया है. क्योंकि जो परस्पर वञ्चनवृत्ति हों (कहा नहिं मानें) उनमें मित्रता कैसें हो सक्ती है ? ॥ ५० ॥ इसप्रकार अपने मित्रके वचन सुनकर मनोवेगने अपने मनमें विचार किया कि वास्तवमें यह सम्यग्दृष्टि हो जायगा. क्योंकि केवली भगवान्‌का कहा हुवा अन्यथा नहिं हो सक्ता ॥ ५१ ॥ तब प्रसन्न चित्त होकर पवनवेगसे कहा कि यदि ऐसा है तो हे मित्र चलो ! नगरमें प्रवेश करें ॥ ५२ ॥ तत्पश्चात् वे दोनों मित्र विचित्रप्रकारके महामूल्य

आभूषण पहरे, तृण और काष्ठका भारा मस्तकपर लेकर उस पटने नगरमें कौतूहलके साथ फिरने लगे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार इन दोनोंको देखकर नगरके लोग महा आश्चर्यको प्राप्त हुये. क्यौंकि पृथिवीमें ऐसा कौन है जो अपूर्व वस्तुको देखनेसे मोहित नहिं होता ? ॥ ५४ ॥ जिसप्रकार गुड़के पुञ्ज गुंजार करती हुई मक्खियोंसे वेष्टित होते हैं, उसी प्रकार वे दोनो देखनेवाले लोगोंकर चारों ओरसे वेष्टित हो गये ॥ ५५ ॥ सो कोई तो कहने लगे कि अहो वड़ा आश्चर्य है देखो ये महा आभूषण पहरे सुंदराकार ये दोनों तृण और काष्ठका भार क्यों उठाये हुये है ? ॥५६॥ कोई २ कहते हुये कि ये दोनों अपने वहुमूल्य आभूषणोंको वेचकर सुखसे अपने घर क्यों नहिं रहते ? तृण काष्ठ क्यों वेचते हैं ? ॥५७॥ अन्य कइयक मनुष्य इसप्रकार कहते हुये कि अहो! ये तृण काष्ठके वेचनेवाले नहीं हैं; देव अथवा विद्याधर हैं किसी कारणसे इसप्रकार प्रगट हुये भ्रमण करते फिरते हैं ॥ ५८ ॥ कईयक भले आदमी कहने लगे कि, अपने पराई चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि जो लोग पराई चिन्तामें लगते हैं उनको सिवाय पापबन्धके कुछ भी फल नहीं होता ॥५९ ॥ स्फुरायमान है कान्ति जिनकी ऐसे इन दोनों मित्रोंको देखकर कितनीएक नगरकी स्त्रियें कामदेवके वशीभूत हो अपने २ कार्य्यको छोड़कर क्षोभको प्राप्त होगईं ॥ ६० ॥ कितनीएक स्त्रियें तो इसप्रकार कहती हुई कि, जगतमें कामदेव एक है ऐसी प्रसिद्धि है; परन्तु उस प्रसिद्धिको प्रत्यक्षतया असत्य करनेके लिये ही मानों कामदेवने दो देह धारण करी है॥६१॥

कोई स्त्री कहती हुई कि, ऐसी असाधारण शोभाके धारक महा रूपवान पुरुष तृणकाष्टके वेचनेवाले मैंने तो कभी नहिं देखे ॥ ६२ ॥ अन्य कोई स्त्री कामसे पीड़ित हो उनसे वचनालाप करनेकी इच्छा कर अपनी सखीसे कहती हुई कि, हे सखी, इन तृणकाष्ठके वेचनेवालोंको शीघ्र ही यहांपर ले आव ॥ ६३ ॥ ये जितने मूल्यमें तृणकाष्ठ देंगे उतनेमें ही मैं ले लूंगी. क्योंकि इष्टजनोंसे वस्तुकी प्राप्तिमें किसी प्रकारकी गणना नाहिं की जाती ॥ ६४ ॥ इसप्रकार नगर निवासियोंके वचन सुनते २ सुन्दर शरीरके धारक ये दोनों मित्र सुवर्णका है सिंहासन जिसमें ऐसी ब्रह्मशालामें (वादशालामें) पहुंच गये और ॥ ६५ ॥ तृणकाष्ठके भारको डालकर वड़े जोरसे वादकी भेरी वजाकर सिंहकी समान निर्भय हो सुवर्णके सिंहासनपर जा बैठे ॥ ६६ ॥ उस भेरीके शब्दको सुनकर पटने नगरके समस्त ब्राह्मण क्षोभको प्राप्त हुये और 'कहींसे कोई वादी आया है' इसप्रकार कहते हुये, वादकी लालसा रखनेवाले निरंतर विद्याके गर्वरूपी अग्निमें जलते हुये परवादीको जीतनेकी इच्छा करके वे समस्त ब्राह्मण शीघ्र ही अपने २ घरसे वाहर निकल पड़े ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ कोई तो कहते हुये कि तर्कशास्त्रके वादमें तो आजतक कोई भी विद्वान हमको परास्त करके नहिं गया ॥ ६९ ॥ कोई २ विद्वान अन्यान्य विद्वानोंको कहते हुये कि, तुमने तो अनेक दुर्जयवाद जीते हैं सो तुम तो मौनसे वैठो, अव हम इनसे वाद करेंगे ॥ ७० ॥ कईएक ब्राह्मण विद्याके मदमें उन्मत्त हो कहने लगे कि अवादियोंमें रहनेसे हमारा

तो पढनेका परिश्रम व काल वृथा ही चला गया ॥ ७१ ॥ कोई इसप्रकार कहते हुये कि, इस वादरूपी वृक्षको परवादीको जीतनेरूपी दंडसे तोड़ कर यशरूपी फल ग्रहण करैंगे ॥ ७२ ॥ इत्यादि वचनोंको कहते हुये वादकी खुजलीसहित वे ब्राह्मण विद्वान उस ब्रह्मशालामें पहुंचे और ॥ ७३ ॥ हार, कंकण, कड़े, श्रीवत्स और मुकुटादिसे अलंकृत मनोवेगको देखकर सबके सब आश्चर्यान्वित हो गये ॥ ७४ ॥ "निश्चय करकें ये विष्णुभगवान ही ब्राह्मणोंको देखनेकी इच्छासे आये हैं. क्योंकि शरीरकी ऐसी मनोहर शोभा अन्य किसीमें होना असंभव है." इसप्रकार कह कर भक्तिके भारसे नम्रीभूत हो नमस्कार करने लगे. सो ठीकही है विभ्रमरूप हो गई है बुद्धि जिनकी उनसे प्रशंसनीय कार्य कदापि नाहिं होता ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ कोई २ इसप्रकार कहते हुए कि निश्चय करके यह पुरन्दर कहिये इन्द्र ही है. क्योंकि जगत्को महानन्ददायिनी कान्ति अन्य किसीके नाहिं हो सक्ती ॥ ७७ ॥ कोई महाशय कहने लगे कि ये अपने तीसरे नेत्रको अदृश्य करके पृथ्वी देखनेकेलिये महादेवजी आये हैं क्योंकि ऐसा रूप सिवाय महादेवजीके अन्य किसीका नाहिं हो सक्ता ॥ ७८ ॥ अन्य कोई महाशय कहते हुये कि यह कोई महाउद्धत विद्याधर है सो पृथिवीको देखता हुवा अनेकप्रकारकी लीला (क्रीडा) करता है ॥ ७९ ॥ इसप्रकार विचार करते हुये भी वे सब प्रभाकर पूरित किया है दशोंदिशा जिसने ऐसे विश्वरूपमणिकी समान उस मनोवेगका कुछ भी निर्णय नहिं कर सके कि यह कौन

है ॥ ८० ॥ तब किसी एक प्रवीण ब्राह्मणने इसप्रकार कहा कि " निश्चय करनेके लिये इसीको क्यों न पूछलो ? क्योंकि बुद्धिमान पुरुष हाथमें कंकण रहते आरसी (दर्पण) में आदर नहिं करते ॥ ८१ ॥ यदि यह वाद करनेको आया है तो वादियोंको जीतनेमें आसक्त है मन जिनका ऐसे हम समस्त शास्त्र और परमार्थके ज्ञाता इसके साथ वाद करैंगे ॥ ८२ ॥ पंडितोंकर भरे हुये इस नगरमें षट्दर्शनोंमेंसे ऐसा कौनसा दर्शन है जिसको वास्तवमें हम सब जने न जानते हों. इनके सिवाय यह अल्पधी और क्या कहैगा ? ॥ ८३ ॥ इसप्रकार उसकी वाणी सुनकर एक ब्राह्मण आगें बढके मनोवेगको कहने लगा कि आप कौन हैं और विरुद्ध है हेतु जिनका ऐसे आप किस प्रयोजनसे आये हो सो कहो ॥८४॥ यह सुनकर मनोवेग कहता हुवा कि, हे भद्र, मैं एक निर्धनका पुत्र हूं इस श्रेष्ठ नगरमें काष्ठका भारा वेचनेको आया हूं ॥८५॥ तब वह द्विज उस मनोवेगको कहने लगा कि, हे भद्र, तू वाद जीते विना ही इस पूज्य सिंहासनपर शीघ्र ही वादकी सूचना करनेवाली दुंदुभि भेरीको बजाकर क्यों बैठ गया ? ॥ ८६ ॥ यदि वादके जीतनेमें तेरी शक्ति है तो तू वादियोंके घमंडको दलनेवाले निर्दोष बुद्धिके धारक इन द्विजोत्तम पंडितोंके साथ वाद कर ॥ ८७ ॥ हे मूढ ! इस नगरसे आजतक कोई भी विद्वान वादको जीतकर यशका भागी होकर नहिं गया. भला ऐसा कौन पुरुष है जो नागभवनसे शेष नागके मस्तककी मणिसे भूषित होकर जा सकें ? ॥ ८८ ॥ तू जो दिव्य मणिरत्नोंसे भूषित हो,

कर तृणकाष्ठ वेचता है, सो या तो तुझे वायुरोग है, या तुझे पिशाच लगा है, अथवा जवानीके वढ़े हुये कामरूपी मदसे पागल हो गया दीखे हैं. क्योंकि—॥ ८९ ॥ इस जगत्में दृढ़ चित्तवाले व भोले जीवोंके मनको मोहित करनेवाले अनेक ठग हैं परन्तु तुझसरीखा पंडितोंके मनको भी मोहित करनेवाला महा ठग इस त्रिलोकीमें कोई भी नहिं दीखता ॥ ९० ॥ इसप्रकारके वचन सुनकर वह मनोवेग विद्याधर कहने लगा कि, हे विप्र, वृथा ही क्यों कोप करते हो? विना कारण तो सर्प भी रोष नहिं करता; फिर विद्वज्जन तो करेंगे ही कैसे? ॥९१॥ भो द्विजपुत्र! इस सोनेके सिंहासनको बहुत मनोहर देखकर कौतुकसे वैठ गया और "इसका शब्द आकाशमें कहांतक होता है" ऐसा विचार कर मैंने सहज ही इस दुंदुभिको वजा दिया है ॥ ९२ ॥ हे भद्र! हम तृणकाष्ठ वेचनेवालोंके पुत्र हैं. वास्तवमें शास्त्रके मार्गको कुछ भी नहिं जानते; और 'वाद' ऐसा नाम तो मुझ निर्बुद्धिने अभी तेरे मुखसे ही जाना है ॥ ९३ ॥ भो ब्राह्मण, तुमारे भारतादि ग्रंथोंमें क्या मुझ सरीखे वहुतसे पुरुष नहीं हैं? जगतमें केवलमात्र परके दूषण ही देखते हैं. अपने दूषण कोई नहिं देखता ॥ ९४॥ यदि इस सुवर्णसिंहासनपर मेरे बैठनेसे तुमारे चित्तमें हानि है तो लो उतर जाताहूं. इसप्रकार कह कर वह अप्रमाण ज्ञानका धारक मनोवेग सुधी त्वरित ही सिंहासनसे उतर कर नीचें बैठ गया ॥ ९५ ॥

इति श्रीअमितगतिकृतधर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें तीसरा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ३ ॥

अथानन्तर वह द्विजाग्रणी मनोवेगको सुवर्णासनसे उतरा देख कहने लगा कि, मैंने तृणकाष्टके वेचनेवाले, रत्नोंसे विभूषित कभी नहीं देखे क्योंकि–॥१॥ पराई नोकरी करनेवाले मनुष्य रत्नमयी दिव्याभूषणकर शोभित घास लकड़ियें वेचते हुये कभी नहिं देखे जाते ॥ २ ॥ तव मनोवेगने कहा कि–भारत रामायणादिक पुराणोंमें ऐसे मनुष्य हजारों सुने जाते हैं. परन्तु तुमसरीखे इस शास्त्रीय विधानको जानते हो परन्तु प्रतीति नहिं करते॥३॥ तव उस ब्राह्मणने कहा कि, यदि तूने भारत अथवा रामायणमें ऐसे पुरुष देखे हों तो कह, हम विश्वास करैंगे. इसप्रकार ब्राह्मणके कहनेपर मनोवेग वोला कि–॥ ४ ॥ भो ब्राह्मण! मैं कहूं तो सही परन्तु कहते हुये मुझे वड़ा भय लगता है, कारण तुम लोगोंमें ऐसा कोई भी नहिं दीखता जो विचारवान हो ॥ ५ ॥ क्योंकि विचाररहित मूर्ख सत्य कहे हुयेको भी असत्य वुद्धिसे 'सोलह मुक्की न्यायकी' रचना किया करते हैं ॥ ६ ॥ तव ब्राह्मणोंने कहा कि, हे महावुद्धे! 'सोलह मुक्की न्याय' कैसा होता है? सो कह. इसप्रकार सुनकर मनोवेगने कहा कि, वहुत अच्छा, मैं तुमको कहता हूं सो सुनो ॥७॥

मलयदेशमें सुखरूप संगाल नामका एक ग्राम है. उसमें किसी अन्नदाता गृहस्थके मधुकर नामका एक पुत्र था ॥ ८ ॥ सो एक समय वह मधुकर नाराज होके पिताके घरसे निकलकर पृथ्वीमें भ्रमण करने लगा सो ठीक ही है. 'रोषसे क्या नहिं किया जाता' ॥९॥ जव वह आभीर देशमें गया तो वहांपर उसने विभाग कियी हुई चनोंकी वड़ी २ अनेक राशियें

देखीं ॥ १० ॥ उनको देखकर वह मूढ़ विस्मित चित्तसे "ओहो मैंने बड़ा आश्चर्य देखा, मैंने बड़ा आश्चर्य देखा" इसप्रकार कहने लगा. तब-॥ ११ ॥ वहांके ग्रामपतिने पूछा कि, तूने क्या आश्चर्य देखा? तब उस मूढ़ने निम्नलिखित प्रकार कहा सो ठीक ही है, 'मूर्ख लोग आती हुई आपदाको नहिं जानते' ॥१२॥ जैसी इस देशमें चणोंकी राशियें (ढेर) हैं, इसीप्रकार हमारे देशमें मिरचोंकी राशियें हैं" ॥ १३ ॥ यह सुनकर कुपित हो ग्रामपतिने कहा कि, क्या तू बातरोगसे ग्रसित है? जो ऐसा असत्य भाषण करता है? ॥ १४ ॥ हे दुष्टबुद्धे, चणोंकी राशियोंके बराबर मिरचोंकी राशियें हमने किसी भी देशमें कभी नहिं देखीं ॥ १५ ॥ "निश्चयकरके इस चणावाले देशमें मिरचें अत्यन्त दुष्प्राप्य हैं. और हमारे यहां मिरचोंकी कुछ भी गणना नहीं है." ऐसा जान कर यह दुष्ट हम लोगोंकी हँसी करता है. इसप्रकार मूर्खपणेके भ्रमसे उसने कहा कि, इसको शीघ्र ही दंड दिया जावे ॥ १६-१७ ॥ उस ग्रामपतिके वचन सुनकर उसके कुटुंबी जन (नोकर चाकर) उस मधुकरको बांधते हुये सो उचित ही है. अश्रद्धेय वचनोंका बोलनेवाला क्यों नहिं बंधैगा? ॥ १८ ॥ तब किसी दयावान सेवकने कहा कि, हे भद्र, इसको इस अपराधके अनुसार ही दंड देना चाहिये ॥ १९ ॥ तब उसने आज्ञा करी कि इसके चपटे माथेपर मुट्ठियोंके आठ भड़ाके देना चाहिये जिससे कि यह फिर किसीकी हंसी न करै ॥ २० ॥ उस पटेलके इसप्रकार बचन सुन उसके निर्दयी सेव-

कौंने मधुकरको वन्धनसे छोड कर उसके चपटे माथेपर मुट्टियोंके आठ भड़ाके मार दिये ॥ २१ ॥ जो इन्होंने मुझे आठ धौलें लगा कर ही छोड़ दिया सो मुझे वड़ा लाभ हुवा. क्यौंकि, दुष्टोंमें रहनेवालोंके जीवनमें भी सन्देह रहता है ॥२२॥ ऐसा विचार कर वह मधुकर भयभीत हो तत्कालही अपने देशको आगया सो योग्य ही है—मूर्ख लोग पीड़ा पाये-विना किसी कामसे निवृत्त नहिं होते ॥ २३ ॥ तत्पश्चात् वह मधुकर अपने संगाल ग्रामको प्राप्त होनेका इच्छक विभाग-रूप (भिन्न २) चणोंकी राशिके वरावर मिरचोंके समूह देखे—॥ २४ ॥ सो वहांपर भी उसने वैसे ही कहा "कि जैसें यहांपर मिरचोंके ढेर हैं, इसीप्रकार आभीर देशमें मैंने चणोंके ढेर देखे" इत्यादि. तव वहांपर भी उसने वही आठ मुट्टियोंकी मारका दंड पाया सो ठीक ही है—मूर्ख जन खंडित होकर भी पंडित नहिं होते ॥ २५ ॥ इसप्रकार सत्य भाषण करते भी उस मधुकरने षोडश मुट्टीकी मार खाई. तभीसे यह "षोडश मुष्टि न्याय" प्रसिद्ध हुवा है ॥ २६ ॥ इस कारण विना साक्षीके सत्य भी नहिं वोलना चाहिये. जो वोलेंगे वे जनसमाजके द्वारा असत्यभाषीकी सदृश ही दण्ड पावैंगे और—॥ २७ ॥ साक्षीसहित असत्यको भी सव जने सत्य मानते हैं. यदि ऐसा नहिं होता तो वंचक जन जगत् को किस प्रकार ठगते ? ॥ २८ ॥ इसकारण चाहे सत्य हो चाहे असत्य हो परन्तु बुद्धिमानोंको चाहिये कि—प्रतीति योग्य वचन कहै. अन्यथा जो बहुती पीड़ा भोगनी पड़ती है उसको कोई निवार नहिं सकता॥२९॥ पुरुष सत्य भी कहै

तो मूर्ख लोग नहिं मानते, इसकारण अपने हित चाहनेवा-
लोंको चाहिये कि मूर्खोंमें कदापि न बोलें. क्योंकि—॥ ३० ॥
लोक तो अनुभवमें आई हुई, सुनी हुई, देखी हुई, प्रसिद्ध
वार्त्ताको मानते हैं, इसकारण चतुर पुरुषोंको मूर्खोंमें कुछ भी
नहिं बोलना चाहिये ॥३१॥ सो हे विप्रो! यहांपर निर्विचा-
रोंके मध्य बोलते मुझे भी वही दोष प्राप्त होता है. इसका-
रण प्रगटतया मैं कुछ भी नहिं बोल सक्ता क्योंकि—॥ ३२ ॥
जो कोई पूर्वापरका विचार करै उसके आगें तो बोले; नहीं
तो अन्यके आगें बुद्धिमानको बोलना योग्य नहीं ॥ ३३ ॥
इसप्रकार कह कर चुप रहने बाद एक द्विजाग्रणीने कहा कि,
हे भद्र! ऐसा मत कहो; हमलोगोंमें ऐसा कोई भी अविचारी
नहीं है ॥ ३४ ॥ ऐसा हरगिज मत समझ कि, अविचारी
पुरुषोंकासा दोष इन विचारवान् विद्वानोंमे होय. क्योंकि
मनुष्योंमें पशुओंका धर्म कभी नहीं होता ॥३५॥ तू आभीर-
देशवालोंकी समान हमको मूर्ख न समझ. क्योंकि, कव्वों-
की समान हंस कदापि नहिं होने ॥ ३६ ॥ हे भद्र, तू किसी
प्रकारका भय भी मत कर; यहां समस्त ब्राह्मण चतुर हैं, योग्य
अयोग्यके विचार करनेवाले विद्वान् हैं. तेरी इच्छा हो सो कह
॥ ३७ ॥ जो वाक्य युक्तिसे ठीक हो और सज्जनपुरुषोंकी
समझमें आ जावे, ऐसा बचन निःशंक होकर कहो, हम विचा-
रके साथ ग्रहण करेंगे ॥ ३८ ॥ इसप्रकार विप्रके बचन सुन-
कर जिनेन्द्रभगवानके चरणकमलोंका भ्रमर मिष्टभाषी वह
मनोवेग कहने लगा कि—॥३९॥ रक्त १, द्विष्ट २, मनोमूढ ३, दू-
सरोंके कहनेकोही विश्वास करनेवाला हठग्राही ४, पित्तदूषित ५,

आम्र ६, क्षीर ७, अगुरु, ८, चन्दन ९ और वालिस (मूर्ख) १०, ये दशप्रकारके मूर्ख हैं ॥ ४० ॥ ये सव पूर्वापर विचाररहित पशुवोंकी तुल्य हैं. तुम लोगोंमें ऐसा जो कोई हो तो मैं अपनी वात कहते डरता हूं ॥ ४१ ॥ मनुष्य और तिर्यंचोंमें इतना ही भेद है कि, जो समस्त कार्य विचारपूर्वक करे सो तो मनुष्य और विना विचारे करे वही पशु है ॥ ४२ ॥ जो पूर्वापर विचार करनेवाले मध्यस्थ, (पक्षपातरहित) धर्मेच्छु हों वे ही उत्तम सभासद् कहे गये हैं ॥ ४३ ॥ मूर्खोंमें सुभाषित और सुखदायक वचन भी कहा हुना महती पीड़ा करनेवाला है. जैसें सर्पोंको दूध पिलाना ॥ ४४ ॥ यद्यपि पर्वतकी शिलापर कदाचित कमल हो जाय तथा जलमें अग्नि और हलाहलविषमें अमृतकी प्राप्ति हो जाय, परन्तु मूर्खमें विचार कदापि नहिं होता ॥४५॥ हे भद्र ! ये दशप्रकारके मूर्ख कैसे होते हैं सो कहो. इसप्रकार ब्राह्मणोंके कहनेपर वह मनोवेग विद्याधर रक्त द्विष्टादि दश मूर्खोंकी चेष्टा दश कथाओंके द्वारा कहने लगा ॥ ४६ ॥

१. रक्तपुरुषकी कथा।

रेवा नदीके दक्षिण किनारेपर सामन्त नगरमें वहुधान्यक नामका वड़ा धनाढ्य एक ग्रामकूट (चौधरी) रहता था ॥ ४७ ॥ उसके सुन्दरी और कुरंगी दो मनोहर स्त्रियें थीं. जैसें कि, महादेवके पार्वती और गंगा ॥ ४८ ॥ सो उसने कुरंगी नामक युवा स्त्रीको प्राप्त होकर सुन्दरी जो वृद्धा थी उसको छोड़ दी; सो उचित ही है. 'सरसाको पाकर विरसाको कोन सेवे' ॥ ४९ ॥ कुछ दिनोंके पश्चात् वहुधान्य-

कने सुन्दरीसे कहा कि, हे भद्रे, तू अपना भाग (हिस्सा) लेकर अपने पुत्रसहित दूसरे घरमें जाके रह ॥५०॥ तब वह साध्वी पतिकी अज्ञानुसार (जिस प्रकार कहा उसीप्रकार) रहने लगी क्योंकि– 'पतिव्रता स्त्रियें अपने पतिकी आज्ञा कदापि उलंघन नहिं करतीं' ॥ ५१ ॥ उसके पतिने आठ तो बैल, दश गौ, दो दासी और दो हाली (सेवक) तथा सर्व प्रकारकी सामग्री सहित एक घर भी दिया ॥ ५२ ॥ तत्पश्चात् वह बहुधान्यक मोहित हो उस कुरंगीके साथ मनवांछित भोगोंको भोगता हुवा मदिरासे मदोन्मत्तकी समान जाते हुये समयको न जानता हुवा ॥ ५३ ॥ उस सुंदराकार नवयोवना प्रियाको पाकर वह बहुधान्यक इंद्राणीसे आलिंगन करनेवाले इंद्रको भी अपनेसे अधिक नहिं मानता था. ॥ ५४ ॥ युवती स्त्री वृद्धपुरुषमें रत होती हुई नहिं शोभती. क्योंकि– 'पुरानी कम्बलके साथ जोड़ा हुवा दुशाला कदापि नहिं शोभता' ॥५५॥ जो पुरुष वृद्धाकी अवज्ञा करके तरुण स्त्रीमें रत होता है वह शीघ्र ही उसके द्वारा दी हुई पीड़ाको प्राप्त हो विपदाको भोगता है ॥ ५६ ॥ वृद्धपुरुषको तरुण स्त्रीकी बराबर अन्य कोई दुःखदायक नहीं है. 'क्या अग्निके सिवाय भी और कोई पदार्थ अधिक तापकारी है' ॥ ५७ ॥ वृद्धपुरुषके जीवनकी स्थिति (अवधि) तरुणी-प्रसंग तक ही जाननी. क्योंकि– 'बज्राग्निके संग रहते शुष्क वृक्षकी स्थिति कैसें हो सक्ती है' ॥५८॥ एकसमय स्नेहरूपी सूर्य्यके द्वारा प्रफुल्लित कुरंगीके मुखरूपी कमलको नित्य अवलोकन करनेवाले बहुधान्यकको वहांके राजाकी सेनाका विशेष प्रबन्धकर्ता

होना पड़ा ॥ ५९॥ सो राजाने उसे बुलाकर आज्ञा करी कि तुम सेनामें शीघ्र ही जावो और आवश्यकीय सामग्रीका प्रबन्ध करो ॥ ६० ॥ उसनेभी नमस्कार करकें "ऐसा ही करूंगा" कहके अपने घर आकर एकान्तमें स्थित अपनी वल्लभाको गाढालिंगनपूर्वक कहता हुवा कि-॥६१॥ हे कुरंगी, मैं सेनामें जाता हूं तू घरमें खुशीसे रहना. क्योंकि- 'सुखाभिलाषियों-को स्वामीकी आज्ञाका उल्लंघन करना योग्य नहीं'॥ ६२ ॥ हे सुन्दरी, मेरे स्वामीकी सेना तैय्यार है, मुझे अवश्यही जाना पड़ैगा. नहीं तो स्वामी कोप करैगा ॥ ६३ ॥ ये वचन सुनकर वह कुरंगी खेदखिन्न बुद्धिसे कहने लगी कि, हे नाथ! मैं भी आपके साथ अवश्य चलूंगी ॥ ६४ ॥ हे नाथ, जलती हुई अग्नि तो मैं सुखसे सह सक्ती हूं परन्तु समस्त शरीरको आताप करनेवाले आपके वियोगको नहिं सह सक्ती ॥ ६५ ॥ हे विभो, आपके सन्मुख अग्निमें प्रवेश कर मरजाना श्रेष्ठ है परन्तु आपके पीछे विरहरूपी शत्रुसे मारी जाऊं सो भली नहीं ॥ ६६ ॥ हे नाथ, जैसे वनमें शरणरहित मृगीको सिंह मारता है, उसीप्रकार आपके विना यहां अकेलीको मुझे कामदेव मार डालैगा ॥ ६७ ॥ यदि आपको जाना ही हो तो जावो. यमराजके घर जाते हुये मेरे जीवनका मार्ग भी क-ल्याणरूप होवो. आपका मार्ग कल्याणरूप होवो ॥ ६८ ॥ इसप्रकार अपनी प्रियाके वचन सुनकर वह ग्रामकूट कहने लगा कि, हे मृगलोचनी, ऐसा मत कह, स्थिर होके घरपर रह, चलनेकी इच्छा मत कर ॥ ६९ ॥ क्योंकि राजा बड़ा व्यभिचारी (परस्त्रीलोलुप) है तुझे देखते ही

ग्रहण करलेगा. इसकारण हे कान्ते तुझे घर रखकर ही मैं जाऊंगा ॥ ७० ॥ राजाका स्वभाव है कि तुझसरीखी मनोहर स्त्रीको देखकर वह अवश्य छीन लेता है. सो उचित ही है कि–'जिसकी सदृश दूसरा नहीं ऐसे स्त्रीरत्नको कोन छोड़ै' ॥ ७१ ॥ इसप्रकार अपनी प्रियाको समझा कर और धनधान्यसे भरेहुये घरको सौंपकर वह ग्रामकूटपति सेनाके साथ चला गया ॥ ७२ ॥ सरागीका ऐसा ही स्वभाव होता है कि–वह मनोवांछित वस्तुको पाकर फिर किसीका भी विश्वास नहिं करता. यदि उस वस्तुका वियोग हो जाय तो मरण तक इच्छा करता है ॥ ७३ ॥ कुत्ता कुत्तीको पाकर उसे जगतकी समस्त वस्तुओंसे प्यारी समझता है. यद्यपि वह दीन है तो भी अपनी कुत्तीके छिनजानेके भयसे इन्द्रको भी भूँसता है ॥ ७४ ॥ नीच कुत्ता कृमिजाल और मलसे लिप्त नीरस मांसको पाकर भी अमृतकी समान मानता है ॥ ७५ ॥ जो जिस वस्तुमें रत (मग्न) है वह उसकी रक्षा करता ही है. जैसें कौआ विष्टाको संग्रह करकें क्या सर्वप्रकारसे रक्षा नहिं करता ? ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार कुत्ता पशुके हाडको रसायनकी समान समझ कर चाटता है उसीप्रकार जो रक्त-मूर्ख होता है वह असुंदरको भी सुंदर मानता है ॥७७॥ अपने पतिको परदेश चले जानेके पश्चात् वह कुरंगी कामके वशीभूत हो अपने जारोंके (यारोंके) साथ निःशंक रमने लगी. कैसे हैं वे जार मानों देहधारी अन्याय ही हैं ॥ ७८ ॥ किये हैं इच्छित मनोरथ जिसने ऐसी वह कुरंगी अपने जारोंको अनेक प्रकारके भोजन वस्त्र

धनादिक देने लगी ॥७९॥ जो स्त्री अनुरक्त होकर चिरकालसे पालन पोषण की हुई अपनी देहको भी सँवार २ के देती है तो उसको अपने द्रव्यादिक देनेमें कोनसा कष्ट है?॥८०॥ सो उस रक्ताने नौ दश दिनमें ही अपने यारोंको समस्त धन दौलत देकर खा पीके पूरा किया. घरमें कुछ भी नहिं छोडा ॥८१॥ कामरूपी वाणोंसे पूरित है देह जिसकी ऐसी वह कुरंगी नष्टबुद्धि होकर अपने घरको धनधान्य वस्त्र वर्त्तन रहित मूषोंकी वसती कर दिया ॥ ८२ ॥ जिसप्रकार रितुमती गौ कामार्त सांडोंके साथ जहां तहां पशुकर्म करती विचरती है उसीप्रकार वह कुरंगी कामपीड़ित हो अपने यारोंके साथ सर्वप्रकारसे निःशंक विचरने लगी ॥ ८३ ॥ जिसप्रकार समस्त वेर तोड़कर भयभीत चोर मार्गकी झडवेरीको छोड़कर भाग जाते हैं, उसीप्रकार उस कुरंगीके पतिका आना सुनकर उसके यारोंने रहा सहा समस्त धन हरणकरकें छोड़ दी ॥ ८४ ॥ तव वह भी अपने पतिका आगमन जानकर उत्तम पतिव्रताका वेष धारणपूर्वक लज्जायुक्त हो अपने घरमें तिष्ठती हुई. सो नीति ही है क्यों कि—'पति आदिकको धोका देना तो स्त्रियोंका स्वाभाविक धर्म है' ॥ ८५ ॥ कुरंगीने इसप्रकार अपना वेष वनाया कि जिससे कोई भी यह नहिं समझै कि यह कुलटा (व्यभिचारिणी) है. सो 'यह स्त्री इन्द्रको भी धोका देकर अज्ञानी कर देती है तो मनुष्योंकी तो गणना ही क्या' ॥ ८६ ॥ साधलिये हैं मालिकके समस्त कार्य्य जिसने ऐसा वह वहुधान्यक अपनी मियाके (कुरंगीके) पास एक आदमीको भेजकर

आप ग्रामसे वाहरही एक वृक्ष तलें विश्राम करने लगा ॥८७॥ उसने कुरंगीके पास जाकर नमस्कारपूर्वक कहा कि, हे कुरंगी! तुमारा प्रियपति आगया है, सो उसके लिये शीघ्र ही अनेकप्रकारके भोजन वनाओ. मुझे यह वात कहनेके लिये ही उन्होंने भेजा है॥८८॥ यह सुनकर उस कुटिला मुग्धाने कहा कि, तू यही वात वडी स्त्रीके पास जाकर कह; क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष हैं वे क्रम उलंघनकी निंदा करते हैं. वह मेरेसे बडी है, सो प्रथम दिन उसीके घर भोजन होना चाहिये. इस प्रकार समझा कर ॥ ८९ ॥ वह कुरंगी उस आदमीसहित बड़ी सौत (सुन्दरी) के घर जाकर कहने लगी कि, हे सुन्दरी, तेरा पति आगया है, सो उसके लिये बहुत स्वादिष्ट भोजन वना. क्योंकि आज प्रथम दिन तेरे ही घर वे जीमेंगे ॥ ९० ॥ यह सुनकर सुंदरीने कुरंगीसे कहा कि, हे मिष्ट भाषिणी! सुंदर यौवनकी समान मैं उज्ज्वल (पवित्र) भोजन तो वनाऊंगी परन्तु वह तेरा पति जीमेगा नहीं ॥ ९१ ॥ उस सुभागाने (कुरंगीने) हंसकर कहा कि यदि वह वास्तवमें मुझे प्यारी समझता है तो मेरे वचनानुसार तेरे इस सुंदर घरमें अवश्य जीमेगा तू भोजन तो वना ॥९२॥ इसप्रकार कुरंगीके वचन सुनकर वह अनेकप्रकारके षट्रस पूरित भोजन वनाती हुई. "जो सज्जन पुरुष होते हैं वे अपनी समान ही सवको सरल समझते हैं" ॥ ९३ ॥ वह अलक्षितदोषा मायाचारिणी अपने धनहीन घरको छिपाती हुई, सो ठीक ही है. मायाचारिणी स्त्रियें अपने समस्त दूषणरूपी धनको छिपा लेती हैं ॥९४॥ इसकारण वह हीनाचारिणी महान् दूष-

णोंकी धरनेवाली धर्मके मार्गको तजकर अपने पतिको इसप्रकार ठगती हुई. क्योंकि जो पापी जीव हैं वे संसारके अपरिमित दुःखोंको नहिं जानते ॥ ९५ ॥

इतिश्री अमितगताचार्य्यकृत धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें चौथा परिच्छेद पूर्ण भया ॥ ४ ॥

अथानंतर कामकी व्यथासे पीड़ित है चित्त जिसका ऐसा वह बहुधान्यक ग्रामकूट भी उत्साहपूर्वक हर्षित हो शीघ्र ही कुरंगीके घर गया ॥ १ ॥ सो मेघोंके विना आकाश अथवा नगरनिवासियोंके विना श्रेष्ठ नगरकी समान अपने घरको धनधान्यादिकसे शून्य (खाली) देखकर भी ॥ २ ॥ वह मूढ कुरंगीके मुखावलोकनके लिये आकुलितचित्त होकर अपने घरको चक्रवर्तिके घरसे भी अधिक देखता (मानता) हुवा ॥ ३॥ तथा वह ऐसा मानता हुवा कि जो कार्य्य मेरी प्रिया करे सो मुझे प्रिय हैं और जो यह नहिं करती वे सब भी मुझे प्रिय हैं ॥ ४ ॥ रागी नर अन्यको नहिं देखे तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं क्योंकि—जिनके नेत्र रागने अंधे कर दिये, वे अपने आपको (आत्माको) भी नहिं देखते ॥ ५ ॥ तथा जो रक्त नर होता है वह धर्म क्या है, अपना कर्तव्य क्या है, गुण क्या है, सुख क्या है, त्यागनेयोग्य वस्तु कोनसी है, ग्रहण करनेयोग्य वस्तु कोनसी है, यश क्या पदार्थ है, द्रव्य क्या है, और घरका नाश क्या चीज है इत्यादि कुछ भी नहिं जानता ॥ ६ ॥ रागी पुरुष स्वाधीनताको छोड देता है और पराधीनताको स्वीकार करता है,

आप ग्रामसे वाहरही एक वृक्ष तले विश्राम करने लगा ॥८७॥ उसने कुरंगीके पास जाकर नमस्कारपूर्वक कहा कि, हे कुरंगी! तुमारा प्रियपति आगया है, सो उसके लिये शीघ्र ही अनेकप्रकारके भोजन वनाओ. मुझे यह वात कहनेके लिये ही उन्होंने भेजा है ॥८८॥ यह सुनकर उस कुटिला मुग्धाने कहा कि, तू यही वात वडी स्त्रीके पास जाकर कह; क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष हैं वे क्रम उलंघनकी निंदा करते हैं. वह मेरेसे वडी है, सो प्रथम दिन उसीके घर भोजन होना चाहिये. इस प्रकार समझा कर ॥ ८९ ॥ वह कुरंगी उस आदमीसहित वड़ी सौत (सुन्दरी) के घर जाकर कहने लगी कि, हे सुन्दरी, तेरा पति आगया है, सो उसके लिये वहुत स्वादिष्ट भोजन वना. क्योंकि आज प्रथम दिन तेरे ही घर वे जीमेंगे ॥ ९० ॥ यह सुनकर सुंदरीने कुरंगीसे कहा कि, हे मिष्ट भाषिणी! सुंदर यौवनकी समान मैं उज्वल (पवित्र) भोजन तो वनाऊंगी परन्तु वह तेरा पति जीमेगा नहीं ॥ ९१ ॥ उस सुभागाने (कुरंगीने) हंसकर कहा कि यदि वह वास्तवमें मुझे प्यारी समझता है तो मेरे वचनानुसार तेरे इस सुंदर घरमें अवश्य जीमेगा तू भोजन तो वना ॥ ९२ ॥ इसप्रकार कुरंगीके वचन सुनकर वह अनेकप्रकारके षट्रस पूरित भोजन वनाती हुई. "जो सज्जन पुरुष होते हैं वे अपनी समान ही सवको सरल समझते हैं" ॥ ९३ ॥ वह अलक्षितदोषा मायाचारिणी अपने धनहीन घरको छिपाती हुई, सो ठीक ही है. मायाचारिणी स्त्रियें अपने समस्त दूषणरूपी धनको छिपा लेती हैं ॥९४॥ इसकारण वह हीनाचारिणी महान् दूष-

णोंकी धरनेवाली धर्मके मार्गको तजकर अपने पतिको इसप्रकार ठगती हुई. क्योंकि जो पापी जीव हैं वे संसारके अपरिमित दुःखोंको नहिं जानते ॥ ९५ ॥

इतिश्री अमितगताचार्य्यकृत धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें चौथा परिच्छेद पूर्ण भया ॥ ४ ॥

अथानंतर कामकी व्यथासे पीड़ित है चित्त जिसका ऐसा वह बहुधान्यक ग्रामकूट भी उत्साहपूर्वक हर्षित हो शीघ्र ही कुरंगीके घर गया ॥ १ ॥ सो मेघोंके विना आकाश अथवा नगरनिवासियोंके विना श्रेष्ठ नगरकी समान अपने घरको धनधान्यादिकसे शून्य (खाली) देखकर भी ॥ २ ॥ वह मूढ कुरंगीके मुखावलोकनके लिये आकुलितचित्त होकर अपने घरको चक्रवर्तिके घरसे भी अधिक देखता (मानता) हुवा ॥ ३ ॥ तथा वह ऐसा मानता हुवा कि जो कार्य्य मेरी प्रिया करे सो मुझे प्रिय है और जो यह नहिं करती वे सब भी मुझे प्रिय हैं ॥ ४ ॥ रागी नर अन्यको नहिं देखे तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं क्योंकि—जिनके नेत्र रागने अंधे कर दिये. वे अपने आपको (आत्माको) भी नहिं देखते ॥ ५ ॥ तथा जो रक्त नर होता है वह धर्म क्या है, अपना कर्तव्य क्या है. गुण क्या है. सुख क्या है, त्यागनेयोग्य वस्तु कोनसी है, ग्रहण करनेयोग्य वस्तु कोनसी है, यश क्या पदार्थ है. द्रव्य क्या है, और घरका नाश क्या चीज है इत्यादि कुछ भी नहिं जानता ॥ ६ ॥ रागी पुरुष स्वाधीनताको छोड देता है और पराधीनताको स्वीकार करता है,

धर्मकार्य्यको छोड़ कर पापकार्य्यमें रमने लग जाता है ॥७॥ रागकर ग्रसित पुरुष शीघ्रही महती आपदाको प्राप्त होता है. क्या मांस लगी हुई फांसीमें आसक्त होकर फसा हुवा मीन मृत्युपनेको प्राप्त नहिं होता ? ॥ ८ ॥ योग्य अयोग्यको न जाननेवाले हिरणको जिसप्रकार शिकारी मार डालता है, उसीप्रकार रक्तपुरुषको दुर्निवार बाणोंके द्वारा कामदेव मार डालता है ॥९॥ रक्तपुरुषको देखकर सज्जनजन तो शोच (अपशोस) करते हैं और दुर्जनजन उपहास करते हैं, तथा बहुतसे लोक तिरस्कार भी करते हैं, अथवा ऐसी कोनसी आपदा है कि जिसको रक्तपुरुष नहिं भोगता ? ॥१०॥ बुद्धिवानोंको चाहिये कि रागमें उपर्युक्त प्रकारसे दूषण जानकर छोड़ दे. ऐसा कौन बुद्धिमान है जो सर्पको विषका घर जानता हुवा भी नहिं छोड़ै ? ॥ ११ ॥ तत्पश्चात् वह बहुधा न्यक क्रीड़ाके साथ प्रफुल्लित कान्तिवाले प्रियाके मुखरूपी कमलको देखता हुवा घरके द्वारपर स्थित हो रसोई घरको देखा और—॥ १२ ॥ क्षण एक ठहर कर अपने मनको प्यारी ऐसी कुरंगीको कहता हुवा कि हे कुरंगी, मुझे शीघ्र ही भोजन दे, विलम्ब क्यों करती है ? ॥ १३ ॥ तब वह पुरुषोंकी नाश करनेवाली कुटिल अभिप्रायकी धरनेवाली कुरंगी यमराजके भयानक धनुषके समान भ्रुकुटी चढाकर अपने पतिको कहती हुई कि—॥ १४ ॥ हे दुष्टबुद्धि ! पूर्वपुरुषोंकी मर्य्यादा पालनेके लिये जिसके पास समाचार भेजा, उसी अपनी माके घर जा और वहीं पर भोजन कर ॥ १५ ॥ देखो, उस कुरंगीने अपने आप ही तो सुंदरीको कहा कि भर्त्ता आज तेरे

ही घर जीमेंगे, फिर आप ही पतिके लिये क्रोध करती है सो ठीक ही है, 'जिन स्त्रियोंने अपने पतिको वशमें कर लिया है वे कोन २ सा अपराध नहिं लगातीं? ॥१६॥ यह स्वभाव ही है कि दुष्ट स्त्री अपने आप दोष (अन्याय) करकें अपने उस दोषको छिपानेके अभिप्रायसे पतिपर कोप किया करती हैं ॥ १७ ॥ कुटिल अभिप्रायवाली स्त्रियें शोच विचार कर ऐसा वचन कहती हैं कि जिससे बडे २ बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी नष्ट होजाती है अथवा भ्रमरूपी चक्रमें गोता खाने लग जाती है ॥ १८ ॥ स्त्रियोंके मान होने (रूठजाने) पर अवज्ञावस्थामें अन्यसे करनेमें नहिं आवे, ऐसी स्त्रीकी स्थिरताको भलेप्रकार करनेके लिये रागीजन स्त्रियोंके किये हुये क्रोध, मान व अवज्ञा वगेरहको स्वभावसे ही सह लेते है॥१९॥ जो नीच रक्तपुरुष होता है, उसको स्त्री ज्यों ज्यों तिरस्कार करती है, त्यों त्यों मंट्टककी तरहँ उसके सम्मुख जाता है और– ॥ २० ॥ वह विचित्रप्रकारके आश्चर्य करनेवाली स्त्री उस रक्तपुरुषको रागी (मोहित) करलेती है और रागयुक्त किया हुवा पुरुषोंका मन शीघ्र ही रंजायमान हो जाता है ॥२१॥ जिसप्रकार कर्मकार (लुहार) लोहेको बहुतसा ताप देकर उसे तोड़ भी सक्ता है और जोड़ भी सक्ता है, उसी प्रकार स्त्री भी प्रेमको तोड़ने और जोड़नेरूप दोनों कार्योंमें समर्थ होती है ॥ २२॥ जिसप्रकार बिलाईके भयसे मूसा सिकुड़कर चुप हो बैठ जाता है, उसीप्रकार वह बहुधान्यक पुरंगीके उपर्युक्त वचन सुनकर अवाक् (गूंगा) हो बैठ गया ॥ २३ ॥ पत्नाप्रियकी मिथ्यापि आताप नो सुखसे भरा जा

सक्ता है, परन्तु स्त्रीकी भयकारिणी भृकुटी सहित वक्रदृष्टि को कोई भी नहिं सह सक्ता ॥२४॥ दोनों हाथ जोड़ कर वार्तालाप (प्रार्थना) की हुई भी वह दुष्टा क्रोधायमान महाविषवाली सर्पिणीकी तरहँ बड़बडाती व चिल्लाती ही रही ॥ २५ ॥ दुर्निवार रोगकी समान पुरुषोंको निरन्तर कष्ट देनेवाली इसप्रकारकी दुःशील (खोटे स्वभावकी धरनेहारी) स्त्रियें पापके प्रभावसे ही होतीं हैं ॥ २६ ॥ इसी अवसरमें "हे पिताजी घर चल कर भोजन कीजिये" इसप्रकार उसके पुत्रद्वारा प्रार्थनापूर्वक बुलाने पर भी वह मूर्ख चिन्तातुरकी समान चुप हो रहा तव-॥ २७ ॥ "तूने यह क्या पाखंड रचा है, अपनी प्रियाके घर जाकर क्यों नहीं जीमता?" इसप्रकार कुरंगीके घुड़कनेपर वह उसीवक्त डरता २ सुंदरीके घर चला गया ॥ २८ ॥ वहां पहुंचते ही उस सुंदरीने परमस्नेह प्रगट किया और अपने निर्मलचित्तकी समान विशाल कोमल उत्तम आसन दिया ॥ २९ ॥ तत्पश्चात् उसने पतिके सम्मुख अनेकप्रकारके पात्र रखकर उनमें यौवनकी समान सुंदर रसीले भोजन परोसे. परन्तु- ॥३०॥ जिसप्रकार निर्मल विशुद्ध जिनवाणीद्वारा वर्णन किया हुवा सम्यक्त्व अभव्यको नहिं रुचता, उसीप्रकार सुन्दरीके दिये हुये भोजन उसको स्वादिष्ट (अच्छे) नहिं लगे ॥ ३१ ॥ उसने ऐसा समझ लिया कि यह जो कुछ करती है वे सब मुझे अनिष्ट (अप्रिय) हैं और यह कुरंगी जो कुछ करती है वे सव कार्य मुझे प्रिय हैं ॥ ३२ ॥ जो जीव मोहके वशीभूत हो जिससे विरक्त हो जाता है वह वस्तु उत्तम होने पर भी

उसको कदापि नहिं रुचती ॥ ३३ ॥ इसीकारण महास्नेहकी धारण करनेवाली स्त्रीकी समान सुंदर पुष्टिकारक सुवर्णपात्रमें परोसा हुवा वह सुन्दर भोजन उसको नहिं रुचा ॥३४॥ कामरूपी अंधकारसे आच्छादित अपने सन्मुख पात्रमें उत्तम भोजनको देखता हुवा, वह बहुधान्यक इसप्रकार विचार करने लगा कि, चन्द्रमाकी मूर्त्तिसमान आनंदको देनेवाली, सुन्दर कुचकी धारक वह कुरंगी किसकारणसे क्रोधायमान होती हुई ? मेरी तरफ दृष्टि भी नहिं करती ? निश्चयकरके उसने मुझे वेश्याके साथ सोयाहुवा समझकर ही कोप किया है. सो ठीक है, संसारमें ऐसा कोई भी विषय नहीं है जो चतुर स्त्री न जान सके ॥३५॥३६॥३७॥ इसप्रकार विना जीमे ही ऊंचा मुख किया हुवा देख उसके कुटुंबी जनोंने कहा कि "यहां सब मनोहर वस्तु है सो जीमो, क्या ये भोजन तुमको अच्छे नहिं लगते ? ॥ ३८ ॥ तब वह बोला कि क्या जीमूं ? मेरे मनलायक यहां कुछ भी नहीं है. मुझे कुरंगीके घरसे कुछ भी भोजन लाकर दो तो ठीक हो ॥३९॥ इसप्रकार पतिके वचन सुनकर सुंदरी उसी वक्त कुरंगीके घर गई और कहा कि—हे कुरंगि ! पतिको जो कुछ रुचिकारक भोजन हो सो दे ॥४०॥ कुरंगीने कहा कि पतिका भोजन तेरे घरपर होगा ऐसा समझकर मैंने आज कुछ भी नहिं बनाया ॥ ४१ ॥ यदि वह रक्तबुद्धि मेरा दिया हुवा गोमय (गोबर) खा लेगा तो मेरे समस्त दूषण भी सह लेगा ॥ ४२ ॥ इसप्रकार अपने मनमें विचार कर उसने उसी वक्त गर्म २ चावे हुवे गेहूंके ह दाने जिनमें ऐसा निश्च पतला २ गोबर लाकर—॥ ४३ ॥ "हे. यह भोजन है ज्ञानकर

स्वामीको परस " ऐसा कह कर वर्त्तनमें भरके सुन्दरीको सोंप (दे) दिया ॥ ४४ ॥ जब उस सुंदरीने लाकर वह गोवर स्वामीको परोस दिया तो सुंदर भोजनको छोड़कर उस गोवरकी वारंवार प्रशंसा करता हुवा विष्टाको शूकरकी तरहँ खा गया ॥ ४५ ॥ आचार्य्य कहते हैं कि उस वहुधान्यकने कुरंगीका दिया हुवा गोवर खा लिया तो इसमें क्या आश्चर्य हुवा ? क्योंकि रागी पुरुष तो स्त्रियोंके जघनस्थलके महा अशुचि पदार्थको भी खा लेता है ॥ ४६ ॥ विरागीको प्रशस्त कहिये सुंदर भी असुंदर भासता है. परन्तु रागी पुरुषको प्रगटपणेकर असुंदर पदार्थ भी सुन्दर दीखता है ॥ ४७ ॥ जगतमें ऐसा कोई भी नीच कार्य्य नहीं है, जो रागी पुरुष स्त्रीकी आज्ञासे नहिं करे. क्योंकि वहुतसे स्त्रीभक्त रागी पुरुष विष्टातक खा लेते हैं. तव गोवर उसकी अपेक्षा पवित्र क्यों नहीं ? ॥ ४८ ॥ सो वह ग्रामकूट केवलमात्र गोबर ही खाकर अपनी बैठकमें जा वैठा और अपनी प्रियाके क्रोधका कारण जाननेके लिये ब्राह्मणसे (ज्योतिर्षीसे) पूछने लगा ॥ ४९ ॥ कि हे भद्र ! मेरी स्त्री मेरेपर रुष्ट क्यों हो गई ? क्या निश्चयसे उसने कोई मेरा दुश्चरित्र जान लिया है ? यदि तुम जानते हो तो कहो ॥ ५० ॥ उस ब्राह्मणने कहा कि हे भद्र ! अपनी स्त्रीकी बात तो रहने दो, इससे पहिले जो स्त्रियोंकी चेष्टायें हैं वे थोड़ीसी कहता हूं सो सुन लो ॥ ५१ ॥ जगतमें ऐसा कोई भी दोष नहीं है जो स्त्रियोंमें न हो. क्योंकि 'ऐसा कौनसा अन्धकार है जो रात्रिमें कहीं भी नहीं हो' ॥ ५२ ॥ समुद्रके जलका परिमाण

करना तो शक्य है परन्तु समस्त दोषोंकी खानिरूप स्त्री-
-के दोषोंकी गिनती कदापि नहिं हो सक्ती ॥ ५३ ॥ दूसरों-
के दोष ढूंढ़नेमें चतुर द्विजिव्ह कहिये एक ही बातको कहीं
कुछ कहीं औरकी और कहनेवाली स्त्रियोंका क्रोध महाक्रोधा-
यमान सर्पिणीकी समान कदापि शमन नहिं होता ॥ ५४ ॥
यह स्त्री, सदा उपचार (चिकित्सा) करते हुये भी अत्यंत
वृद्धिरूप वेदनाकी सदृश जीवनको क्षय करनेवाली है
॥ ५५ ॥ इधर उधर भटकते हुये दोषोंका परस्पर कभी
मिलाप नहिं होता था, इसकारण ब्रह्माजीने समस्त दोषोंको
एकही जगहँ मिलाप करानेकी इच्छासे ही मानो यह स्त्री-
रूपी सभा बनाई है ॥ ५६ ॥ जिसप्रकार जलकी खानि
नदी है उसी प्रकार अनर्थोंकी खानि स्त्री है और जैसे विषका
घर सर्पिणी है उसीप्रकार दुश्चरित्रोंकी वस्ती भी (घर) यह स्त्री
है ॥ ५७ ॥ जिसप्रकार बेलोंके उत्पन्न होनेको पृथिवी कारण
है, उसीप्रकार अपयशको उत्पन्न करनेका कारण स्त्री है
तथा जैसी अंधकारकी खानि रात्रि है, उसीप्रकार दुर्नयोंकी
महाखानि स्त्री है ॥ ५८ ॥ यह स्त्री अपना स्वार्थ साधनेमें
चोरटीकी समान है, आताप करनेको अग्निकी सदृश है, इष्टप्राप्ति-
तामें अचल छायाकी समान है और सन्ध्याकी समान क्षणमात्र
प्रेमकी धरनेवाली है ॥ ५९ ॥ तथा कुत्तीकी समान अपवित्र
नीच, खुशामद करनेवाली, पापकर्मसे उपजी मलीन उच्छि-
ष्टकी भक्षण करनेवाली है ॥ ६० ॥ दुर्लभ वस्तुमें लोभ
से रंजायमान होकर अपने स्वाधीन वस्तुको छोड़नेवाली
और महान घोर आरम्भ करनेवाली, न कभी डरनी और

स्वामीको परस" ऐसा कह कर वर्त्तनमें भरके सुन्दरीको सौंप (दे) दिया ॥ ४४ ॥ जब उस सुंदरीने लाकर वह गोवर स्वामीको परोस दिया तो सुंदर भोजनको छोड़कर उस गोवरकी वारंवार प्रशंसा करता हुवा विष्टाको शूकरकी तरहँ खा गया ॥ ४५ ॥ आचार्य्य कहते हैं कि उस वहुधान्यकने कुरंगीका दिया हुवा गोवर खा लिया तो इसमें क्या आश्चर्य हुवा? क्योंकि रागी पुरुप तो स्त्रियोंके जघनस्थलके महा अशुचि पदार्थको भी खा लेता है ॥ ४६ ॥ विरागीको प्रशस्त कहिये सुंदर भी असुंदर भासता है. परन्तु रागी पुरुषको प्रगटपणेकर असुंदर पदार्थ भी सुन्दर दीखता है ॥ ४७ ॥ जगतमें ऐसा कोई भी नीच कार्य्य नहीं है, जो रागी पुरुष स्त्रीकी आज्ञासे नहिं करे. क्योंकि वहुतसे स्त्रीभक्त रागी पुरुष विष्टातक खा लेते हैं. तव गोवर उसकी अपेक्षा पवित्र क्यों नहीं? ॥ ४८ ॥ सो वह ग्रामकूट केवलमात्र गोबर ही खाकर अपनी बैठकमें जा बैठा और अपनी प्रियाके क्रोधका कारण जाननेके लिये ब्राह्मणसे (ज्योतिषीसे) पूछने लगा ॥ ४९ ॥ कि हे भद्र! मेरी स्त्री मेरेपर रुष्ट क्यों हो गई? क्या निश्चयसे उसने कोई मेरा दुश्चरित्र जान लिया है? यदि तुम जानते हो तो कहो ॥ ५० ॥ उस ब्राह्मणने कहा कि हे भद्र! अपनी स्त्रीकी बात तो रहने दो, इससे पहिले जो स्त्रियोंकी चेष्टायें हैं वे थोड़ीसी कहता हूं सो सुन लो ॥ ५१ ॥ जगतमें ऐसा कोई भी दोष नहीं है जो स्त्रियोंमें न हो. क्योंकि 'ऐसा कौनसा अन्धकार है जो रात्रिमें कहीं भी नहीं हो' ॥ ५२ ॥ समुद्रके जलका परिमाण

करना तो शक्य है परन्तु समस्त दोषोंकी खानिरूप स्त्री-
-के दोषोंकी गिनती कदापि नहिं हो सक्ती ॥ ५३ ॥ दूसरों-
के दोष ढूंढ़नेमें चतुर द्विजिव्ह कहिये एक ही बातको कहीं
कुछ कहीं औरकी और कहनेवाली स्त्रियोंका क्रोध महाक्रोधा-
यमान सर्पिणीकी समान कदापि शमन नहिं होता ॥ ५४ ॥
यह स्त्री, सदा उपचार (चिकित्सा) करते हुये भी अत्यंत
वृद्धिरूप वेदनाकी सदृश जीवनको क्षय करनेवाली है
॥ ५५ ॥ इधर उधर भटकते हुये दोषोंका परस्पर कभी
मिलाप नहिं होता था, इसकारण ब्रह्माजीने समस्त दोषोंको
एकही जगहँ मिलाप करानेकी इच्छासे ही मानो यह स्त्री-
रूपी सभा बनाई है ॥ ५६ ॥ जिसप्रकार जलकी खानि
नदी है उसी प्रकार अनर्थोंकी खानि स्त्री है और जैसे विषका
घर सर्पिणी है उसीप्रकार दुश्चरित्रोंकी वस्ती भी (घर) यह स्त्री
है ॥ ५७ ॥ जिसप्रकार वेलोंके उत्पन्न होनेको पृथिवी कारण
है, उसीप्रकार अपयशको उत्पन्न करनेका कारण स्त्री है
तथा जैसी अंधकारकी खानि रात्रि है, उसीप्रकार दुर्नयोंकी
महाखानि स्त्री है ॥ ५८ ॥ यह स्त्री अपना स्वार्थ साधनेमें
चौरटीकी समान है, आताप करनेको अग्निकी सदृश है, हटग्राहि-
तामें अचल छायाकी समान है और सन्ध्याकी समान क्षणमात्र
प्रेमकी धरनेवाली है ॥ ५९ ॥ तथा कुत्तीकी समान अपवित्र
नीच, खुशामद करनेवाली, पापकर्मसे उपजी मलीन उच्छि-
ष्टकी भक्षण करनेवाली है ॥ ६० ॥ दुर्लभ वस्तुमें शीघ्र
ही रंजायमान होकर अपने स्वाधीन वस्तुको छोड़नेवाली
और महान् घोर साहस करनेवाली, न कभी डरती और

न शर्माती है. तथा—॥ ६१ ॥ विजलीकी समान अस्थिर वाघिनीकी समान मांस खानेकी इच्छक, मच्छीकी समान चपल और दुर्नीतिकी समान दुख देनेवाली है ॥ ६२ ॥ हे महाशय, वहुत कहांतक कहूं, तुमारे घरमें जो यह कुरंगी है, इसको प्रत्यक्षमें अपना शत्रु समझना ॥ ६३ ॥ हे भद्र! सम्यक्चारित्रकी समान दुर्लभ तेरा समस्त धन, इस कुरंगीने अपने यारोंको देकर नष्ट करादिया है ॥ ६४ ॥ जो स्त्री निर्भयचित्त हो तेरे धनको नष्ट करती है, वह दुराशया तेरे जीवनको हरै तो उसे कोन निवारण कर सक्ता है ॥ ६५ ॥ वरावर रक्षित न होनेके कारण सव दिन खोटे मार्गमें चलनेवाली स्त्री जूतीकी तरह पुरुषको स्खलित करदेती है ॥ ६६ ॥ जो मूर्ख निर्दयचित्तवाली स्त्रियोंका विश्वास करता है वह क्षुधासे आकुलित सार्पिणीका विश्वास करता है ॥ ६७ ॥ जिसके घरमें दुष्ट स्त्री रहती हो तो वह सर्पिणी, तस्करी, दुष्ट हथिनी, राक्षसी, शाकिनीकी समान प्राणोंको हरनेवाली है ॥ ६८ ॥ इसप्रकार हितवादी भट्टके वचन सुनकर उस भ्रष्ट-बुद्धि वहुधान्यकने सवका सव कुरंगीको कह सुनाया ॥ ६९॥ उसने कहा कि हे स्वामी! इसने मेरा शील हरना चाहा था, इसकारण मेरा यह दुशमन है, सो यह मेरे दूषणोंको कहता है ॥७०॥ जिसप्रकार समुद्र नक्रोंका (नाके वगैरहका) स्थान है उसी प्रकार यह दुष्ट भट्ट समस्त अन्यायोंकी खानि है. सो हे प्रभो, इसको शीघ्र ही घरसे निकाल देना चाहिये ॥७१॥ कुरंगीके इस वचनसे वह हितैषी भी तिरस्कृत किया गया. सो

ठीकही है. 'स्त्रियोंकी आज्ञामें चलनेवाला रक्तपुरुष ऐसा कौनसा अनुचित कार्य्य है जो नहिं करता' ॥ ७२॥ 'अविचारी पुरुषोंका दिया हुवा सद्वचन भी सर्पोंको हितकारक दूध पिलानेकी समान महा भयकारी है' ॥ ७३ ॥ इस संसारमें हितरूप वचन कहते हुये भी ग्रामकूटकी समान निर्विचार रागान्धपुरुषोंके द्वारा प्रत्यक्षतया दोषारोपण किया जाता है ॥ ७४ ॥ जो मनुष्य हितैषी पुरुषके द्वारा कहे हुये दुष्टशीलाके चरित्र उसी दुःशीलाको जाकर कह देता है वह और क्या नहीं करैगा ? अर्थात् सब कुछ करेगा ॥ ७५॥ हे विभो ! इसप्रकार मैंने दुष्टचित्तवाले रक्तपुरुषको सूचित किया. अब द्विष्टपुरुषका विधान कहता हूं सो सुनो ॥ ७६ ॥

२ । द्विष्टपुरुषकी कथा ।

कोटीनगरमें स्कंध और वक्र नामके दो जमीदार किसान रहते थे. उनमेंसे वक्र नामका किसान बड़ा वक्रपरिणामी था ॥ ७७ ॥ वे दोनों किसान एक ही ग्रामकी उपज खानेवाले थे, इसकारण दोनोंमें परस्पर बड़ा द्वेष (वैर) होगया. सो ठीक ही है क्योंकि 'जहां दो चार मनुष्योंके एक ही द्रव्यकी अभिलाषा होती है वहांपर अवश्य ही वैर हो जाता है' ॥ ७८ ॥ प्रकाश चाहनेवाले काक और नित्य अन्धकार चाहनेवाले उलूकी तरहँ उन दोनोंमें स्वाभाविक दुर्निवार वैर होगया ॥ ७९ ॥ इनमेंसे वक्र नामका किसान सदैव लोगोंको बड़ा दुःख देता था, सो नीति ही है कि—'जिसने दोषबुद्धि धारण करी, वह मनुष्य किसको सुखदायक होगा' ॥ ८० ॥ एक समय वक्र प्राणहारी कोढ़ (असाध्यरोग)

से पीड़ित होगया. सो नीति ही है कि—'जो पापिष्ठ परको दुःख-
दायक होता है वह कोनसे दुःखको प्राप्त नहिं होता' ॥ ८१॥
वक्रकी ऐसी अवस्था होनेपर भी वक्रके पुत्रने कहा कि—पिताजी
आप विशुद्धमन होकर किसी ऐसे धर्मको धारण करो कि जि-
ससे आपको परलोकमें सुखकी प्राप्ति हो ॥ ८२ ॥ परलोकमें
एकमात्र सैंकड़ों सुखदुखका कर्ता अपना किया हुवा पुण्यपा-
परूप कर्म ही साथ जाता है. पुत्र कलत्र धनधान्यादिमेंसे
कोई भी साथ नहिं जाता ॥ ८३ ॥ हे तात! अन्तरहित वड़े
लंबे मार्गवाले इस संसाररूपी वनमें सिवाय आत्माके अप-
ना व पराया कोई भी नहीं हैं. इसकारण कुबुद्धिको छोड-
कर कोई हितकारी कार्य्य करें ॥ ८४ ॥ मेरी समझमें तो
आप मित्रपुत्रादिकसे मोह छोड़कर ब्राह्मण और साधुजनोंके
अर्थ धनादिकका दान दें और किसी इष्टदेवका स्मरण करें
जिससे आपको सुखदायक गतिकी प्राप्ति हो ॥ ८५ ॥ ये
वचन सुनकर वक्रने कहा कि, हे पुत्र! मेरा एक हितरूप
कार्य्य (जो कि मैं कहता हूं) करो. जो सुपुत्र (सपूत) हो-
ता है वह पिताके पूज्यवाक्यका उल्लंघन कदापि नहिं करता
॥ ८६ ॥ रे वत्स! मेरे जीते जी तो यह स्कन्ध कदापि सुखी
नहिं हो सका, परन्तु वंधु पुत्र कुटुम्ब सम्पत्तिसहित उस-
का विनाश नहिं कर सका. सो हे पुत्र, यह जिसप्रकार समूल
(सकुटुंव) नष्ट हो जाय ऐसा कोई उपाय करना, जिससे कि मैं
मनोहर शरीरको धारण कर प्रसन्नचित्तसे सदैवके लिये
स्वर्गवास कर सकूं॥ ८७॥ ८८॥ मेरी समझमें इसकेलिये
यह उपाय रचना कि—मेरे मरजाने पर मेरी लाशको

स्कन्धके खेतमें लेजाकर लकड़ियोंके सहारे खड़ी कर देना. तत्पश्चात् अपनी समस्त गौ भैंस घोड़ोंको उसके खेतमें छोड़ देना, जो वे उसके खेतका समस्त धान्य नष्ट कर दे. और तू किसी वृक्ष वा घासकी ओटमें छिप कर देखते जाना. जब स्कन्ध क्रुद्ध होकर मेरे पर घात (वार) करै तो उसी वक्त तू अन्य लोगोंको सुनानेके लिये वड़े जोरसे चिल्ला उठना कि स्कन्धने मेरे पिताको मार डाला ॥ ८९ ॥ ९० ॥ जब तू इसप्रकार करैगा तो राजा स्कन्धद्वारा मुझको मरा जान स्कन्धको कुटुम्बसहित दण्ड देगा सम्पत्ति छीन लेगा तो यह स्कन्ध पुत्रसहित मरणको प्राप्त हो जायगा ॥ ९१ ॥ इसप्रकार महापापरूप वचन कहता २ वह बक्र मर गया और उसके पुत्रने भी पिताकी आज्ञाका पालन किया. सो नीति ही है कि—'पापकार्य्य करनेवालोंके सहायक अनेक हो जाते है' ॥ ९२ ॥ जो दुष्ट मरता २ भी परको सुखी देखनेमें अधीर है, उसको सिवाय निर्दयी यमराजके और कोन है जो हितकी वात समझा सके ? ॥ ९३ ॥ भो ब्राह्मण ! जिसप्रकार बक्रने अपने पुत्रके कहे हुये हितवचनोंको कुछ भी स्वीकार नहिं किया. सो उस बक्रकी सदृश जो कोई तुम लोगोंमें निकृष्ट (दुष्ट) हो तो मैं हितरूप वचन कहते डरता हूं ॥ ९४ ॥ जो पुरुष महा द्वेषरूपी अग्निसे दग्धहृदय हैं, वे पराई चिंताके सिवाय न तो सुखसे खाते और न सोते और न पराई सम्पत्तिको देख सक्ते अर्थात् वे दोनों ही लोकमें निर्मल सुखको नाहिं पाते ॥ ९५ ॥ जो नीच निरंतर द्विष्टचित्त रहते हैं और तुच्छ अज्ञानी पराई सम्पत्तिको नाहिं देख सक्ते, वे

निरंतर जलते हुये अन्तरहित नर्करूपी अग्निकुंडमें चिरकाल-तक रहना स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु अपने द्विष्ट स्वभावको नाहिं छोड़ते ॥ ९६ ॥ जो मूढ हितवचनको छोड़कर हमेशह विपरीतताको ही ग्रहण करता है, ऐसे दुष्टचित्तके सन्मुख बहुज्ञानी जन कुछ भी वचन नाहिं कहते ॥ ९७ ॥

इति श्रीअमितगतिआचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें पंचम परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ५ ॥

भो ब्राह्मणो ! तुमने अग्निकी समान तापकारी द्विष्ट-पुरुषकी कथा तो सुनी किन्तु अब पाषाणसमान नष्टबुद्धि मूढपुरुषकी कथा सुनो ॥ १ ॥

३ । मूढपुरुषकी कथा ।

यक्षदेवोंके स्थानकी समान निधानका खजाना देवालयोंसे पूरित कंठोष्ठ नामका एक नगर था ॥ २ ॥ उसमें विप्रोंकर पूजनीय वेदवेदांगका पाठी अर्थात् ब्रह्माकी समान चार वेद ही है मुख जिसके ऐसा एक भूतमति नामका ब्राह्मण रहता था ॥ ३ ॥ उस धीरचित्तके वेदादि पढते २ पचास वर्ष तो बालब्रह्मचर्य्यावस्थामें ही बीत गये ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् उसके कुटुंबी जनोंने यज्ञकी अग्निशिखाके समान उज्वल, नारायणके लक्ष्मीकी समान यज्ञा नामकी एक कन्यासे विधिपूर्वक विवाह करा दिया ॥ ५ ॥ वह भूतमति उपाध्यायपदमें ही तिष्ठताहुआ लोकोंके पढानेमें आशक्तबुद्धिवाला, समस्त ब्राह्मणोंसे पूजनीय, यज्ञ करानेमें प्रवीण, भोगाभि-

लाषियोंमें मान्य, उस यज्ञाके साथ अनेक प्रकारके भोग भोगताहुवा स्थिरचित्त पृथिवीमें प्रसिद्ध विद्वान् हो सुखसे निवास करता था ॥ ६ ॥ ७॥ उसके यहां पढ़नेकी इच्छासे स्त्रियोंके नेत्ररूपी भ्रमरोंको कमलसमान युवावस्थाका धारक यज्ञकी समान पवित्र यज्ञ नामका एक बटुक (ब्राह्मणका लड़का) आया ॥ ८ ॥ उस बटुकको विनयवान् और वेदोंके अर्थग्रहण करनेमें चतुर देखकर उस भूतमतिने अपने घर शिष्य बनाकर रख लिया, सो मानो उसने मूर्त्तिमान अनर्थ ही ग्रहण कर लिया ॥ ९ ॥ उस ब्राह्मणके लड़केको देखते ही यज्ञा तो विव्हल होगई और जिसप्रकार अतिशय भारसे लदी हुई गाडी एकदम ठहर जाती है, उसीप्रकार यज्ञाके नेत्रोंकी दृष्टि अन्य पदार्थोंसे हटकर उसीके देखनेमें स्थिर हो गई ॥ १० ॥ रति और कामकी समान उन दोनोंके सदैव एकत्र रहनेरूपी जलसे सींचा हुवा इष्टफलदायक स्नेहरूपी वृक्ष भी प्रतिदिन बढ़ने लगा ॥ ११ ॥ दरिद्रकी सभा, सेवककी प्रतिकूलता और वृद्धपुरुषके तरुणी भार्य्या, ये तीन कुलको क्षय करनेके लिये कारण हैं ॥ १२ ॥ 'पर पुरुषमें आसक्त हुई स्त्री समस्त दोषोंको करती है सो उचित ही है, वज्राग्निकी ज्वाला किसको आतापकारी नहिं होती' ॥ १३ ॥ जो पुरुष स्त्रीको अपने घरमें स्वतंत्र और निर्गल करता है, वह साक्षात् धान्यमें जलती हुई अग्निशिखाको नहिं बुझाता. क्योंकि—॥ १४ ॥ संभाल नहिं की हुई स्त्री उदयको प्राप्त होकर बढ़े हुये असाध्यरोगकी समान प्राणोंको क्षय करती है ॥ १५ ॥ यह स्त्री सबको तृप्त करती

है, तथा सेवन करती है, इसीकारण इसका नाम 'योषा' है और क्रोध करनेवाली है, इसकारण इसका नाम 'भामिनी' है ॥ १६ ॥ और अपने दोषोंको ढक लेती है, इसकारण विद्वज्जन इसको 'स्त्री' कहते हैं. इससे चित्त विलीन हो जाता है, इसकारण इसको 'विलया' कहते हैं ॥ १७ ॥ यह पापकार्य्योंमें रमाती है, इसीकारण इसको 'रमणी' कहते है। यह 'कु' अर्थात् समस्त पृथिवीको मारती है, इसकारण इसको 'कुमारी' कहते हैं ॥ १८ ॥ यह लोकोंको वलरहित कर देती है इसकारण इसको 'अवला' कहते हैं. इसमें आसक्त होकर मनुष्य प्रमादी हो जाता है इसकारण इसका एक नाम 'प्रमदा' भी है ॥१९॥ अनेक अनर्थोंके करनेमें प्रवीण स्त्रियोंके ये सब नाम ही प्रगटतया दुःखकारक वेदनाकी समान दुःखोंके कारण हैं ॥ २० ॥ अरक्षित (वशमें नहिं की हुई) स्त्री मनोवृत्तिकी समान निरन्तर दोषोंको ही धारण करती है इसकारण स्त्रियोंको सदा वशमें रखना चाहिये ॥ २१ ॥ जो अपना हित चाहते हैं, वे सत्पुरुष नदी, सर्पिणी, व्याघ्री और मृगलोचिनी स्त्रियोंका कदापि विश्वास नहिं करते ॥ २२ ॥ एक समय मथुराके ब्राह्मणोंने कुछ भेट देकर पुंडरीक नामका यज्ञ करानेके लिये भूतमतिको वुलाया. सो "हे यज्ञे! घरकी रक्षा करती हुई तू तो घरके भीतर सोया करना और इस वटुकको घरसे बाहर द्वारपर सुलाना" इसप्रकार कह कर वह भूतमति मथुराको चला गया ॥ २३ ॥ २४ ॥ अपने पतिके चले जानेपर उस पापीष्ठाने उस ब्राह्मण विद्यार्थीको अपना जार (यार) वना लिया. सो नीतिही है कि—

'शून्य घरमें व्यभिचारिणी स्त्रियोंका बड़ा राज्य हो जाता है' ॥ २५ ॥ उन दोनोंके परस्पर दर्शन स्पर्शन और वारंवार गुप्तअंगोंके प्रकाशनेसे कामेच्छा, घृतके स्पर्शसे अग्निशिखाकी समान शीघ्र ही तीव्रतया बढ़ गई ॥ २६ ॥ 'बहुधा समस्तप्रकारकी स्त्रियोंकेद्वारा समस्त पुरुषोंका मन हरा जाता है, तो तरुण व्यभिचारिणीके द्वारा तरुण व्यभिचारीका मन क्यों नहीं हरा जायगा' ॥ २७ ॥ इसीकारण वह बटुक उस यज्ञाके पीनस्तनोंसे पीड़ित होकर उसको निरन्तर भोगने लगा. सो नीति ही है कि,—'ऐसा कौन पुरुष है, जो एकान्तमें युवति स्त्रीको पाकर भी वैराग्यको प्राप्त हो जाय' ॥ २८ ॥ विभ्रम (सुन्दरता) की निधान (खानि) उस यज्ञाद्वारा गाढ़ालिंगन कियाहुवा वह बटुक पार्वतीसे आलिंगन किये हुये महादेवजीको तृणके समान भी नहिं मानता था ॥ २९ ॥ स्त्रीपुरुषोंको मिलानेवाला न तो कोई दूत है और न संग करानेको कामदेव ही जाता है, ये तो नेत्रोंके विभ्रमोंसे (कटाक्षोंसे) अपने आप ही तुरन्त मिल जाते हैं ॥ ३० ॥ निःशंक मदनयुक्त व्यभिचारिणी युवा स्त्री पुरुषको देख कर जो कुछ भी न कर बैठी रहे तो इससे बड़ा आश्चर्य और क्या है ? ॥३१॥ जिसप्रकार अग्निकी ज्वालासे घृतका घड़ा स्वभावसे ही पिघल जाता है, उसीप्रकार नतभ्रूके अर्थात् स्त्रीके द्वारा स्पर्शन किया हुवा पुरुष शीघ्रही विलीन (मोहित) हो जाता है ॥३२॥ यह मनुष्य अपनी स्त्रीके द्वारा सुरतरूपी अमृतको पीकर अनेकप्रकारके भोगोंको प्राप्त होकर भी एकान्तमें परस्त्रीको पाकर प्रायः क्षोभको

प्राप्त हो जाता है ॥२३॥ सो यह वटुक तो कामकर पीड़ित मदोन्मत्त तरुण अवस्थाका धारक हैं. सो एकान्तमें तरुण परस्त्रीको पाकर क्यों नहीं क्षोभको प्राप्त होगा ! ॥२४॥ इस-प्रकार दृढप्रेमरूपी फांसीसे वंधा हुवा है चित्त जिनका ऐसे वटुक और यज्ञाको भोगसमुद्रमें मग्न रहते हुये चार महीने वीत गये ॥२५॥ एक दिन उस वटुकको म्लानमुख देखकर प्रेमके भारसे नम्रीभूत यज्ञाने कहा कि,—हे प्रभो ! आज तुम चिन्तातुर क्यों दीखते हो? सो मुझे कहो ॥ २६ ॥ वटुकने कहा कि, हे कान्ते ! तेरे साथ लक्ष्मी और विष्णुकी समान सुख भोगते हुये आज अनेक दिन वीत गये परन्तु—॥३७ हे तन्वि ! अब भट्टजीके आनेका समय निकट आ गया, सो अब क्या करूं और मनको अतिशय प्यारी जो तू उसे छोड़-कर कहां ज़ाऊं? ॥३८॥ यदि यहांपर रहता हूं तो बड़ी विपत्ति है, यदि जाता हूं तो जानेके लिये पांव नहिं उठते, एक तरफ तो नदीका किनारा और दूसरी तरफ व्याघ्र है. क्या करूं द्विविधामें पड़गया हूं ॥ ३९ ॥ यज्ञाने उसे कहा कि तुम इस चिन्ताको छोड़ दो और स्वस्थ होवो, अपने चित्तको अन्यथा मत करो, मैं जो कहती हूं सो करो ॥४०॥ हे सज्जन, अपन दोनों वहुतसा द्रव्य लेकर कहीं अन्यत्र चले जांय तो स्वछन्दताके साथ मनोहर सुरतामृतको भोगते हुये आनन्द करेंगे और दुष्प्राप्य नरभवको सफल करेंगे तथा जाते हुये तारुण्यका सारभूत मनोहर रस पीवेंगे ॥४१॥४२॥ इसकारण हे प्यारे ? व्याकुलताको छोड़कर तुम दो मुरदे लावो. समस्त जनोंके लक्ष्यमें न आवे ऐसा यहांसे

निकलनेका उपाय करूंगी ॥ ४३ ॥ यह सुनकर उस यज्ञाकी समस्त आज्ञाको प्रसन्नचित्तसे पालता हुवा. सो नीति ही है कि–'कामी पुरुष ऐसे कार्योंमें मूर्ख नाहिं होते' ॥४४॥ फिर रात्रिमें जाकर वटुकने स्मशानसे दो मुरदे लाकर रख दिये. सो उचित ही है'स्त्रीसे प्रार्थना किया हुवा पुरुष कौनसा साहस नाहिं करता' ॥ ४५ ॥ उस यज्ञाने एक मुरदेको तो पोलीमें और दूसरेको घरके भींतर डालकर समस्त धन लेकर घरको आग लगा दी और–॥ ४६ ॥ व्याध (शिकारी) की फांसीसे मृगकी समान उस वस्तीसे शीघ्र ही निकल कर उन दोनोंने उत्तरकी तरफका मार्ग ले लिया॥४७॥ वह प्रज्वलित अग्नि समस्त घरको जलाकर धीरें २ शांत हो गई. और वस्तीके लोक भी केवलमात्र भस्मको देख २ कर शोच करने लगे कि–॥ ४८ ॥ देखो ? इस अग्निने सतियोंमें अग्रणी गुणवती ब्राह्मणीको वटुक सहित कैसें जला दिया ? ॥ ४९ ॥ भींतर और वाहरके दोनों मुरदोंके हाड देख कर मनही मन चिंता करते हुये वे समस्त जन अपने २ घरको चले गये ॥ ५० ॥ आचार्य्य कहते हैं कि, तीनलोकमें ऐसा कोई भी प्रपंच (छलकपट) नहीं है, कि जिसको कामसे पढाई हुई स्त्रियें न जानती हों ॥ ५१ ॥ वस्तीके लोगोंद्वारा भेजे हुये पत्रको देखकर वह मूढधी द्विजाग्रणी आया और अपने घरको जला हुवा देखकर विलाप करने लगा कि,–॥ ५२ ॥ हे माहामते वटुक ! मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले, गुरुसेवा करनेमें चतुर तुझे निर्दयी अग्निने कैसें जला दिया ? ॥ ५३ ॥ तुझ सरीखा विनयवान् पवित्र ब्रह्मचारी चतुर गा-

स्त्रोंके पार जानेवाले कुलीन यज्ञ वटुकको अब कहां देखूं ? ॥ ५४ ॥ हाय ! मेरी आज्ञामें रहनेवाली गृहकार्य्यमें तत्पर ऐसी तुझ पतिव्रता सुकुमारीको अग्निने कैसें जला दिया ? ॥५५॥ हे कान्ते ! तुझ सरीखी गुणशील कलाकी आधारभूत बहुत लज्जावती पतिव्रता स्त्री कभी नहिं होगी ॥ ५६ ॥ हे कृशोदरी ! हे चंद्रानने ! मेरे वाक्यानुसार रहनेवाली जो तू ऐसी विपत्तिको प्राप्त हुई, सो इस पापसे मेरी शुद्धि कैसें होगी ? ॥ ५७ ॥ हे तन्वि ! पावोंसे कमलोंको, जंघाओंसे कामके बाण रखनेकी भातड़ीको, पींडियोंसे केलेके थंभको, जघनकी शोभासे रथांग कहिये रथके पहिये अथवा चक्रवाकको,—॥५८॥ नाभिचिन्हसे जलके भ्रमणको, उदरसे वज्रकी शोभाको, कुचोंसे सुवर्णकुंभोंको, कंठसे कमलनालकी शोभाको,—॥ ५९ ॥ मुखसे चन्द्रमाके बिम्बको, नेत्रोंसे मृगीके नेत्रोंको, ललाटसे अष्टमीके चन्द्रमाको, केशोंसे चमरीके पूंछको, ॥६९॥ वचनोंसे कोकिलाको, और क्षमासे पृथिवीको जीतनेवाली ऐसी तुझको स्मरण करते हुये हे कान्ते, मुझे कहां सुख हो सक्ता है ? ॥६१॥ हे कान्ते ! तेरे साथ दर्शन स्पर्शन हसन मधुर भाषण करते देख यमराजने सबको दूर (नष्ट) कर दिया ॥ ६२ ॥ इस रमणीक कंठोष्ठ नगरमें देवांगनाकी समान कंठ होट वगेरह अंगोंसे सुन्दर जो तू, सो मुझे भोगनेके लिये नहिं मिली ॥६३॥ हे मृगाक्षी ! चकवीके मरनेपर चकवेकी समान अब तेरे विना सुखकी आशा और निर्वृत्ति कहाँ ? ॥ ६४ ॥ इसप्रकार विलाप करते हुये उस ब्राह्मणको एक ब्रह्मचारीने कहा कि—हे मूढ ! प्रयोजन नष्ट

नेपर अब वृथा ही क्यों रोता है? ॥ ६५ ॥ पवनके द्वारा लाये हुये शुष्कपत्रोंकी समान जीव भी कर्मोंके प्रेरेहुये मिले बिछुड़ते रहते हैं ॥ ६६ ॥ जैसें बिछुरेहुये परमाणुओंका सम्बन्ध कभी नहीं होता उसी तरह बिछुरे हुये जीवोंका पुनः संयोग होना दुर्लभ है ॥ ६७ ॥ रस (पीव), रुधिर (खून), मांस, मेद, हाड, मज्जा, धातु वगेहरका पुंज पतले चमड़ेसे ढकेहुये स्त्रीके शरीरमें मनोहर वस्तु कौनसी है? ॥ ६८ ॥ यदि दैवयोगसे स्त्रीके शरीरकी बाह्य रचना तो भींतर हो जाती और भींतरकी रचना बाहर हो जाती तो, इससे आलिंगन करना तो दूर ही रहो किन्तु कोई देखता तक नहीं ॥६९॥ हे मूढ ! रक्त झरनेका द्वार दुर्गन्धमय, जिसका नाम लेते भी घिन आवे ऐसा विष्टागृहकी समान निन्द्य स्त्रीका जघन किसप्रकार उत्तमपुरुषोंकर स्पर्शने योग्य है? ॥७०॥ खेद है कि—लाल खँकार, कफ, दन्तमल और कीटोंका घर ऐसे स्त्रीके मुखको कवियोंके द्वारा चन्द्रमाकी उपमा कैसें दी जाती है? ॥ ७१ ॥ फोड़े (व्रण) की सदृश मांसके पिंड ऐसे जो स्त्रीके कुच हैं, उनको तीक्ष्ण—बुद्धि पंडितजन सुवर्णके कलशोंकी उपमा कैसें देते हैं ॥ ७२ ॥ समस्त अशुचि पदार्थोंकी खानि विचित्र छिद्रवाले स्त्री पुरुषोंका संग विष्टाके दो घड़ोंके समान होता है ॥७३ ॥ यह कामिनीरूपी नदी रागरूपी कल्लोल संपदासे नररूपी वृक्षोंको गिराके लेजाकर संसाररूपी समुद्रमें पटकती है ॥७४॥ यह स्त्री नीच पुरुषोंको मोहित करकें नरकमें डाल देती है और उनके साथ आप (स्वयं) नहिं जाती. ऐसी स्त्रीको पंडित जन कैसें सेवन करते हैं

॥७५॥ ये भोगे हुये दुष्ट भोग हैं, वे काष्ठको अग्निकी सदृश हृदयको जलाया करते हैं. इसलिये इनकी समान अन्य शत्रु कहां है? ॥ ७६ ॥ नष्ट करदिया है समस्त विवेक जिसने ऐसी मदिराकी समान स्त्रीसे मोहित हुवा जीव, अपने हित अहित-को नहिं जानता सो प्रगट ही है ॥ ७७ ॥ यह स्त्री है, यह पुत्र है, यह माता है और यह पिता है, ऐसी बुद्धि कर्मके वशी-भूत मूढोंके ही होती है ॥ ७८ ॥ जिस संसारमें जन्मसे ले-कर पालनपोषण करते २ मनुष्यका देह ही नष्ट हो जाता है, उस संसारमें स्त्री पुत्र धनादिकमें निर्वाह कैसा ? ॥ ७९॥ इसप्रकार ब्रह्मचारीके उपदेशसे वह भूतमति मूढ शोक-शान्ति करलेनेकी जगह उल्टा क्रोधित होकर निम्नलिखित प्रकारसे कहने लगा. सो उचित ही है कि—'मूढ चित्तवालोंको विद्वानोंकर दिया हुवा उपदेश वृथा जाता है' ॥ ८० ॥

हे ब्रह्मचारी! यदि स्त्री ऐसी अत्यन्त निंद्य होती तो समस्त मार्गोंमें विचक्षण चित्तवाले हर ब्रह्मा विष्णु इन्द्रादिक स्त्रीको हृदयका हार क्यों बनाते?॥८१॥ हे ब्रह्मचारी! जड़सदृश (अ-सैनी) अशोकादि वृक्ष भी जिस स्त्रीको (लतादिकके आलिंगन को) नहिं छोड़ते तो समस्तप्रकारके सुख देनेमें चतुर ऐसी स्त्रियोंको ये पुरुष किसप्रकार छोड सक्ते हैं? ॥८२॥ पुत्ररूपी फल देती हैं, समस्त परिश्रमको दूर करती हैं, जिनका शरीर किसीप्रकार भी निन्द्य नहीं है, और तो क्या ? इसलोकमें इन स्त्रियोंके सिवाय इन्द्रियोंको समस्तप्रकारके सुख देनेवाली अन्य कोई भी वस्तु नहीं है ॥८३॥ भो ब्रह्मचारिन्! यदि स्त्रि-योंके सेवनसे समस्त पुरुष पागल हो जाते हैं तो क्या इस

ातमें युवतिसंगसे रत हुवा पुरुष कोई भी विचारवान् नहीं है ?
र्थात् तुमारे कहनेसे तो स्त्रीवाले पुरुष सब मूर्ख ही हैं, सो
ा कदापि नहीं है ॥ ८४ ॥ अपने अपने मनको प्रिय
ोई भी कुछ कहो. जगतमें सबकी रुचि भिन्न भिन्न है. सो
अनिवार्य्य है. परन्तु मेरा तो मत संशयरहित यही है कि
ंसारमें स्त्रीकी समान सुखकारी वस्तु अन्य कोई भी नहीं
॥ ८५ ॥ इसप्रकार कह कर वह मूढ ब्राह्मण अपने आ-
ी दो तूंबी लेकर एकमें प्रियतमाके हाड (फूल) और
सरीमें वटुकके हाड भर कर गंगाजीमें डालनेके लिये वडे
ेगके साथ चल पड़ा ॥ ८६ ॥ रास्तेमें जाते हुये किसी न-
गरमें उसका वह नीच शिष्य यज्ञ नामा वटुक मिल गया. सो
गुरुको देखते ही उसका समस्त शरीर कांपने लगा. लाचार,
गुरुके पावोंमें गिरकर वह वटुक " हे विभो ! मेरा अपराध क्ष-
मा करो" इसप्रकार प्रार्थना करने लगा ॥८७॥ उस ब्राह्मणने
पूछा कि, " तू कौन है ? " तब अतिशय विनीतभावसे
वटुकने कहा कि, हे विभो ! आपके चरणकमलोंके सेवनसे
ा है जीवन जिसका ऐसा, मैं आपका यज्ञ नामा वटुक हूं
॥ ८८ ॥ इसप्रकार सुनकर वह मूढधी ब्राह्मण कहने लगा
कि, अरे वह मेरा चतुर वटुक कहां ? वह तो जल गया.
तू तो कोई दूसरा ही ठग है. जो मूर्ख तेरी ठगाईको नहिं
समझे, उसको जाकर ठग. यहां तेरा दाव नहिं चल सक्ता
॥ ८९ ॥ इसप्रकार कह कर वह किसी अन्य नगर पहुंचा
तो वहांपर दैवयोगसे उसकी प्रियतमा दुष्टा यज्ञा अचानक ही
मिल गई. वह भी भयसे थर थर कांपती हुई उस ब्राह्मणके च-

रणकमलोंमें मस्तक रखकर इसप्रकार कहती हुई कि,—॥९०॥ हे प्रिय! तेरा धन सबका सब मौजूद है. हे गुणनिधान! इस अपराध को सहलें (क्षमा करें) क्योंकि—'जिसका चित्त अपने ही पापकार्य्योंसे कम्पायमान है, उस पर शुभमति पुरुष कदापि कोप नहिं करते' ॥९१॥ इसप्रकार वचन सुनकर उस मूढने यज्ञासे पूछा कि, तू कौन है? सो कह. तब यज्ञाने कहा कि—मैं आपकी यज्ञा नामा ब्राह्मणी हूं. ब्राह्मणने कहा कि, वह प्रियतमा यज्ञा तो इस तूंबड़ीमें है; फिर बाहर तूं कैसें आ-गई? ॥ ९१ ॥ इस नगरमें यदि तुम मुझे भोजन पान नहिं करने दो तो, लो मैं दूसरे नगरमें जाता हूं. ऐसा कहकर नष्ट होगई है समस्त विचारोंमें बुद्धि जिसकी ऐसा वह ब्राह्मण गु-स्से होकर उसी वक्त दूसरे नगरकी तरफ चल दिया ॥९३॥ जिस मूढचित्तको प्रगटतया पदार्थोंमें निश्चयपणा मालूम नहिं होता. ऐसे निर्विचार पुरुषको, मूढोंको विशेषप्रकारसे मर्दन करनेवाले यमराजके सिवाय और कौन समझा सक्ता है? ॥९४॥ जो ज्ञानरहित मूढ पुरुष हैं, वे संसारके भयको मथन (नष्ट) करनेवाले, स्थिर शिवसुखको देनेवाले शुद्धमतिका है विस्तार जिसमें ऐसे, अमितगतिवचनं कहिये सम्यग्ज्ञानी पुरु-षोंके निर्मल वचनको हृदयमें नहिं धरते. इसकारण वे सुधीजन अपने हृदयमें ही रखते हैं ॥ ९५ ॥

इति श्रीअमितगति आचार्य्यकृत धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बा-लावबोधिनी भाषाटीकामें छट्ठा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ६ ॥

अथानंतर मनोवेगने कहा कि—हे ब्राह्मणो! उपर्युक्त प्र

कारसे विवेकरहित मूढपुरुषकी कथा तो तुमको कही. अव अपने ही अभिप्रायमें आलीढ(दृढ) ऐसे व्युद्ग्राही पुरुषकी कथा कहता हूं सो सुनो ॥ १ ॥

४। व्युद्ग्राही मूढ पुरुषकी कथा।

एक समय नंदुरद्वारी नामकी नगरीमें दुर्द्धर नामका एक राजा था. उसके जन्मका अन्धा जात्यन्ध नामका एक पुत्र हुवा ॥ २ ॥ सो वड़ा होने पर वह प्रतिदिन याचकोंको अअपने हार, कंकण, केयूर कुंडलादि आभूषण दान कर दिया करता था ॥३॥ इसप्रकार कुमारके अलौकिक दानको देखकर राजाके मन्त्रीने राजासे कहा कि, हे प्रभो! कुमरसाहवने तो समस्त खजाना दान देकर खाली कर दिया ॥ ४ ॥ तव राजाने कहा कि—हे सत्पुरुष! यदि इसको आभूषण नहिं दिये जांयगे तो यह सर्वथा भोजनका त्याग कर देगा. तव मै क्या करूं? ॥५॥ मन्त्रीने कहा कि "मैं इसका कुछ भी उपाय करूंगा" राजाने कहा कि अवश्य कोई उपाय कर! मैं मनाही नहिं करता ॥६॥ तत्पश्चात् मंत्रीने लोहेके आभरण पहिनाकर याचकोंको मारनेकेलिये एक लोहेका दण्ड लाकर राजकुमारको दिया और कहा कि,—॥७॥ हे तात! ये गहने पंडितोंकर पूजने लायक कुलक्रमसे आयेहुये हैं, सो इनको पहरलो और ये गहने किसीको भी नहिं देना. यदि दोगे तो तुमारा राज्य नष्ट हो जायगा ॥ ८ ॥ जो कोई इनको लोहमयी वतावे, उसीके माथेमें इस दंडेकी मार देना. किसी प्रकारकी दया व करुणा कुछ भी नहिं करना ॥ ९ ॥ इसप्रकार मंत्रीके कहेहुये वचनोंको कुमारने भलेप्रकार स्वीकार किया. 'इस जगतमें ऐसा

कौन है? जो चतुरपुरुषोंके कहे हुये बचनोंको नहिं मानते'
॥ १० ॥ तत्पश्चात् वह राजकुमार रोमांचित हो प्रसन्नचित्तसें
लोहेके दंडको ग्रहण कर बैठ गया ॥ ११ ॥ उसके पास
आकर जो कोई कहता कि ये तो लोहमयी गहने हैं, तब वह
उसीवक्त उसके माथेमें लोहदंडकी मार देता सो ठीक ही है
'जिसकी व्युद्ग्राही मति होगई, वह नीच अच्छा-
कार्य कहांसे करैगा' ॥ १२ ॥ 'जो पुरुष अपने इष्टजनके
कहे हुये समस्त बचनोंको अच्छा और अन्यके कहे हुये सम-
स्त बचनोंको बुरा मानता है, उस अधमको कौन समझावे'?
॥ १३ ॥ जो पुरुष जात्यन्धकी समान परके बचनोंको
नहिं विचारता, उसीको पंडितोंने अपने ही आग्रहमें आश-
क्तबुद्धि व्युद्ग्राही कहा है ॥ १४ ॥ मनोवेगने कहा कि हे
ब्राह्मणो कदाचित् सुमेरु पर्वत तो हाथकी चोटसे तोड़ा जा
सक्ता है, परन्तु व्युद्ग्राही पुरुष वचनद्वारा किसीप्रकार भी
नहिं समझाया जा सक्ता ॥ १५ ॥ जिसप्रकार जात्यन्धने
सुवर्णमयी आभूषणोंको छोड लोहेके आभूषण पहरे, उसी-
प्रकार अज्ञानरूपी अंधकारसे अन्धे पुरुष उत्तम वस्तुको
छोड़कर निकृष्टको ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥ जो मूढ सदा-
काल असुंदरको सुन्दर मानता है, उसके आगें बुद्धिमान पु-
रुष सुभाषित (सुंदरवचन) कदापि नहिं कहते ॥ १७ ॥
यह समस्त लोक कामार्थी पुरुषोंकर ठगाया जाता है इस
कारण शुद्धबुद्धि सत्पुरुषोंको यह बात सदैव विचारते रहना
चाहिये ॥ १८ ॥ मनोवेगने कहा कि–हे ब्राह्मणो! मैंने व्यु-
द्ग्राही (हटग्राही) का वर्णन तो किया. अब पित्तदूषित मू-

ढकी कथा कहता हूं, सो अखंडचित्त होकर सुनो-॥ १९ ॥

५। पित्तदूषितमूढपुरुषकी कथा।

कोई एक पुरुष प्रज्वलित अग्निकी समान तीव्र पित्तज्वरके वेगसे विह्वल-शरीर हो गया ॥ २० ॥ उसको अमृतकी समान पवित्र, पुष्टितुष्टिका देनेवाला मिश्री मिलाहुवा दुग्ध दिया गया सो-॥२१॥ वह अधम उसको कडुवे नीमकी समान मानता हुवा. सो ठीक ही है. क्योंकि 'प्रकाश्यमान सूर्य्यके प्रकाशको उल्लू तो अंधकार ही मानता है' ॥२२॥ इसी प्रकार मिथ्याज्ञानरूपी महातीव्र ज्वरसे व्याकुल है आत्मा जिसकी ऐसा, जो कोई मनुष्य युक्त अयुक्तको न विचारनेवाला हो, उसको शान्तिदायक जन्ममृत्यु जराके नाश करनेवाले अत्यंत दुर्लभ अमृतकी समान वस्तुका स्वरूप कहा जावे तो वह उस वस्तुस्वरूपको जन्ममृत्युजराके करनेवाले, भ्रान्तिकारक, चेतनाको नष्ट करनेवाले, सुलभ कालकूटकी समान मानता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ इसकारण जो पुरुष सदैव प्रशस्तको भी अप्रशस्त देखता है, वही अवज्ञासे व्याकुलचित्त पित्तदूषितमूढ पुरुष कहा जाता है ॥ २६॥ इसीप्रकार जो ज्ञानरहित पुरुष न्यायको अन्याय माने तो तत्त्वविचार करनेवाले पंडितजनोंको चाहिये कि उसको कुछ भी उपदेश नहिं करे ॥ २७ ॥ इसप्रकार मैंने विपरीत आशयवाले पित्तदूषितमूढपूरुपको प्रगट किया. अब आपको आम्रमूढपुरुषकी कथा कहता हूं सो सावधानतापूर्वक सुनें ॥ २८ ॥

६। आम्रमूढपुरुषकी कथा।

स्वर्गमें देवोंकर पूजित सुंदर अप्सराओंसे रमणीय मनोहर मंदिरवाली अमरावतीनगरीकी समान, अंगदेशमें चम्पावती नामा एक नगरी है ॥ २९ ॥ उस नगरीमें स्वर्गमें देवोंकर सेवनीय इन्द्रकी समान, नम्रीभूतमुकुटवाले राजाओंकर सेवनीय 'नृपशेखर' नामका राजा राज्य करता था ॥ ३० ॥ उस राजाके पास उसके प्रिय मित्र वंगदेशीय राजाने समस्तरोग और जराको नष्टकरनेवाला, साधारण मनुष्योंको अनेक प्रकारकी सेवा करने योग्य, रत्नत्रयकी समान पूजनीय, अन्य लोगोंको दुर्लभ, हृदयग्राही, मनोहर स्त्रीके यौवनकी समान सुखकारी, सुन्दर और सुखद रूप रस गन्ध और स्पर्शके द्वारा आनंदित किया है मनुष्योंका हृदय जिसने, तथा अपनी सौरभद्वारा आकर्षण किया है भ्रमरोंका समूह जिसने ऐसा एक आम्रफल भेजा॥३१-३२-३३॥ उसको देखते ही वह राजा अतिशय हर्षित हुवा सो ठीक ही है—'रमणीय पदार्थको देखनेसे किसको हर्ष नहिं होता' ॥ ३४ ॥ समस्तरोगोंके नाश करनेवाले इस एक ही आमका समस्त लोगोंमें विभाग नहिं हो सक्ता इसकारण जिससे यह बहुत हो जाय ऐसा उपाय करूंगा, इसप्रकारका विचार करके राजाने वह आम्रफल एक चतुर मालीको देकर कहा कि हे भद्र! जिसप्रकार यह आम्र अनेक फलोंका देनेवाला हो जावे, ऐसा उपाय कर और किसी उत्तम बनमें लेजाकर इसको बोह दे ॥ –३५–३६–३७ ॥ वृक्षारोपणविद्यामें प्रवीण उस मालीने नमस्कार करकें "ऐसा ही करूंगा" इसप्रकार

कहके उस आम्रफलको बागमें बोकर (लगाकर) बड़ा करने लगा ॥ ३८ ॥ सो वह वृक्ष सज्जनपुरुषकी समान शीघ्र ही सघन सुन्दर छाया और बड़े २ असंख्य फलोंसे सबको आ-ल्हादित करनेवाला बहुत बड़ा हो गया ॥ ३९ ॥ दैवयोगसे किसी पक्षीके द्वारा लेजाते हुये सर्पकी वसा (विषरूपचर्वी) उसी आमके एक फल पर गिर पड़ी ॥ ४० ॥ उस नि-न्दनीय वसाके संयोगसे वह आम्रफल पककर बुढापेके यौवनकी समान नेत्रोंको आनन्दकारी मनोहर हो गया ॥४१॥ अतिशय बुरे अन्यायके करनेसे पूजनीय बडे कुलके अधःपतनकी समान वह आम्रफल उस विषके आतापसे तापित होकर शीघ्र ही पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ४२ ॥ तुष्ट-चित्त वनपालने समस्त इन्द्रियोंको हर्षित करनेवाले उस फलको लाकर क्षितिपाल (राजा) की भेट किया ॥ ४३ ॥ क्षितिपालने विकलतापूर्वक उस प्राणहारी विषकर पकेहुये मनो हर फलको देखकर अपने युवराज पुत्रको दिया. राजपुत्रने 'प्रसादं' ऐसा कहकर ग्रहण किया और घोर कालकूट वि-षकी समान उसी वक्त खा लिया ॥ ४४–४५ ॥ सो वह राजपुत्र उस फलके खाते ही प्राणरहित हो गया. सो उचित ही है 'दुष्टसेवा की हुई किसके जीवन को नहिं हरती' ॥ ४६ ॥ राजाने अपने पुत्रको मरा देख क्रोधाग्निसे संतप्त होकर उद्यानकी शोभा करनेवाले उस आम्रवृक्षको उसी वक्त कटवा डाला ॥ ४७ ॥ खांशी, शोष, (यक्ष्मारोग) जरा कुष्ट, वमन, शूल, (दर्द) क्षय, श्वास आदि दुःसाध्य रोगोंसे

पीड़ित जीवनसे विरक्त पुरुषोंनें सुना कि—राजाने विषमय आम्रवृक्षको कटवा दिया है, तो उन सबने मरनेकी इच्छासे उसके कच्चे फल ला ला कर खाने सुरू किये, परन्तु उनके खाते ही वे समस्त रोगी शीघ्र ही रोगरहित होकर कामदेवकी समान सुंदर हो गये ॥ ४८–४९–५० ॥ राजाने यह वार्ता सुनी तो विस्मित होकर उन रोगियोको बुलाकर प्रत्यक्ष देखकें परम अनिवार्य पश्चात्ताप किया ॥ ५१ ॥ हाय! विचित्र पत्रोंकर पृथिवीमें मंडलका भूषण समस्तप्रकार वांछितका देनेवाला, चक्रवर्तीकी समान है उदय जिसका ऐसा ऊंचा आम्रवृक्ष विचाररहित क्रोधसे अन्धचित्त होकर मैंने जड़साहित क्यों कटवा दिया? ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हाय! मुझ दुर्बुद्धिने वह फल विना विचारे ही युवराजको क्यों दिया? यदि दिया तो पृथ्वीपर पड़ा हुआ क्यों दिया? आम तो विचारा रोगोंका नाशक ही था ॥५४॥ इसप्रकार दुर्निवार वज्राग्निकी समान पश्चात्तापसे संतप्त होकर वह राजा मनही मनमें निरन्तर जलने लगा ॥ ५५ ॥ जो पुरुष पूर्वापर परीक्षा (विचार) न करके कार्य्योंको करता है, वह आम्रनाशक राजाकी समान महान पश्चात्तापको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ जो कोई दुराशय विना विचारे ही किसी कार्यको करता है, उसके समस्त वांछित कार्य्य शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ५७ ॥ क्रोधकर व्यापित है चित्त जिसका ऐसे निर्वि-चारी पुरुषको दोनों भवमें समस्त प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥ इसप्रकार निर्विवेकीपनेके दोषोंको जानकर हृदयमें उभयलोकसंबंधी सुख देनेवाला विवेक रखना चाहिये

॥ ५९ ॥ जो विद्वान अपना हित चाहते हैं, उनको चाहिये कि द्रव्य क्षेत्र काल भाव युक्त अयुक्तमें तत्पर होकर सर्वदा विचारके काम किया करें ॥ ६० ॥ मनुष्य और पशुमें इतना ही भेद है कि मनुष्यको तो हिताहितका विचार होता है, परन्तु पशुको नहीं होता. इसकारण जो पुरुष विचार रहित हैं, वे पशुकी तुल्य हैं ॥ ६१ ॥ इसप्रकार पूर्वापर विचाररहित आम्रघाती मूर्खको मैंने सूचित किया. अव क्षीरमूर्खकी कथा कहता हूं, सो सावधान होकर सुनो ॥ ६२॥

७ । क्षीरमूढकी कथा ।

प्रसिद्ध छोहार नामके देशमें सामुद्रिक व्यापारका ज्ञाता, जलयात्रा करनेमें चतुर सागरदत्त नामका एक वणिक था ॥ ६३ ॥ सो वह वणिक एक समय जहाजपर चढ़कर नक्र (नाके) मगर ग्रहादिसे भरे हुये समुद्रसे पार होकर व्यापारार्थ चौल द्वीपमें पहुँचा ॥ ६४ ॥ उस वणिकने घरसे चलते समय जिनेश्वरकी वाणीके समान सुखदेनेमें चतुर, दुग्ध देती हुई एक गौ भी अपने साथ ले ली थी ॥ ६५ ॥ सो उस व्यवहारचतुर वणिकने चौलद्वीपमें पहुंचते ही कुछ भेट ले कर द्वीपके पति तोमर वादशाहके दर्शन किये ॥६६॥ दूसरे दिन उस वणिकने शरीरमें कान्ति विस्तारनेवाली अमृतकी समान अतिशय स्वादिष्ट (पायस) खीर लेजा कर वादशाहकी भेट करी ॥ ६७ ॥ अन्य एक दिन उस वणिकने अमृतकी समान दुर्लभ शालिधान्यके उत्तम चावल (भात) वनाकर सुंदर दही सहित भेट करके दर्शन किये ॥ ६८ ॥ क्योंकि उस देशमें गौ भैंसें नहिं होतीं थीं और न गोरस ही

होता था. इसलिये पूर्वोक्त प्रकार अपूर्व उज्ज्वल मिष्ट आहारको भक्षण कर प्रसन्न चित्त हो, तोमरबादशाहने उस वणिकको पूछा कि,—॥६९॥ हे वणिकपते! तुमको ऐसे दिव्य भोजन कहांसे प्राप्त होते हैं? तव वणिकने कहा कि हजूर! मेरे पास एक कुलदेवी है, सो वह ऐसे आहार देती है॥७०॥तत्पश्चात् म्लेच्छनाथ तोमरवादशाहने वणिक्पुत्रको कहा कि हे भद्र! वह तुमारी कुलदेवता हमको दे दो ॥ ७१ ॥ यह वात सुनकर बणिकने कहा कि, हे द्वीपपते! यदि आप मुझे मुंहमांगा धन देवो तो मैं अपनी कुलदेवता आपको दे सक्ता हूं ॥७२॥ तव द्वीपपति तोमरवादशाहने कहा कि– हे भद्र! वेशक मनचाहा द्रव्य ले जाओ, और वह कुलदेवता हमको दे जाओ ॥ ७३ ॥ तत्पश्चात् बणिकने उस बादशाहसे मुंह मांगे रुपये लेकर उस गौको दे दिया और जहाजकेद्वारा समुद्र पार हो अपने देश चला आया ॥ ७४ ॥ दूसरे दिन प्रातःकाल ही तोमरबादशाहने उस गौके सन्मुख एक पात्र (बर्त्तन) रखकर कहा कि हे कुलदेवते! जो दिव्य आहार उस वणिकको देती थी, वह मुझे भी दे. परन्तु-॥ ७५ ॥ मूर्ख कामीके पास चतुर विलासिनी नायिकाकी समान वह गौ चुपचाप ही खड़ी रही ॥ ७६ ॥ जब उस गौको चुपचाप खड़े देखा तो बादशाहने फिर कहा कि-हे कुलदेवते! प्रसन्न होकर मुझे दिव्य भोजन दे. भक्तकी इच्छा पूरी कर॥ ७७ ॥ फिर भी उसको चुपचाप खडी देखकर बादशहाने विचारा कि आज तो यह अपने सेठको स्मरण करती है, सो कल प्रातःकाल ही देगी. अच्छा! आज तो हे देवी तू निराकुलतासे स्वस्थ हो

तिष्ठ ॥ ७८ ॥ दूसरे दिन भी उस गौके सामने एक वडासा वर्त्तन रखकर वादशाहने कहा कि हे देवी! आज तो तू स्वस्थ हो गई, अब मुझे वांच्छित भोजन दे ॥ ७९ ॥ परन्तु गौ तो फिर भी चुप खड़ी रही. वह विचारी क्या तो दे और क्या बोले? इसप्रकार उसको चुप देखकर उस वादशाहने क्रुद्धित होकर नोकरोंके द्वारा उस गौको अपने द्वीपसे वाहर निकलवा दिया॥ ८०॥ देखो! इस वादशाहकी कैसी मूर्खता है जो इतनी वात भी नहिं समझता कि याचनामात्र करनेसे किसी गौंने कभी किसीको दुग्ध दिया है ॥ ८१ ॥ दूध देती हुई उस श्रेष्ठ गौको म्लेच्छ वादशाहने वृथा ही निकाल दी. सो नीति ही है कि, 'मूर्खके हाथमें गया हुवा महा रत्न भी वृथा जाता है' ॥ ८२ ॥ यद्यपि पाषाणमें सुवर्ण मौजूद है परन्तु उसको पाषाणसे निकालनेकी क्रिया जाने विना उसकी प्राप्ति नहिं हो सक्ती, उसीप्रकार गौ भी विधिपूर्वक लिये विना अपने पास रहता हुवा दूध कदापि नहिं दे सक्ती ॥ ८३ ॥ यह कार्य्य किसप्रकार सिद्ध होगा. इसमें हानि कैसी होगी, इसकी वृद्धि किसप्रकार होगी. इसप्रकार जो पुरुष प्रतिसमय नहिं विचारता, वह दोनों लोकमें दुःख ही भोगता है ॥ ८४ ॥ जो नीच पुरुष गर्वित आशय होकर अपने मनमें सारभूत विचारको स्थान नहिं देता, वह उक्त वादशाहकी समान मानमर्दित हो अपने कार्य्यको नष्ट करता है और वह बुद्धिमानोंके द्वारा त्यागने योग्य है ॥८५॥ उस नष्टबुद्धि म्लेच्छराजाने उस गौको असह्य पीड़ा दी सो ठीक ही है. मूर्खकी संगति करनेवाला प्रगटतया अनिवार्य्य स-

मस्त दोषोंको भास होता है ॥ ८६ ॥ इस संसारमें मूर्ख-ताकी समान तो कोई अंधकार नहीं है और ज्ञानकी समान कोई प्रकाश नहीं है, इसीप्रकार जन्ममरणकी समान तो कोई शत्रु नहीं और मोक्षकी समान कोई मित्र (बन्धु) नहीं है ॥ ८७ ॥ कदाचित् सूर्य्यके रहते अन्ध-कार हो जाय, अथवा सूर्य्यमें शीतलता और चन्द्रमामें उ-ष्णता हो जाय, परन्तु मूर्खमें कदापि विचारशक्ति नहिं होती ॥८८॥ सिंहादि हिंस्रजन्तुओंसे परिपूर्ण वनमें फिरना, सर्प-राजकी सेवा करना, तथा वज्राग्निमें जल जाना श्रेष्ठ है, परन्तु मूर्ख जन तो कभी क्षणभर भी सेवा करने योग्य नहीं है ॥ ८९॥ जिसप्रकार अन्धेके आगें नृत्य करना, वधिर (वहरे) के आगे संगीत करना, कव्वेका शौच करना, मुरदेको भोजन देना, नपुंसकको स्त्रीका होना वृथा है, उसी-प्रकार मूर्खको दिया हुवा सुखकारी रत्न भी वृथा जाता है ॥ ९० ॥ यह गौ मुझे दूध किसप्रकार देगी, इसप्रकार जिस म्लेच्छवादशाहने न पूछकर वहुतसा धन देकें गौको ले लि-या, सो उस म्लेच्छाधिपतिकी समान दूसरा कौन मूर्ख है ? ॥ ९१ ॥ जो पुरुष उस वस्तुके ज्ञाताको तो पूछे नहीं, और किसी वस्तुको धन देकर मोल लेवे तो वह मूढ भयावने वनमें मूल्यग्रहणकी इच्छासे चोरोंको रत्न वेचता है ॥ ९२ ॥ जो विनीत सत्पुरुष उभय लोकमें सुखकी इच्छा रखते हैं, उनको चाहिये कि मानको छोड़ अज्ञात कार्य्यको पूछकर वि-धिसे साधन करैं ॥ ९३ ॥ जो दुर्बुद्धि राग द्वेष मोह काम क्रोध मान लोभ और मूढताके वशीभूत हो हिताहितका वि-

चार कर नहिं करते, वे स्वयं अपने मस्तपकर वज्रपात करते हैं ॥९४॥ जो दुर्विदग्ध (मिथ्याज्ञानसे ही अपने को पंडित समझनेवाला) पुरुष दुर्भेद्यगर्वरूपी पहाड़के शिखरपर चढ़कर किसी दूसरेको नाहिं पूछता, वह द्वीपाधिपति तोमरबादशाहकी समान हस्तगत हुये पयरूपी पवित्र रत्न (उत्तम पदार्थ) को नष्ट करता है ॥ ९५ ॥ जो विनयवान पुरुष सदैव पूछकर अपने मनमें भले प्रकार विचारकर, चिंतवनकर युक्तायुक्त कार्य्योंको करते हैं, वे विस्तृतयशवाले मनुष्य, मनुष्य और देवगतिके सुखपणे को पायकर केवल ज्ञानके धारक हो आपदारहित निर्वाणपदको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥

इतिश्री अमितगत्याचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें सातवॉ परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ७ ॥

अथानन्तर प्राप्त हुये क्षीरको अज्ञानी म्लेच्छ राजानें जिसप्रकार नष्ट किया सो तो तुमसे कहा. अब अगुरु (चंदनको) प्राप्त होकर नष्ट किया उसकी कथा कही जाती है ॥१॥

८ अगुरुमूढकी कथा ।

मगधदेशमें वैरीरूपी मदोन्मत्त हस्तीके कुंभको भेदनकरनेकेलिये केशरी (सिंह) की समान 'गजरथ' नामका एक राजा था ॥ २ ॥ वह राजा अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करनेवाला था, सो एक समय क्रीड़ाकेलिये वनमें गया तो सेनाको छोड़कर मंत्रीसहित बहुत दूर निकल गया ॥ ३ ॥ वहां वनमें पहिलेसे आगें खड़े हुये एक नोकरको देखकर राजाने मंत्रीसें पूछा कि—यह कौन है और किसका नोकर व किसका

पुत्र है ? सो मुझे कहो ॥४॥ तब मंत्रीने कहा कि हे राजन् ! यह आपके हरि नामक महत्तरका पुत्र हालिक नामका आपका तावेदार सेवक है ॥ ५ ॥ श्रीमानके चरणाम्बुजकी नित्य क्लेशकारक सेवा करते २ आज इसको वारह वर्ष बीत गये ॥ ६ ॥ यह वात सुनकर राजाने मंत्रीसे कहा कि-हे भद्र ! तूने आजतक इसके क्लेशका कारण मुझे नहिं कहा, सो वहुत बुरा किया ॥ ७ ॥ पयादोंको क्लेश है, वा नहीं है कौन अच्छी सेवा करता है, कौन नहिं करता इत्यादि समस्त वातें मंत्रीको जानकर राजाके प्रति निवेदन करना चाहिये ॥८॥ स्वाध्याय करते रहना साधुपुरुषोंका कार्य्य है, गृहकृत्य करना स्त्रियोंका और राज्यकार्य्य कहना मंत्रियोंका काम है. सो इन तीनों बातोंको निरन्तर विचारते रहना चाहिये ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् राजाने प्रसन्नचित्त होकर हालीसे कहा कि संकराट नामका उत्तम मठ है सो तुमको दिया उसे स्वीकार करो ॥ १० ॥ हे भद्र ! यह मठ कल्पवृक्षकी समान मनवांछित फलके देनेवाले अन्य पांचसै गांवोंकर सहित वहुत अच्छा है, सो तुम ग्रहण करो ॥ ११ ॥ यह वचन सुन कर हालीने राजासे कहा कि हे देव ! मैं तो अकेला हूं, बहुतसे गांव लेकर क्या करूंगा ? १२ ॥ ये तो उन्हींके ग्रहणकरने योग्य हैं कि जिनके हजारों पयादे और प्रवन्ध करनेवाले सेवक हों ॥ १३ ॥ तब राजाने कहा कि हे भद्र ! मनोहर गांवोंके विद्यमान रहते अपने आप प्रतिपालना करनेवाले सेवक हो जांयगे. क्योंकि-॥ १४ ॥ ग्रामोंसे धनकी प्राप्ति होती है, से नोकर चाकरोंके समूह हो जाते हैं और नोकर चाकर

ाकी सेवा करते हैं, द्रव्यसे उत्तम और कोई वस्तु नहीं है.
।५॥ द्रव्यसे ही कुलीन पंडित मान्य शूर न्यायविशारद
ग्ध (चतुर रसज्ञ) धर्मात्मा और प्रिय होता है ॥१६॥
ी वाग्मी दक्ष वृद्ध (दाना) शास्त्रपरायण ये सब चाटु-
कारक (खुशामदी) होकर धनाढ्योंकी सेवा करते हैं
॥ १७ ॥ गल गये हैं हाथ पांव और नाक जिसके ऐसा कोढी
होय और धनवान् होय तो उसको नवयोवना स्त्री भी गाढा-
लिंगनकरके शयन करती है ॥१८॥ जिसके घरमें द्रव्य है, उसके
सभी जने तावेदार प्रियकर और वशीभूत हो जाते हैं ॥१९॥
जिसके घरमें सम्पदा है, वह यदि मूर्ख हो तो भी उसकी वड़े
बड़े पंडितजन प्रशंसा करते हैं, यदि वह भीरु (कायर) हो
तो भी उसकी वडे २ योद्धा सेवा करने लग जाते है, यदि
ह पापी हो तो भी उसकी धर्म्मात्मा पुरुष स्तुति करते हैं
।२० ॥ बहुत कहांतक कहा जावे, जिनकी बराबर और
कोई नहिं हुआ ऐसे चक्री नारायण वलभद्र वगैरह जो वड़े वड़े
पुरुष हो गये, वे सब ग्रामोंके ही प्रसादसे गौरवको प्राप्त हुये
॥२१॥ ये सब बातें सुननेके पश्चात् हालीने कहा कि—म-
राज ! मुझे तो कोई ऐसा क्षेत्र (खेत) देवें कि जिसमें ह-
ाशह खेती हो सके व जिसमें वृक्ष कूप (गड़े) वगैरह नहीं हों
। २२ ॥ यह सुनकर राजाने विचार किया कि यह अपने
ोन अहितको नहिं समझता. सो ठीक ही है, गांवके 'गवारोंमें
,नेर्मल बुद्धि कहासे होय' ॥ २३ ॥ तत्पश्चात् राजाने मं-
त्रीको आज्ञा करी कि. हे भद्र ! इसको अगुरु चंदनका क्षेत्र
दे दो, जिससे यह मर्णपर्यन्त विस्तीर्ण काष्ठको वेचकर सुखसे

रहै ॥ २४ ॥ तब मंत्रीने जाकर उस हालीको कल्पवृक्षोंकी समान मनवांछित वस्तुके देनेवाले अगुरुवृक्षोंसे भरा हुवा एक क्षेत्र दिखा कर कहा कि महाराजने तुझे यह खेत दिया है ॥ २५ ॥ उस खेतको देखकर हालीने अपने मन ही मन विचार किया कि, राजा बडा कृपण है, जो वृक्षरहित खेत मांगने पर भी अनेक वृक्षोंसे भरा हुवा खेत दिया ॥ २६ ॥ मैने तो कुवेरके समान अन्न उत्पन्न करनेवाला अंजनके समान श्यामवर्ण वृक्ष गढे आदिके उपद्रवरहित विस्तीर्ण और छिन्न भिन्न अर्थात जुता हुवा खेत मागा था सो राजाने औरही तरहका वृक्षादि उपद्रवोंसे भरा हुवा दे दिया ॥२७॥ खैर ! अब यही ले लेना चाहिये, क्योंकि यदि राजा यह भी नहिं देता तो मैं क्या करता ? इसको ही मैं ठीक कर लूंगा ॥२८॥ इसप्रकार विचार कर उस हालीने 'प्रसाद' कह कर वह क्षेत्र स्वीकार किया और अपने घर आ तीक्ष्ण कुठार लेकर उस कुबुद्धिने अगुरुके वृक्ष काटने सुरू कर दिये ॥ २९ ॥ सो आकृष्ट (खिचे) हैं भ्रमरोंके समूह जिससे ऐसी सौरभसे दशों दिशाओंको आमोदित करनेवाले, सज्जनपुरुषकी समान सेवा करनेयोग्य, ऊँचे २ सरल, सुखदायक, वडे कष्टसे मिलनेवाले द्रव्यके देनेवाले, वे अगुरु वृक्ष सवके सव काट कर उस हालीने जला दिये. सो ठीक ही है—'स्वेच्छाचारी निर्विवेकी गंवार कोई श्रेष्ठ कार्य्य नहिं करते' ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इसप्रकार परिश्रमसे उन वृक्षोंको काट जलाकर शीघ्र ही अन्यायसे घरकी समान वह खेत वोने लायक हथेलीकी समान निर्मल करता हुवा और हर्षके साथ राजाको भी दिखाया

कहा कि देखिये मैंने यह कैसा उमदा खेत बनाया है.
ठीक ही है,—घमंडी नीचपुरुष अपनी मूर्खतासे ही प्रसन्न
हैं' ॥३२–३३॥ राजाने खेतको देखकर कहा कि, ऐसे
में तूने क्या २ बोया है? तब हालीने कहा कि हजूर! मैंने
हाफलके देनेवाले कोदों बोये हैं॥ ३४ ॥ इसप्रकार उस-
मूर्खता देखकर राजाने कहा कि—अरे! उन जलाये
वृक्षोंमेंसे कुछ रहा भी है कि नहीं ? ॥ ३५ ॥ तब उसने
गुरुचन्दनका एक हाथभरका टुकड़ा लाकर दिखाया,
र कहा कि हजूर! उन वृक्षोंको जलाते समय यह हाथभ-
का एक टुकड़ा तो रह गया है॥ ३६ ॥ तब राजाने
कहा कि तू इस टुकड़ेको बाजारमें ले जाकर शीघ्र ही बेच-
कर आ, हालीने कहा कि—हजूर! इतने काठका क्या मूल्य
मिलैगा ? ॥ ३७ ॥ राजाने हँसकर उस दुर्बुद्धि हालीसे
कहा कि बानियां जितना मूल्य दे, उतना ही ले लेना ॥३८॥
जब उस हालीने वह हाथभरका अगुरु चंदन बाजारमें ले-
जा कर बेचा तो वणियेने उसको पांच दीनार दिये॥ ३९ ॥
तब वह हाली इस बातको विचारकर विषादरूपी अग्निसे
तापित हो पश्चात्ताप करने लगा. सो ठीक ही है, जो अज्ञा-
नतासे कार्य्य करनेवाले हैं,—'उनमें ऐसा कौन है कि जिसको
पीछेंसे पश्चात्ताप न हो' ॥ ४० ॥ जो इस जरासे टुकड़ेका
इतना मूल्य मिल गया तो उन सब वृक्षोंका कितना मूल्य
मिलता, उसकी तो गिनती ही नहीं ॥ ४१ ॥ राजाने तो
निधानकी समान क्षेत्र दिया था, परन्तु मुझ अज्ञानी
हालीने व्यर्थ ही नष्ट कर दिया ॥ ४२ ॥ यदि मै उन वृ-

क्षोंकी यत्नसे रक्षा करता तो मरणपर्य्यन्त सुखका साधन-भूत द्रव्य हो जाता ॥ ४३ ॥ इसप्रकार वह हाली कामसे पीड़ित विरहीके समान अनिवार्य्य दुःसह्य पश्चात्तापसे वहुत कालपर्य्यन्त दुःखी हुवा ॥ ४४ ॥ जो अधम वड़े यत्नसे प्राप्त किये द्रव्यको नष्ट कर देता है, वह हालीकी समान सदैव दुर्निवार पश्चात्ताप करता है ॥ ४५ ॥ जो नष्टबुद्धि वस्तुमें सारासार नहिं जानता, वह पाये हुवे दुष्प्राप्य रत्नको नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥ जो कुधी वस्तुके हेय उपादेयको नहिं विचारता, वह आककी जड़के लिये सोनेके हलसे पृथिवीको कर्षण करता है ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मणो! तुम लोगोंमें उस हालीकी समान सारासारका विचार न करनेवाला हो तो पूछनेपर भी मैं कहते हुये डरता हूं ॥४८॥ अव अलभ्य अगुरुचंदन वृक्षोंको नष्ट करनेवाले निर्विचार मूर्खकी कथा कहता हूं सो सुनो ॥ ४९ ॥

९। चन्दनत्यागी मूर्खकी कथा।

भोगभूमिकी समान सुखके आधारभूत मध्यदेशमें किसी समय शांतमन नामवाला मथुरा नगरीका राजा था ॥५०॥ सो एक समय वह राजा ग्रीष्मऋतुके सूर्य्यसे हाथीकी समान दुर्निवार पित्तज्वरसे अतिशय पीड़ित और विह्वल हो गया ॥५१॥ ...र्यके आतापसे थोड़े जलमें मछलीकी समान उस पित्तज्व-...के तापसे वह राजा कोमल शय्यामें तलमलाता था ॥ ५२ ॥ ...स राजाका ... प्राभाविक वैद्योंद्वारा उपचार होते भी ... दुःसाः ... इन्धनसे अग्निके समान उत्तरोत्तर वढ़ने ...। ॥ ... रकी चिकित्सा जानते हुये भी वे

वैद्य दुर्जनकी साधनामें सज्जनोंकी समान उस तापको शमन करनेमें समर्थ नहिं हुये ॥ ५४ ॥ जब मंत्रीने देखा कि राजाके शरीरमें ताप बढ़ता ही जाता है, तो उसने मथुरा नगरमें चारों तरफ घोषणा की (ढिंढोरा पीटा) कि, जो कोई राजाके शरीरका दाह नष्ट कर देगा, उसको मानप्रतिष्ठाके साथ १०० गांव दिये जॉयगे ॥ ५५-५६ ॥ इसके सिवाय खास राजाके पहिरनेका उत्कृष्ट कंठा, अत्यंत दुर्लभ कटिमेखला और एक पोषाकका जोड़ा भी दिया जायगा ॥ ५७ ॥ यह घोषणा सुनकर एक वणिक गोशीर्ष चंदनकी लकड़ी लेनेके लिये घरसे बाहर हुवा, सो दैवयोगसे एक धोवीके हाथमें गोसीरचंदनका मूठा देखा ॥ ५८ ॥ उस वणिकने चारों तरफ उड़ते हुये भ्रमरके समूहसे वास्तवमें गोशीरचंदनका समझ धोवीसे पूछा कि, हे भद्र! यह नीमकी लकड़ीका मूठा तू कहांसे लाया ? ॥ ५९ ॥ धोवीने कहा कि, मुझे नदीमें वहता हुवा मिला है. तव वणिकने कहा कि, इसके वदलेमें वहुतसा काष्ठ लेकर यह हमको दे दो ॥ ६० ॥ उस निर्विवेकी धोवीने कहा कि, हे साधु पुरुष, ले लो, इसमें मेरी क्या हानि है ? इसप्रकार कहकर उस चंदनके मूठेके वदलेमें वहुतसा काष्ठसमूह लेकर वह मूठा दे दिया ॥ ६१ ॥ तव वह वुद्धिविशाल वणिक शीघ्र ही घर आकर उसको घसकर ले गया और राजाके समस्त शरीरमें उसका लेपन कर दिया ॥ ६२ ॥ जिसप्रकार प्रियस्त्रीके संयोगसे वियोगी पुरुषके दुःखका नाश होता है, उसीप्रकार उस चन्दनके लगाते ही राजाके समस्त शरीरका आताप नष्ट हो

गया ॥ ६३ ॥ तत्पश्चात् राजाने भी अपनी घोषणाके अनु-
सार सौ गांव और कंठाभरणादि देकर उस वणिककी बहुत
कुछ प्रतिष्ठा की. सो ठीक ही है, महान् पुरुषोंका उपकार
करना कल्पवृक्षके सदृश है ॥ ६४ ॥ इसप्रकार उस काष्ठके
ही प्रभावसे वणिककी प्रतिष्ठाको सुनकर वह धोबी शोकसे
तापित हो माथा कूट २ कर रोने लगा ॥ ६५ ॥ हाय!
दुरात्मा वनियेने उस काष्ठको चंदनका मूठा जानकर यमके
समान किसप्रकार मुझे ठग लिया ? नीमकी वहुतसी लकड़ियें
देकर मेरा गोशीरचंदनका मूठा कैसे ले लिया. सो ठीक ही
है, असत्यभाषी वणियोंसे यमराज भी ठगाया जाता है
॥ ६६–६७ ॥ इसप्रकार महाशोक करके वह रजक निरंतर
दहने (जलने) लगा. सो ठीक ही है,–' अज्ञानमें रहनेवालों
को सुख किसप्रकार हो ' ॥ ६८ ॥ उस धोवीने यह वि-
चार नहिं किया कि, नीमके एक काष्ठखंडके वदलेमें यह
वनियां वहुतसा काष्ट क्यों देता है ॥ ६९ ॥ इस दुर्निवार
अज्ञानरूपी महा अन्धकारको सूर्य्यचंद्रमाकी किरणें भी न-
ष्ट नहिं कर सक्तीं ॥ ७० ॥ जो अन्धकारसे अंधा होता है
वह नेत्रोंसे तो नहिं देखता, किन्तु चित्तसे तो तत्त्वको (वस्तु-
के स्वरूपको) देखता है परन्तु जो अज्ञानसे शून्यहृदय
हैं, वे न तो चित्तसे देखते और न नेत्रोंसे ही देखते ॥ ७१ ॥
सो हे विप्रो! उस धोवीके समान वदला करनेवाला कोई
मनुष्य इस वादशालामें होय तो मैं पूछने पर भी सच्ची वात
कहते हुये डरता हूं ॥ ७२ ॥ इस प्रकार मैंने चंदनत्यागी

मूर्ख कहा. अब सर्व प्रकार निंदाके भाजन ४ मूर्खोंकी कथा कहता हूं सो सुनो ॥ ७३ ॥

१०। चारमूर्खोंकी कथा।

एक समय चारमूर्ख मिलकर कहीं जा रहे थे सो उन्होंने मार्गमें कहीं पर जिनेश्वरके समान निष्पाप मोक्षाभिलाषी मुनिमहाराजको देखा ॥७४॥ कैसे हैं वे मुनिराज वीरनाथ होनेपर भी किसी जीवको पीड़ा नहिं देनेवाले हैं, दोनों नयके कहनेवाले होकर भी सत्यवादी है, चित्तचोर होकर भी चौर्य्यकर्मसे रहित हैं, निष्काम होकर भी बड़े बलवान् हैं ॥७५॥ ग्रन्थधारी (सिद्धांतशास्त्रके पाठी) होकर भी निर्ग्रन्थ (परिग्रहरहित) हैं, मलिन देहके धारी होकर भी निर्मल (पापरूपी मैलसे रहित) हैं, गुप्तिमान् अर्थात् मन वचन काय गुप्तिके धारक होकर भी निर्बन्ध हैं, विरूप होकर भी मनुष्योंको प्रिय हैं ॥ ७६ ॥ महाव्रती होकर भी अंधकारादिको नाश करनेवाले हैं, सर्वसंगरहित होकर भी समितियोंके प्रवर्तक हैं ॥ ७७ ॥प्राणिमात्रके रक्षक होकर भी धर्ममार्गके चलानेमें चतुर हैं, सत्यमें लवलीन होकर भी धर्मके बढ़ानेवाले हैं ॥ ७८ ॥ समुद्रके समान गंभीर, मेरुपर्वतके समान स्थिर, सूर्य्यके समान तेजस्वी, चन्द्रमाके समान कान्तिके धारक ॥ ७९ ॥ सिंहसमान निर्भय, कल्पवृक्षके समान वांछितके देनेवाले, वायुके समान निःसंग आकाशकी समान निर्मल हैं ॥ ८० ॥ जिसप्रकार शीतसे पीड़ितजन प्रज्वालित अग्निको सेवन करते हैं, उसीप्रकार इन मुनिमहाराजकी सेवा करनेसे समस्त प्राणियोंको पी-

ड़ित करनेवाले तथा सम्यग्दर्शन चारित्रको नष्ट करनेवाले पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ८१ ॥ और जिसने इन्द्र ब्रह्मा विष्णु महेश आदिको भी अपने बाणोंसे हनकर जीत लिये और सैकड़ों दुःख दिये, ऐसे कामको भी जिन्होंने सहजमें ही जीत लिया ॥ ८२ ॥ और " जिस मुनिराजने स्वर्गलोगको जीतनेवाले कामदेवको ही नष्ट कर दिया सो हमको तो शीघ्र ही मारैगा." इसप्रकार भयभीत होकर ही मानो बलवान क्रोधादिक कषायोंने इन महा पराक्रमी मुनिमहाराजकी सेवा नहीं की ॥ ८३ ॥ वे मुनिराज तपकी तो सेवा करते हैं परन्तु तम कहिये मिथ्यात्वकी नहीं. वे सदा धर्मकथा कहते हैं, परन्तु निन्दनीय विकथा नहिं कहते. वे अनेकप्रकारके दोषोंको नष्ट करते हैं, परन्तु गुणोंको नहीं. वे निद्राका त्याग कर देते हैं, परन्तु जिनवाणीका त्याग कभी नहिं करते ॥ ८४ ॥ वे मुनिमहाराज समस्त जनोंको धर्मोपदेश करके शीघ्र ही प्रतिबोधित धर्मात्मा करते हुये जगतके समस्त चराचरोंको (जीवाजीवपदार्थोंको) जाननेवाले और जिनेन्द्र भगवानके समान इन्द्रनरेन्द्रोंकर वन्दनीय हैं ॥ ८५ ॥ वे मुनिराज समस्त इन्द्रियोंके प्रसारको रोकक-रके भी समस्त पदार्थोंके समूहको अवलोकन करते हैं, तथा त्रस स्थावरजीवोंकी रक्षा करनेवाले होकर भी विषयोंको मर्दन करनेवाले हैं ॥ ८६ ॥ गुणोंसे जड़े हुये, संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले उस मुनीश्वरके चरणरूपी कमलोंको वे चारों मूर्ख पृथिवीपर मस्तक रख कर नमस्कार करते हुये ॥ ८७ ॥ निर्दोष है चेष्टा जिनकी ऐसे वे मुनिराज उन चारों मूर्खोंको

एक साथ ही दुःखोंको हरनेवाली पापरूपी पर्वतको उडाने, वाली धर्मवृद्धि (तुह्मारे धर्मकी वृद्धि होवो ऐसा आशीर्वाद) दी ॥ ८८ ॥ तत्पश्चात् वे चारों मूर्ख वहांसे एक योजनके आगे जाकर परस्पर लड़ाई करने लगे. सो उचित ही है, कि मन-वांछित फलकी देनेवाली एकता मूर्खोंमें कहांसे होय? ॥८९॥ एकने तो कहा कि, साधुमहाराजने मुझे आशीर्वाद दिया. दूसरेने कहा कि, मुझे दिया. इसप्रकार परस्पर बोलते हुये उन हतबुद्धि मूर्खोंमें बहुत देरतक निरर्गल कलह होती रही ॥ ९० ॥ तब किसी अन्यपुरुषने कहा कि, हे मूर्खो! तुम वृथा ही कलह क्यों करते हो? भले प्रकार निश्चयकरादेनेवाले उस मुनीश्वरको ही जाकर क्यों न पूछ लो? क्योंकि सूर्य्यके रहते हुये कहीं अन्धकार नहीं रहता ॥ ९१ ॥ यह वचन सुनकर उन सब मूर्खोंने मुनीन्द्रमहाराजके समीप जाकर पूछा, कि हे मु-निपुंगव! आपने जो आशीर्वाद दिया था, वह आपके प्रसा-दसे हम चारोंमेंसे किसको हुवा? ॥ ९२ ॥ तब मुनिमहारा-जने कहा कि, तुम चारोंमेंसे जो अधिक मूर्ख है, उसीको वह आशीर्वाद था. यह वचन सुनकर सब कहने लगे कि " अ-धिक मूर्ख मैं हूं. अधिक मूर्ख मैं हूं " सो ठीक ही है. क्यों-कि–'ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं जो अपना पराभव सह ले' ॥ ९३ ॥ तब उन सबका दुस्तर युद्ध सुनकर मुनिमहाराजने कहा कि, हे मूर्खो! तुम नगरमें जाकर बुद्धिमानोंद्वारा अपनी मूर्खताका न्याय करा लो. यहांपर यह कलह मत करो ॥ ९४ ॥ इसप्रकार मुनिमहाराजके वचन सुनकर वे सब मूर्ख लड़ाई छोड़ प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र ही अमितगतयः सन्

कहिये अपरिमित वेगसे नगरप्रति जाते हुये. तीन भवनमें पूजनीय मुनिमहाराजके वचनोंको प्रसन्नचित्त होकर तिर्यंच भी मानते हैं तो बुद्धिके धारक मनुष्य तो क्यों न मानेंगे ॥९५॥

इति श्रीअमितगतिआचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें अष्टम परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ८ ॥

अथानन्तर वे मूर्ख पत्तन (नगर) में जाकर नगरनिवासियोंके सन्मुख कहते हुये कि, आप हमारा एक विचार (न्याय) कर दीजिये ॥ १ ॥ नगरनिवासियोंने कहा कि, हे भद्र! तुह्मारा कैसा विचार है? तब उन्होंने कहा कि, हम लोगोंमें अधिक मूर्ख कौन है सो विचार कर बता दीजिये ॥२॥ तब नगरनिवासियोंने कहा कि, तुम अपनी २ मूर्खताकी कथा कहो. तब एक मूर्खने कहा कि पहिले मेरी कथा सुन लीजिये ॥ ३ ॥

प्रथम मूर्खकी कथा।

हे महाशय! विधाताने (कर्मने) मुझे वडे पेट और लम्बे स्तनोंवाली साक्षात् भयंकर बेतालीके समान दो भार्य्यायें दी ॥ ४ ॥ वे दोनों ही स्त्रियें मुझको रतिदायक और अतिशय प्रिय होती भई, सो नीति ही है कि, सबको सर्वप्रकारकी स्त्रियें स्वभावसे ही प्रिय हुवा करती हैं ॥ ५ ॥ मैं उन दोनों राक्षसियोंसे निरन्तर भयभीत रहता हूं. 'जगतमें ऐसा कौन पुरुष है, जो बहुधा स्त्रियोंसे नहिं डरता' ॥ ६ ॥ उन दोनोंके साथ क्रीड़ा करते हुये मेरे बहुत दिन सुखसे चले गये. एक दिन रात्रिके समय

में अपनी योग्यशय्यामें सोता था ॥ ७ ॥ सो वे दोनों ही गुणकी भाजन मेरी प्यारी स्त्रियें शीघ्र ही आकर मेरे एक एक हाथको मस्तकके नीचे दवाकर दोनों तरफ सो गईं ॥८॥ मैंने विलासके लिये ऐसे स्थानपर जो ठीक मस्तकपर था दीपक रख दिया था. क्योंकि 'कामी पुरुष आनेवाली विपदाको कभी नहिं देखते' ॥९॥ जब मैं सीधे मुंहसे सो गया तो एक दुष्ट मूषक उस दीपकमेंसे वत्ती निकालकर ले जाने लगा. सो मेरे वाम नेत्रपर वह जलती हुई वत्ती गिर पड़ी ॥ १० ॥ तव मैने शीघ्र ही जगकर नेत्रके जलनेसे व्याकुल हो यह विचार किया कि—॥ ११ ॥ यदि मै दहने हाथको निकालकर वत्ती वुझाता हूं तो मस्तकके नीचेसे हाथ निकलजानेके कारण मेरी दहने हाथवाली स्त्री गुस्से हो जायगी और वायें हाथसे वुझाता हूं तो यह दूसरी क्रोध करैगी ॥ १२ ॥ लाचार मैं अपनी प्यारी स्त्रियोंके भयसे उनके मस्तकके नीचेसे हाथ न निकालकर उसी तरह चुपचाप सोता रहा. जिससे मेरी वायीं ऑख फूट जानेसे मैं उसी दिनसे काणा हो गया ॥ १३॥ मेरे नेत्रको जलाकर फोड़नेके पीछे वह अग्नि(वत्ती) अपने आप ही वुझ गई, परन्तु मैंने स्त्रियोंके भयसे उसके वुझानेका कोई भी उपाय नहिं किया ॥ १४ ॥ मेरे समान मूर्ख होय तो कहो, जो कि स्त्रीमें आसक्त हो अपने नेत्रको जलता हुवा देखकर भी मध्यस्थ (चुप) रहै ॥ १५ ॥ स्त्रीके भयसे जिस दिन मेरा विषम (वाम) नेत्र फूट गया उसी दिनसे मेरा 'विषमेक्षण' ऐसा नाम पड़ गया है ॥ १६ ॥ इस लोक वा परलोकमें ऐसा कोई भी असह्य दुःख नहीं है

जो स्त्रीके वशीभूत होनेवाले पुरुषको नहिं होता ॥ १७ ॥ 'जो स्त्रीके वशीभूत पुरुष नेत्रोंके जलते हुये भी मूक होकर रहते हैं, वे दीन ऐसा कोनसा अयोग्य कार्य्य है, जो नहिं करते ॥ १८ ॥ मनोवेगने कहा कि, हे ब्राह्मणो ! इस वादशालामें उस विषमेक्षणकी सदृश कोई पुरुष हो तो मैं पूछने पर भी कहता हुवा डरता हूं ॥ १९ ॥ जब वह मूर्ख इसप्रकार अपनी मूर्खता को कहकर एक तरफ बैठ गया तव दूसरे नष्टबुद्धि मूर्खने प्रशंसा करते २ अपनी कथा कहनी शुरू की ॥ २० ॥

द्वितीयमूर्खकी कथा ।

मेरे दो स्त्रियें थीं. विधाताने समस्त विरूप पुद्गलोंको इकट्ठा करके ही मानो आककी डोडीके समान होटवाली वे दो स्त्रियें मेरे लिये वनाई थी. क्योंकि—॥ २१ ॥ वे वहुत ही काली, और कौड़ीके समान दांतवाली थीं. उनके लम्वे पांव वड़ी जंघायें और लम्वी नासिकायें थीं. और उनके कड़े रोम कंसकारों (काँसारियों) की देवीके समान वड़े भयंकर थे ॥ २२ ॥ वे भक्षणकरनेमें गधीको, अशुचि पदार्थ खानेमें शूकरीको और चपलतामें वायसी (कागली) को जीतनेवाली, और वुरा २ भक्षण करनेसे निन्द्य उकार लेनेवाली थीं ॥२३॥ सो वे दोनों ही स्त्रियें मेरे पर प्रीति रखनेवाली मुझे वडी प्यारी थी. सो एक तो मेरे दहने पांवको धोया करती थी और दूसरी वायें पांवको धोती थी॥ २४ ॥ एकका नाम ऋक्षी (रींछनी) और दूसरीका खरी (गधी) था. उन दोनोंसे निरन्तर क्रीड़ाके साथ रमते हुये मेरा काल सुखसे जाता था ॥२५॥ एक दिन

प्राणोंसे भी अतिशय प्यारी मेरी ऋक्षी नामा स्त्रीने प्रीतिपूर्वक मेरा पांव धोकर दूसरे पांव पर रख दिया॥२६॥ सो खरीने देखकर उसी वक्त एक मुशलद्वारा अतिशय निष्ठुर आघात करके मेरा पांव तोड़ डाला ॥ २७ ॥ तब ऋक्षीने खरीसे कहा कि, आज तुझे इतना स्वार्थ हो गया है जो ऐसी नीच क्रिया करने लगी ?॥ २८ ॥ हे दुष्टिनी, गधोंको गधेड़ीके समान हजारों यारोंको भोगती २ अब पतिव्रता बननेको चली है ? ॥ २९ ॥ इसप्रकार सुनकर खरीने कहा कि,—हे खले ! अपनी माताके सदृश हजारों व्यभिचारियोंको भोगकर अब मेरे पर भी वही दोष रखती है ? ॥ ३० ॥ हे बोडे, हे शठे, तेरा शिर मूंडकर पांच चोटी रखवाकर गलेमें शरावोंकी माला पहराकर शहरमें फिराऊं तो ठीक लगै ॥ ३१ ॥ इसप्रकार उन दोनोंमें दुष्ट राक्षसियोंके समान लोगोंके देखने योग्य बड़ी दुर्निवार लड़ाई हुई ॥ ३२ ॥ तब ऋक्षीने रुष्ट होकर कहा कि, ले तू और तेरी मा अपने पांवकी रक्षा कर, ऐसा कहकर मूशल ले, मेरा दूसरा पांव उस ऋक्षीनें तोड़ डाला ॥ ३३ ॥ दो दुष्टवाघिनियोंसे बकरेके समान उन दोनों स्त्रियोंसे भयभीतचित्त कंपितशरीर होकर मैं तो चुपचाप देखता ही रहा॥३४॥ जबसे मैने स्त्रियोंके भयसे चुपचाप पांव तुडवा लिये तभीसे मेरा 'कुंटहंसगति' ऐसा नाम पड़ गया ॥३५॥ देखो मेरी कैसी मूर्खता है जो उस समय स्त्रियोंके भयसे कंपितशरीर होकर मौन धारण कर लिया ॥ ३६ ॥ जैसा दुःशील कुरूप नीच कुलकी स्त्रियोंको सौभाग्य, रूप और सुंदरताका गर्व होता है, वैसा सुशील सुरूप कुलीन

निष्पाप धर्मात्मा स्त्रियोंको कदापि नहिं होता ॥ ३७॥ ३८॥ अपने हितकी वांछा करनेवाले समझदार पुरुषोंको कुलीन भक्तिमती शान्त और धर्ममार्गकी जानकार एक ही स्त्री करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ जो पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत होता है, वह निःसन्देह इसलोकमें तो कुलकी कीर्ति और सुखका नाश करता है और परलोकमें असह्य नर्क वेदनाको भोगता है ॥ ४० ॥ इस जगतमें वैरी व्याघ्र और सर्पोंसे निर्भय रहनेवाले तो वहुत पुरुष है, परन्तु स्त्रियोंसे नाहिं डरनेवाला एक भी नाहिं दीखता ॥ ४० ॥ जो पुरुष कुंटहंसगतिकी सदृश दुर्बुद्धि होते हैं, उनके सन्मुख पंडितजनोंको चाहिये कि– तत्त्व (वस्तुका स्वरूप) न कहैं ॥ ४२ ॥ इसप्रकार अपनी निंदनीय कथा कह कर, दूसरे मूर्खके चुप रहने पर तृतीय मूर्खने अपनी कथा कहनी प्रारंभ की ॥ ४३ ॥

तृतीय मूर्खकी कथा.

हे पुरवासियो ! अब मैं तुमको अपना मूर्खपन कहता हूं, सो सावधान होकर सुनो ॥ ४४ ॥ एक समय मैं ससुराल जाकर अपनी स्त्रीको ले आया. रात्रिको सोते समय वह वोलती नहिं थी. सो मैंने कहा कि, हे कृशोदरि ! अपन दोनोंमेंसे जो कोई पहिले वोलैगा वही घीमें तले हुये गुड़के दश पूवे हारैगा (देगा) ॥४५॥ ॥ ४६ ॥ तब मेरी स्त्रीने कहा कि, वहुत ठीक है, ऐसा ही करो. सो उचित ही है कि,–' कुलीन स्त्रियें पतिके वाक्य को कदापि उल्लंघन नहिं करतीं' ॥४७॥ इसप्रकार हम दोनोंके प्रतिज्ञारूढ होकर वैठ जानेपर उसी समय हमारे घरमें एक

चोरने आकर समस्त धन हरण कर लिया ॥ ४८ ॥ उस चोरने द्रव्य ग्रहण करनेमें कुछ भी वाकी नहिं छोड़ा सो उचित ही है कि, छिद्रके मिलनेपर व्यभिचारी और चोरोंमें वडी सामर्थ्य हो जाती है' ॥४९॥ शेषमें जब वह चौर मेरी स्त्रीके पहरनेका वस्त्र खोलने लगा तब मेरी स्त्रीने मुझे कहा कि, रे दुराचारी, क्या तू अब भी उपेक्षा करता है ? हे दुष्ट ! अपने सन्मुख मेरी धोतीके खोलने पर भी तू किसप्रकार जीता है ? कुलीन पुरुषोंका जीना तो स्त्रीके पराभवतक ही होता है. अर्थात् कुलीन पुरुष मर जाना श्रेष्ठ समझते हैं परन्तु अपनी स्त्रीका पराभव नहिं देख सक्ते ॥ ५० ॥ ५१ ॥ अपनी स्त्रीके ये वचन सुनकर मैंने हँसके कहा कि,–हे कान्ते ! तू ही पहिले बोल गई. सो "हार गई हार गई" तूने गुड़ वीके दश पूवे देना स्वीकार किया था, सो अब मेरे दश पूवे इसी वक्त रख दे ॥५२॥५३॥ देखो मेरी मूर्खता; जो मैंने दुष्प्राप्य, धर्म और सुखके देनेवाले पूर्वोपार्जित समस्त द्रव्यको अपनी आंखोके सामने चौरके द्वारा नष्ट कर दिया ॥ ५४ ॥ उसी दिनसे मेरा नाम 'वोद' प्रख्यात हो गया है. सो उचित ही है, 'मिथ्याभिमानके वशीभूत होकर यह मनुष्य क्या क्या आपदा नहिं भोगता' ॥ ५५ ॥ अपने कर्त्तव्यमें अवज्ञा (हानि) होती हो तो मनुष्य अपने जीवितव्यको छोड देता है, परन्तु शरीरका खंड २ हो जाय तो भी अपना गर्व नहिं छोडता ॥५६॥ समस्त द्रव्यके नाशको सहते हैं इसमें सत्पुरुषोंको कुछ भी आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि मिथ्याभिमानसे नरककी वेदनातक सह लेते हैं ॥ ५७ ॥

जो नराधम बोदकी समान मूर्ख हैं, उनको सारासार विचार करनेका अधिकार (सामर्थ्य) ही नहीं है ॥ ५८ ॥ इसप्रकार अपनी मूर्खता प्रगटकर तीसरे मूर्खके चुप रहने बाद नगर निवासियोंके पूछने पर चौथा मूर्ख अपनी कथा कहनेलगा॥५९॥

चतुर्थमूर्खकी कथा।

एक समय मैं अपनी स्त्रीको लेनेके लिये स्वर्गके समान इच्छित सुखकी आधारभूत ससुरालमें गया ॥ ६० ॥ सो मेरी सासने विचित्रवर्ण सचिक्कण आनन्ददायक जिनवाणीके समान उज्वल (पवित्र) भोजन दिया ॥ ६१ ॥ परन्तु कष्टसे है उतार चढाव जिसका ऐसी महामारी (हैजे) के समान लज्जाके कारण विकलाचित्त हो, मैंने कुछ भी नहिं खाया ॥६२॥दूसरे दिन भी देहसहित व्याधियोंकी समान उस गांवकी स्त्रियोंको देखकर कुछ भी भोजन करने नाहिं पाया ॥ ६३ ॥ तब तीसरे दिन प्रलयकालकी अग्निके सदृश सर्वांगमें दाहकरनेवाली जठराग्नि (क्षुधा) बडी तेज हो गई ॥ ६४ ॥ जो क्षुधासे घबराया हुवा होता है, वह किसीके सन्मुख नाहिं देखता. सो मैंने उस समय सहज ही पलंगके नीचे झांका तो वहां पर आकाशको निर्मलकरनेवाली चन्द्रमाकी किरणोंके समान स्वच्छ शालिचावलोंसे भरा हुवा एक बहुत बड़ा बर्तन देखा ॥ ६५ ॥ ६६॥ तत्पश्चात् मैंने घरके दरवाजेकी तरफ देखा तो कोई भी नहीं है और न किसीके आनेकी आहट सुनी तब मैंने उन चावलोंसे मुंह भर लिया. सो उचित ही है, अत्यन्त क्षुधातुरके मर्य्यादा कहाँ ? ॥ ६७ ॥ दैवयोगसे उसी समय मेरी बल्लभा (स्त्री)

भूषित है तथा—॥ १३ ॥ जिसके द्वारा जगतको उपद्रव करनेवाले दुष्ट दानव सूर्य्यकी किरणोंसे अंधकारके समूहकी समान शीघ्र ही मारे जाते हैं और—॥ १४ ॥ जिसकी गोदमें लोगोंको महाआनंद करनेवाली आतापको नष्ट करनेवाली मनोहर चन्द्रकिरणकी समान पूजनीय लक्ष्मी स्थित है ॥ १५ ॥ जिसके शरीरमें निर्मल प्रभावाला कौस्तुभमणि शोभायमान है, सो मानो लक्ष्मीने अपने सुंदर मंदिरमें दीपक ही रक्खा है ॥ १६ ॥ सो हे विप्रो ! इस प्रकारके समस्त देवोंके देव पुण्डरीक भगवान वैकुंठके परमात्मा (विष्णु) में तुम लोगोंकी प्रतीति है कि नहीं ? ॥ १७ ॥ तव ब्राह्मणोंने कहा कि, हे भद्र ! उपर्युक्त प्रकारका चराचर जगद्व्यापी जो विष्णु भगवान है, उसको कौन नहिं मानता? ॥ १८ ॥ दुःखरूपी अग्निको मेघकी समान और संसाररूपी समुद्रसे तारनेको जहाज समान विष्णुको जो लोग अंगीकार नहिं करते अर्थात् नहिं मानते, वे मनुष्य शरीरको धारण करते हुये भी पशु हैं ॥ १९ ॥ भो भट्टगणो ! यदि तुमारा विष्णु ...ग उत्कृष्ट है तो नन्दगोकुलमें गवालिया होकर गौओंको वृ...मलिये चराता था ? ॥ २० ॥ तथा कुटजपुष्पोंकी कर...से दृढ वंधा हुवा मयूरपुच्छ धारणकर गोपालकोंके (गप्रकार...के) साथ वारंवार रासक्रीडा क्यों करता था ? मुझे वत... तथा युधिष्ठरकी तरफसे दूतपणा करनेके लिये णोंने कहा ... सिपाइयोंकी समान भागा २ क्यों गया ड सर्पको मोर... तथा हाथी घोड़े पदातियोंसे भरे हुये युद्धमें मनोवेगने फिर (रथ हांकनेवाला) वनकर किस लिये

रथ हांकता था? ॥ २३ ॥ तथा ववनेका रूप धारणकर दरिद्रकी समान दीन वचन कहता हुवा वलिराजासे पृथिवीकी याचना क्यों करी थी? ॥ २४ ॥ तथा समस्त लोकको धारण करनेवाला सर्वज्ञ सर्वव्यापी स्थिर होकर रामावतारमें कामी- की सदृश सर्व तरफसे सीताकी विरहरूपी अग्निकेद्वारा किसप्र- कार तापित होता भया?॥२५॥ इनको आदिलेकर अनेक अनु- चित कार्य्य योगियोंद्वारागम्य जगतके गुरु वंदनीय महात्मा देवके (विष्णुके) होना योग्य है ? ॥ २६ ॥ यदि इसप्रकारके कार्य्य विरागरूप हरि (विष्णु) करता है तो हम दरिद्रके पुत्रोंका काष्ठ वेचनेमें कोनसा दोष है? ॥ २७ ॥ यदि इस- प्रकारकी क्रीड़ा (लीला) मुरारि परमेष्ठिके है, तो अपनी श- क्तिके अनुसार काष्ठादिक वेचनेरूप क्रीड़ा करते हुये हमको कोन निवारण कर सक्ता है ? ॥ २८ ॥ इसप्रकार विद्याधर मनोवेगके वचन सुनकर चतुर ब्राह्मणोंने कहा कि, हमारा विष्णु भगवान् तो ऐसाही है इसका हम उत्तर क्या दे सक्ते हें ? ॥२९॥ इस समय तो हमारे मनमें भी भ्रान्ति होगई है कि परमेष्ठी हरि ऐसे कार्य्य किस प्रकार कर सक्ता है॥३०॥ हे भद्र! तूने हम मूढमनवालोंको प्रबोधित किया सो उचित ही है–'दीपकके विना नेत्र रहते भी रूप नहिं देखा जाता' ॥ ३१ ॥ यदि हमारा विष्णु ऐसे अनुचितकार्य्य किसी अ- न्यपरमेष्ठीकी प्रेरणासे करता है तो यह अपने पिताकी आ- ज्ञासे तृणकाष्ट वेचता है ॥ ३२ ॥ यदि देव ही ऐसे अन्याय कार्य्य करता है तो वह अपने शिष्यों (भक्तों)को निषेध कैसें कर सक्ता है? क्योंकि खुद राजा ही चोरी करता हो

तो वह चोरोंको किसप्रकार निवारण कर सक्ता है? ॥३३॥ विष्णुको ऐसे कार्य्य करते हुये अन्यपुरुषोंको ऐसे कार्य्य करनेमें दोष क्यों देना? क्योंकि 'जिस घरमें सासू ही व्यभिचारिणी हो तो बहूको दोष देना व्यर्थ है' ॥ ३४ ॥ यदि उसके अंश सरागी हैं तो वह परमेष्ठी भी सरागी है वीतराग नहीं है क्योंकि अवयव सरागी होनेसे अवयवी वीतराग कैसें हो सकता है? ॥ ३५ ॥ समस्तलोक विष्णु भगवान्‌के उदरमें था तो फिर सीताका हरण किसप्रकार हुवा? क्या आकाशसे बाहर भी कभी कोई वस्तु हो सक्ती है? ॥३६॥ तथा विष्णु सर्वव्यापी और नित्य है तो उसके इष्टका विरह (वियोग) व पीड़ा किसप्रकार हो सक्ती है? ॥३७॥ यदि वह किसीकी आज्ञासे ऐसे कार्य्य करता है तो वह जगतका प्रभु कैसें हो सक्ता है? क्योंकि राजा होकर सेवकका कार्य्य कोई भी नहिं करता ॥३८॥ सर्वज्ञ होकर उसने वृक्षादिकसे सीताकी खबर क्यों पूछी? ईश्वर होकर भिक्षा क्यों मांगी? प्रबुद्ध होय सो निद्रा कैसें ले? और विरागी होकर कामसेवन कैसें कर सक्ता है? ॥ ३९ ॥ तथा अन्य जीवोंकी समान दुःखित होकर उसने मत्स्य कच्छप शूकर नृसिंह वामन परसराम राम कृष्ण वगेरह अवतार किसलिये धारण किये? ॥ ४० ॥ अनेकप्रकारके छिद्रसहित विष्टाके घड़ेकी समान नवद्वारोंसे चारों ओरसे अपवित्र वस्तुओंको निकालनेवाले कर्मनिर्मित समस्त अपवित्रताके घररूप महा अपवित्र देहको पापरूपीमैलसे रहित वह स्वतंत्र परमेश्वर किसप्रकार धारण करता है? ॥ ४१-४२ ॥ उस प्रभुने दानवोंको उत्पन्न करकें

फिर कैसें मारे? क्योंकि जगतमें ऐसा कोई भी पिता नहिं होता जो अपने पुत्रका अपकारक हो ॥ ४३ ॥ यदि वह तृप्त है तो भोजन क्यों करता है? यदि अमर है तो अवतार लेलेकर क्यों मरता है? यदि भय और क्रोधसे रहितहै तो शस्त्र किस लिये धारण करता है? ॥ ४४ ॥ सर्वज्ञ होकर भी वसा (नसें) रुधिर मांस अस्थि मज्जा शुक्र आदिकसे दूपित विष्टाके घरकी समान गर्भमें कैसें रहा? ॥ ४५ ॥ हे भद्र! इसप्रकार हम अपने देवके विपयमें विचार करते हैं तो पूर्वापर विचार करनेवाले हम सवकी भक्ति तेरे वचनोंमें ही होती है. अर्थात् तुमारा कहना ही सत्य है ॥ ४६ ॥ जो पुरुप अपने संदेहोंको ही दूर नहिं कर सक्ता, वह अन्य हेतुवादियोंको क्या उत्तर देगा? ॥ ४७ ॥ हे भद्र! निश्चयकरकें तूने हमको जीत लिया. अव तू जयलाभरूपी आभूपणसे भूपित होकर जा. हम भी अव समस्तदोप रहित देवको ढूंढेंगें. क्योंकि जो अपना कल्याण चाहते हैं, उनको चाहिये कि जन्म मृत्यु जरा रोग क्रोध लोभ भयका नाश करनेवाले पूर्वापर दोपरहित देवको पहचानकर ग्रहण करें ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ इसप्रकार विप्रोंके कहने पर जिनेन्द्रभगवानके वचनरूपी जलसे धोकर निर्मल किया है अपना चित्त जिसने ऐसा वह सुबुद्धि मनोवेग विद्याधर उस वादशालासे निकलकर जाता हुवा ॥ ५० ॥ तत्पश्चात् उसी वागमें जाकर अपने मित्र पवनवेगको कहने लगा कि, हे मित्र! तूने इस लौकिक सामान्य देवको विचारपूर्वक सुना? अव मैं तेरे संशयरूपी अन्धकारको नाश करनेवाले सूर्यकी समान थोड़ा-

सा अनुक्रमका स्वरूप और भी कहता हूं सो सुन ॥ ५१-५२ ॥

हे मित्र! इस भारतवर्षमें ६ ऋतुकी समान अपने भिन्न २ स्वभावोंको लिये हुये छः काल यथाक्रमसे हुवा करते हैं ॥ ५३ ॥ इनमेंसे चतुर्थकालमें चंद्रमाकी समान उज्ज्वल कीर्तिके धारक जगन्मान्य ६३ त्रेसट शलाका पुरुष (उत्तम पुरुष) उत्पन्न होते हैं ॥ ५४ ॥ उनमेंसे चोवीस तो तीर्थंकर (अरंहत), द्वादश चक्रवर्ति, नव वलभद्र (राम), नव नारायण और नव प्रतिनारायण (वलभद्र और नारायणके शत्रु) होते हैं ॥ ५५ ॥ इस समय वे सवके सव पृथिवीमंडलके मंडन उत्पन्न हो हो कर व्यतीत हो गये. क्योंकि 'जगतमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है कि जिसको काल नहिं ग्रसता' ॥ ५६ ॥ नारायणोंमेंसे अन्तका नारायण वसुदेवका पुत्र श्रीकृष्ण हुवा. उसको इन ब्राह्मण भक्तोंने निरंजन परमेष्ठी मान लिया है ॥५७॥ और कहते हैं कि जो पुरुष सर्वव्यापी, निष्कल जरामरणका नाशक, अछेद्य, अव्यय, देव; विष्णुरूप ध्येयका ध्यान करते हैं, वे दुःख नहिं पाते ॥ ५८ ॥ तथा जिस विष्णुको मीन, कूर्म, शूकर, नारसिंह, वामन, राम, परसराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की इन दश अवतार रूप कह ४० निष्कलंक कहिये शरीर रहित भी कहा और दश वद्वारोंसे रका धारी भी वताया, सो इसप्रकार पूर्वापर विरोधनिर्मित समदेवको विद्वज्जन कदापि आप्त नहिं कह सक्के मिलसे रा.० ॥ वलिके वन्धनकी सच्ची कथा मैं कहता हूं ॥ ४१-४[illegible] मनुष्योंने कुछका कुछ प्रसिद्ध कर

दिया है ॥ ६१ ॥ एक समय वलि नामके एक दुष्ट ब्राह्मण मन्त्रीने मुनियोंको (उपसर्ग) उपद्रव किया था, सो ऋद्धि-प्राप्त विष्णुकुमार नामा एक मुनिने वामन (ववना) का रूप धारण कर तीन पांव जमीन मांग कर वलिको बांध-लिया और मुनियोंकी रक्षा की थी. इसप्रकार जो कथा है उसको मूढ लोकोंने और ही प्रकार मान लियी है॥६२-६३॥ नित्य निरंजन सूक्ष्म मृत्यु जन्मसे रहित तथा निष्फल होकर उसने दश अवतार कैसें धारण किये ? ॥ ६४ ॥ हे मित्र ? इसीप्रकार पूर्वापर विरोधसे भरे हुये इनके पुराण है, सो तुझे फिर भी वताता हूं, ऐसा कहकर उसने लकड़हारेका रूप छोड़ा ॥ ६५ ॥ तत्पश्चात् अपनी विद्याके प्रभावसे उस मनोवेगने वक्र है केशोंका भार जिसका, कज्जलकी समान रूप, मोटे २ हाथ पांववाले भीलका रूप धारण किया ॥६६॥ इसीप्रकार पवनवेगने भी मार्जारीविद्यासे पीली २ आखोंवाले कटे हुये कानोंके काले मार्जारका (विलावका) रूप व-नाया ॥ ६७ ॥ तत्पश्चात् वह मनोवेग नगरमें प्रवेश करके मार्जारको एक घड़ेमें रख दूसरी वादशालामें पहुंचा और वहां जाकर घंटे और भेरी वजाकर सुवर्णसिंहासनपर जा वैठा ॥ ६८ ॥ भेरीका शब्द सुनते ही वादी ब्राह्मण शीघ्र ही आकर मनोवेगको कहने लगे कि, क्यों वे ! तू वाद किये विना ही इस सोनेके सिंहासनपर कैसें वैठ गया ? ॥ ६९ ॥ तव मनोवेगने कहा कि हे ब्राह्मणो ! ' वाद ' इस नामको ही नहिं जानता तो मैं पशुकी समान वनमें फिरनेवाला वाद कैसें कर सक्ता हूं ? ॥ ७० ॥ तव ब्राह्मणोंने कहा कि-हे

मूर्ख ! यदि तू वादका नाम ही नहिं जानता तो भट्ट ब्राह्मणोंको वादीकी सूचना करनेवाली भेरीको बजाकर इस सुवर्णसिंहासनपर क्यों बैठ गया? ॥ ७१ ॥ तब मनोवेगने कहा कि मैं तो केवलमात्र कौतुकसे भेरी बजाकर इस सिंहासन पर बैठ गया, न कि वादके घमंडकी इच्छासे ॥ ७२॥ यदि सुवर्णके सिंहासन पर मूर्खका बैठना योग्य नहीं है तो हे विप्रो! लो मैं उतर जाता हूं ऐसा कहकर वह मनोवेग नीचें बैठ गया ॥ ७३ ॥ तब विप्रोंने कहा कि, तूं यहां किस लिये आया है? मनोवेगने कहा कि मैं भील हूं. यह एक मार्जार बेचने आया हूं ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि इस बिल्लीका महात्म्य तो क्या है और मूल्य क्या है सो कहो. भीलने (मनोवेगने) कहा कि, गरुडसे सर्पोंकी समान इस बिल्लीकी गन्धमात्रसे बारह योजन (४८ कोस) तकके मूषक (चूहे) नष्ट हो जाते हैं ॥ ७५–७६ ॥ हे विप्रो! इस महा प्रभाववाले मार्जारका मूल्य पचास सुवर्णके पल (एक प्रकारकी मुहर) है. यदि तुमारे आवश्यकता हो तो ले लो ॥ ७७ ॥ तत्पश्चात् समस्त ब्राह्मण परस्पर कहने लगे कि समस्त मूषकोंके नाश करनेमें समर्थ ऐसा यह मार्जार अवश्य ले लेना चाहिये ॥ ७८ ॥ एक दिनमें मूसे जितना द्रव्य नाश कर देते हैं तो क्या उससे हजारवां हिस्सा भी इसका नहिं दिया जावे? ॥ ७९ ॥ तत्पश्चात् समस्त ब्राह्मणोंने मिलकर उसी वक्त वह मार्जार पंचास पल देकर ले लिया, सो उचित ही है 'दुर्लभ्य वस्तुको प्राप्त करनेमें बुद्धिमान विलंब नहिं करते' परंतु

॥ तब मनोवेगने कहा कि, हे विप्रो! यह बिडाल तुम

परीक्षा करके ग्रहण करो नहीं तो वडी हानि होगी. उसका फिर मुझे दोष नहिं देना ॥ ८१ ॥ यह वात सुनकर उन ब्राह्मणोंने मार्जारको देखा तो उसके कान न देखकर कहने लगे कि इसके कान किसप्रकार नष्ट हो गये सो कहो ॥ ८२ ॥ तव मनोवेगने कहा कि रात्रिको हम एक देवालयमें थके थकाये सो गये थे उस मंदिरमें चूहे वहुत थे ॥८३॥ वहीं पर यह विडाल भी भूखके मारे अचेत निद्रामें सो रहा था, सो उन सव चूहोंने मिलकर इसके कान कुतर २ कर खा लिये ॥८४॥ तव ब्राह्मणोंने अत्यन्त हंसीके साथ कहा कि, हे मूर्ख! तेरे वचन परस्पर विरुद्ध हैं. क्योंकि जिसकी गन्धमात्रसे १२ योजनके चूहे नष्ट हो जाते है, उसके कान चूहोंने कैसें काट खाये ॥ ८५-८६ ॥ तव जिनेन्द्रभगवानके चरणरूपी कमलोंमें भ्रमरकी समान वह मनोवेग कहने लगा कि,-विप्रगणो! क्या इस एक दोषके कारण इसके समस्त गुण नष्ट हो गये? ॥ ८७ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि-वेशक इस एक दोषसे इसके अन्य समस्त गुण भी गये. क्या कांजीका विन्दुमात्र पड़जानेसे दूध नहिं फट जाता? ॥ ८८ ॥ तव मनोवेगने कहा कि-हे ब्राह्मणो! इसके एक दोषसे सव गुण कदापि नष्ट नहिं हो सक्ते. क्या अंधकारसे मर्दन किये हुये सूर्य्यके किरण कहीं चले जाते हैं? ॥८९॥ हम तो दरिद्रके पुत्र हैं, वनमें पशुकी समान रहनेवाले हैं, आपसे विद्वानोंके साथ विशेष वादविवाद नहिं कर सक्ते ॥९०॥ ब्राह्मणोंने कहा कि भाई! इसमें तुमारा कोई दोष नहीं है, किन्तु इस विलावका दूषण दूर कर. तव मनोवेगने कहा कि-॥९१॥वेशक मैं इस मार्जारका

दूषण दूर कर सक्ता हूं, परन्तु आप ईश्वरकी समान इस नगरके राजा हैं आपके साथ वोलते हुये मेरा मन भयभीत होता है ॥ ९२ ॥ जो मनुष्य कूपमंडूककी समान अथवा कृतकबधिरकी तुल्य अथवा क्लिष्टभृत्यकी सदृश होय तो उसके सामने सत्यार्थ तत्त्व (वस्तुका स्वरूप) कहते हुये मनमें भयकारक शंका होती है ॥ ९३ ॥ जो पुरुष शास्त्रकी वातको प्रमाण नाहिं करै और अपनी वस्तुको छोटी होते भी वहुत वडी कहै और परवस्तुका परिमाण नहिं करै, वह पुरुष कूपमंडूककी सदृश कहाता है ॥ ९४ ॥ जैसें एक समय समुद्रनिवासी राजहंसको देखकर किसी कूएके मेंडकने पूछा कि, तुम कहां रहते हो ? हंसने कहा कि, मैं समुद्रमें रहता हूं. तव मेंडकने पूछा कि वह तेरा समुद्र कितना वड़ा है, तो हंसने कहा कि वहुत वड़ा है ॥ ९५ ॥ तव मंडूकने अपने हाथ पांव पसार कर कहा कि समुद्र इतना वडा है, तव हंसने कहा कि, भाई, समुद्र वहुत वड़ा है. मेंडकने कहा कि, क्या मेरे कूएसे भी वडा है ? तव हंसने कहा कि भाई इससे वहुत ही वड़ा है. परन्तु उस मेंडकनें हंसका कहना झूट माना. जैसें कि एक कहावत है कि,—

" हाथ पसारे पांव पसारे और पसारा गात ॥
इससे वडा समुद्र है (तो) कहन सुननकी वात ॥ १ ॥"

सो हे ब्राह्मणो ! ऐसे कूपमंडूक सदृश जो सत्य वचनको भी स्वीकार नहिं करे उसको पंडित जन कुछ भी नाहिं कहते. क्योंकि सत्पुरुष व्यर्थ कार्य कभी नहिं करते ॥ ९६–९७ ॥

पुरुष स्वजनोंके तथा शकुनशास्त्रके शब्दोंद्वारा निवारण

किया हुवा भी उन शब्दोंको नहिं सुनकर ढोल वगैरहके शब्दोंसे अन्य शब्दोंको आच्छादन करकें किसी कार्य्यका प्रारंभ करता है, वही निकृष्ट कृतकबधिर नामा मूर्ख कहाता है ॥ ९८ ॥ जो पुरुष राजाको तृष्णावान दुष्टमति, अदायक (कृपण) जानकर भी नहिं छोड़ता और अनेक प्रकारके क्लेशोंको भोगता है, वही निंदनीय कष्टभृत्य कहा गया है ॥ ९९ ॥ जो मनुष्य इन तीनोंकी समान कार्य्य अकार्य्यको प्रगट करनेवाले वचनको चुटकियोंमें उडानेवाले, दीन निर्बुद्धि हैं, उनके प्रति पंडितजनोंकर पूजनीय अविनाशीक मोक्ष लक्ष्मीको देखनेवाले निर्दोप, अपरिमाण ज्ञानके धारक सत्पुरुपोंको चाहिये कि तत्त्व (वस्तुका सत्यार्थ स्वरूप) न कहै ॥ १०० ॥

इति श्रीअमितगतिआचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भापाटीकामें दशम परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १० ॥

अथानन्तर ब्राह्मणोंने कहा कि, हे भद्र ! क्या हम ऐसे मूर्ख हैं ? जो युक्तिसे प्रगटतया घटमान (सिद्ध किये हुये) वचनको भी नहिं समझें ? ॥ १ ॥ तब विद्याधरनाथके चतुर पुत्रने कहा कि, हे विप्रगणो ! यदि ऐसा है तो मैं अपने मनोभावको प्रगट करता हूं सो सुनो ॥ २ ॥

जिसप्रकार सूर्य्यमें तेज है उसीप्रकार निवास किया है दोप जिसमें ऐसी तपस्याका घर एक मंडपकौशिक नामका तपस्वी था ॥ ३ ॥ वह एक समय तारोंमें चंद्रमाके समान पवित्रशरीरवाले तपस्वियोंके साथ भोजन करनेकेलिये बैठा

था, सो उसको नींदनीय चांडालकी सदृश बैठा हुवा देख-
कर उसके स्पर्शका है भयचित्तमें जिनके ऐसे वे समस्त
तपस्वी उसी वक्त खड़े हो गये ॥४-५॥ तब मंडपकौशिकने
उनसे कहा कि, आपके साथ भोजन करते हुये मुझे कुत्तेकी समा-
न देखकर आप लोग क्यों उठ गये ? ॥६॥ तब तपस्वियोंने कहा
कि, तुमने पुत्रका मुख नाहि देखा अभीतक कुमार ब्रह्मचारी
ही हो, इसकारण तापसियोंके नियमसे वहिर्भूत हो, क्योंकि,
॥ ७ ॥ निपुत्रकी (जिसने पुत्रका मुख नहिं देखा हो उस-
की) न तो गति होती है और न उसके तपसे स्वर्ग ही
होता है. इसकारण पहिले गृहस्थाश्रम धारणपूर्वक पुत्रका
मुख देखकर मोक्षकेलिये तपस्या ग्रहण की जाती है.
यदि तुझे मोक्षकी इच्छा होय तो पहिले गृहस्थाश्रम धारण-
पूर्वक पुत्रमुख दर्शन कर ॥ ८ ॥ तब वह मंडपकौशिक
उन ऋषियोंकी आज्ञानुसार अपने जाति भाइयोंसे विवाहके-
लिये कन्या जाची (मांगी) किन्तु उसकी उमर वहुतसी वी-
तजानेके कारण किसीने भी अपनी कन्या देना स्वीकार
नहिं किया ॥९॥ तब उसी वक्त तपस्वियोंके पास जाकर पूछा
कि मुझे वृद्ध समझकर कोई भी अपनी कन्या नहिं देता, सो
अब मैं क्या करूं ? ॥ १० ॥ तब उन ऋषियोंने आज्ञा
करी कि तू किसी विधवाका ही ग्रहण करके सुख भोग. इस-
प्रकार करनेमें तुम दोनोंको कोई भी दोष नहीं है. क्योंकि,
हमारे ऋषिमतमें (स्मृतियोंमें) कहा है कि,—॥ ११ ॥ पतिके[1]

---

१ ' पत्यौ प्रव्रजिते क्लीबे प्रणष्टे पतिते मृते । पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ' ॥ १२ ॥

परदेशचलेजानेपर, नपुंसक होनेपर, रोगी दरिद्री होनेपर अ-
थवा भागजाने पर, पतित (जातिच्युत) होनेपर तथा मर-
जाने पर इन पांच आपदावोंमें स्त्रीकेलिये दूसरा पति किया
जाता है ॥ १२ ॥ तब उसने ऋपियोंकी आज्ञानुसार एक
विधवाका ग्रहण किया. यह जगत विना उपदेश ही विप-
योंमें लालसा रखते हैं, सो गुरुजनोंकी आज्ञा होनेपर तो
क्यों न इच्छा करेंगे ? ॥ १३ ॥ उस स्त्रीके साथ भोगविलास
करते २ उसके लक्ष्मीकी समान रूपवती समस्तजनोंकर प्रार्थना
करनेयोग्य एक अतिशय मनोहर कन्या उत्पन्न हुई ॥ १४ ॥
वह कन्या ज्यों ज्यों वढ़ती गई त्यों त्यों ब्रह्मा विष्णु म-
हेश और इन्द्रादिक देवोंके अनिवार्य्य कामदेवको वढ़ाने
लगी ॥ १५ ॥ वह कन्या ताये स्ववर्णकी कान्तिके समान का-
न्तिवाली, विद्वानोंको प्रिय ऐसे गुण कलावोंकी घर, 'छाया'
नामको धारण करती हुई ॥१६॥ अपनी कांतिरूपी सम्पदासे
समस्त स्त्रियोंको जीतकर तिष्ठी. जिसकी समान उसकी छा-
या ही आदर्शरूप होती हुई, अन्य कोई भी स्त्री उसकी
सदृशता धारण करनेवाली नहीं थी ॥ १७ ॥ जिसप्रकार
कृपणके घरमें परोपकारिणी लक्ष्मी होती है, उसीप्रकार वह
सुन्दर कन्या उस मंडपकौशिकके घर आठ वर्षकी होगई॥१८॥
एक दिन मंडपकौशिकने अपनी स्त्रीसे कहा कि, हे प्रिये !
मेरी इच्छा है कि समस्त पापोंको नाशकरनेवाली तीर्थया-
त्रा करें परन्तु-॥ १९ ॥ सुवर्णकी समान है कांति जिसकी
शुभलक्षणोंकी धारक, नवीन यौवनावस्थाको धारण करने-
वाली इस छायाको किस देवके हाथ सौंप जावें ? क्योंकि

जिसके सुपुर्द यह कन्या की जायगी, वही अपनी कर बैठें-गा. क्योंकि इस लोकमें ऐसा कोई भी नहिं दीखता जो रामा-रूपी रत्नसे पराङ्मुख हो ॥ २०—२१ ॥ जो रुद्र (म-हादेव) है सो तो सर्वकाल कामरूपी अग्निसे तप्तायमान होकर अपने आधे शरीरमें पार्वतीको रखता है सर्पोंसे वेष्टित और वि-षमेक्षण है. तथा अपनी देहमें रहनेवाली प्रिय पार्वतीको छोड़ कर गंगाको सेवन करता है, सो ऐसी उत्तम लक्षणोंवाली कन्या-को पाकर कैसें छोड़ैगा ? ॥२२—२३॥ जिसके दुर्निवार हृदयमें अहोरात्र समुद्रकी बड़वानलके समान महा तापकारक कामा-ग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है, उस महाकामी महादेवके हाथ यह कन्या किसप्रकार सौंपी जावे? क्योंकि पंडितजन हैं, वे रक्षाकेलिये मार्जारको (बिल्लीको) दूध कदापि नहिं सौंपते ॥२४—२५॥ तथा जो विष्णु नादियोंद्वारा सेवन किये हुये समु-द्रकी सदृश निरन्तर सोलह हजार गोपियोंको सेवन करता हुवा भी तृप्तिको प्राप्त नहिं होता और हृदयस्थित लक्ष्मीको छोड़कर गोपियोंमें रमता है, वह माधव इस सुन्दर कन्याको पाकर कैसें छोड़ैगा? ॥ २६—२७ ॥ सो हे प्रिये! ऐसे विष्णुको यह कन्या किसप्रकार सौंपू? 'क्या कोई रक्षा करनेकेलिये चोरके ही हाथमें रत्न देता है' ॥ २८ ॥ जिस ब्रह्माने दे-वांगनाके नृत्यमात्र देखनेकेलिये अपनी उत्तम तपस्याको छोड़ दई. वह ब्रह्मा सुंदर कामिनीको पाकर क्या नहिं क-रैगा ? ॥ २९ ॥ वह कथा इसप्रकार है,—

एक समय अचानक ही इन्द्रका आसन कम्पायमान हो-ने पर इन्द्रने बृहस्पतिसे पूछा कि, हे साधो! मेरा आसन

किसने कम्पायमान किया ? ॥ ३० ॥ तब बृहस्पतिने कहा कि–हे देव ! आपके राज्य लेनेकी इच्छासे ब्रह्माको तप करते हुये आज ४ हजार वर्ष बीत गये हैं. सो हे प्रभो ! उस तपके महाप्रभावसे ही आपका आसन कंपित हो गया है. सो उचित ही है कि–'तपके प्रभावसे क्या साध्य नहीं है'॥ ३१–३२॥ इसकारण हे हरे ! अब किसी उत्तम स्त्रीको भेजकर उसके तपको नष्ट कर. स्त्रीके सिवाय तप हरणकरनेका अन्य कोई भी उत्कृष्ट उपाय नहीं है ॥ ३३॥ तब इन्द्रने मनोहर २ समस्त स्त्रियोंका (अप्सराओंका) तिल २ भर रूप (सौन्दर्य) ले ले कर एक बहुत सुन्दर स्त्री (अप्सरा) बनाई, जिसका नाम "तिलोत्तमा" रक्खा और "तू ब्रह्माके पास जाकर उसको तपसे भ्रष्ट कर" इसप्रकार आज्ञा देकर उस तिलोत्तमाको ब्रह्माके पास भेज दिया ॥ ३४–३५ ॥ तत्पश्चात् तिलोत्तमाने उसी वक्त ब्रह्माजीके सन्मुख पहुँचकर पुराने मद्य (शराब) की समान मनको मोहित करनेमें तत्पर ऐसा रसपूरित सुन्दर नृत्य करना शुरू किया ॥ ३६ ॥ तथा उस चतुर तिलोत्तमाने ब्रह्माके कामरूपी वृक्षको बढ़ानेके लिये मेघके समान शरीरके गुप्त अवयव दिखाये, जिनके देखनेसे ब्रह्माकी चंचलदृष्टि उस तिलोत्तमाके शरीरमें–कभी पावोंमें कभी उसकी जंघा व ऊरुस्थलमें, कभी विस्तीर्ण जघनस्थलमें, कभी नाभिपर तो कभी दोनों स्तनोंपर, स्तनोंपरसे हटी तो गर्दन तथा मुखरूपी कमलपर जा टिकी. इसप्रकार बहुत कान्तक इधर उधर दौड़ती २ तथा विश्राम करती २ क्रीड़ा करने लगी ॥ ३७–३८–३९॥ वह मंदगामिनी तिलोत्तमा विलास

विभ्रमकी आधारभूत विन्ध्याचलको नर्मदाके समान ब्रह्मा-
के हृदयको भेदती हुई ॥ ४० ॥ तत्पश्चात् उसने ब्रह्माको
दृष्टिसे लवलीन जान कर अनुक्रमसे दक्षिण उत्तर और पी-
ठ पीछें नृत्य करके उसके मनको चारों तरफ घुमाया, पर-
न्तु—॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीने लज्जाके वशीभूत होकर नाच दे-
खनेके लिये अपनी गर्दनको इधर उधर घुमाकर नहिं देखा.
सो उचित ही है कि—'लज्जा मान और मायासे
कोई भी उत्तम काम नहिं होता' ॥ ४२ ॥ जब लज्जा
और मानके वश अपनी गर्दनको घुमाकर तिलोत्तमाके रू-
पको नहिं देख सका तो लाचार होकर उस नष्टबुद्धि ब्रह्माने
एकएक हजार वर्षकी तपस्याका फल व्यय करके प्रत्येक दिशा-
में एक एक नया मुंह बनाकर उसके रूपको निरखने लगा
॥ ४३ ॥ जब उस तिलोत्तमाने ब्रह्माको अतिशय आसक्त
दृष्टिवाला देखा तो वह फिर आकाशमें उठकर नृत्य करने ल-
गी. सो ठीक ही है, 'स्त्रियें रक्तचित्त पुरुषोंको क्या क्या नाच
नहिं नचातीं' ॥ ४४ ॥ लाचार, ब्रह्माने पांच सौ वर्षकी तप-
स्याका फल व्ययकरके पांचवाँ गधेका मुंह बनाया और उस
तिलोत्तमाको आकाशमें देखने लगा, परन्तु न तो उस तिलोत्त-
माके नृत्यको ही देखने पाया और न तप ही पूरा हुवा.
रागके वशीभूत होकर वह ब्रह्मा दोनों ही तरह नष्टभ्रष्ट
हुवा ॥ ४५–४६ ॥ इसप्रकार वह तिलोत्तमा ब्रह्माको त-
पसे रहित (भ्रष्ट) करके स्वर्गमें चली गई. सो ठीक ही है, स्त्री
समस्त रागियोंको मोहित करके ठग लेती है ॥ ४७ ॥ जब
उस नष्टबुद्धि ब्रह्माने तिलोत्तमाको नहिं देखा तो बहुत ही उ-

दास और खिसियाना होकर दर्शनार्थ आये हुये देवोंपर क्रोध करने लगा और अपने गधेके मुखसे उन देवोंको खानेके लिये तत्पर हुवा. सो उचित ही है,–'खिसियाना होनेवाला मनुष्य स्वभावसे ही हर एकपर क्रोध किया करते हैं' ॥४८॥ ॥ ४९ ॥ तत्पश्चात् वे देवता घबराकर महादेवजीके पास पहुँचे और उनसे उन सबने ब्रह्माजीके पागल होनेके सब समाचार कहे, सो ठीक ही है 'अपने दुःखको नष्ट करनेके लिये सभी जने उपाय करते हैं' ॥ ५० ॥ देवोंकी प्रार्थना सुनकर महादेवजी उसी वक्त ब्रह्माके पास पहुँचे और उन्होंने गधेका पांचवां शिर काट लिया. सो ठीक ही है,–'परके अपकार करनेवालोंका मस्तक काटा जावे तो इसमें संदेह ही क्या है,'–॥ ५१ ॥ तत्पश्चात ब्रह्माने भी अतिशय क्रोध करके महादेवजीको श्राप दी कि "तूने जो यह ब्रह्महत्या की है, इसके कारण तेरे हाथसे यह शिर कभी नहिं पड़ैगा" ॥ ५२ ॥ तब महादेवजीने लाचार होकर प्रार्थना की कि, हे साधो! बेशक मैंने ब्रह्महत्या की, परन्तु अब आप मुझपर दया करके इस श्रापसे छुटाइये तब ब्रह्माने पार्वतीके पतिसे (महादेवजीसे) कहा कि, हे शंभो! इस मेरे मस्तकको जब विष्णु भगवान् अपने रक्तसे सिंचन करेंगे तो उसी समय यह मेरा शिर तेरे हाथमेंसे गिर पड़ैगा! ॥ ५३–५४ ॥ तब महादेवजीने ब्रह्माकी आज्ञा शिरोधारणकर कपालव्रत अंगीकार किया. सो खेद है कि सर्वव्यापी प्रपंच देवोंसे भी नहिं छोड़ा जाता ॥ ५५ ॥ तत्पश्चात् उस ब्रह्महत्याको दूर करनेकेलिये महादेवजी हरिके (विष्णुके) पास गये. सो

ठीक ही है,—'अपनेको पवित्र करनेके लिये ये जगतजन किसका आश्रय नहिं करते?' ॥ ५६ ॥ इधर ब्रह्माजीने मृगोंसे भरे हुये एक वनमें प्रवेश किया. सो ठीक ही है 'तीव्रकामरूपी अग्निसे सन्तप्त पुरुष चेतनारहित होकर क्या नहिं करता?' ॥५७॥ उस वनमें एक रीछनीको ऋतुमती देखकर ब्रह्माजी उसके साथ ही रमने लगे. सो उचित ही है, कि—'कामाग्निसे पीड़ित जनोंको गधी भी अप्सरा दीखती है' ॥ ५८ ॥ उस रीछनीने गर्भ धारणकर पूरे दिन होनेपर तीन भवनमें प्रसिद्ध जांवव नामा पुत्र जना ॥५९॥ इसप्रकार जो ब्रह्मा कामार्त्त-चित्त होकर तिर्यंचनीको भी सेवन करता है वह मूढधी इस सुंदर कन्याको कैसे छोड़ैगा? ॥ ६० ॥ तथा गौतमऋषिकी वल्लभा(स्त्री)अहल्याको कामकी वेलासमान सुनकर जिससमय परस्त्रीलम्पट इन्द्र विकल होगया ॥ ६१ ॥ तब गौतम ऋषिने क्रुद्ध होकर श्राप दी तो वह इन्द्र सहस्रभग हो गया. सो ठीक ही है,—'मन्मथके आज्ञाकारी ऐसे कौन पुरुष हैं' जो दुःखको प्राप्त नहीं होते? ॥६२ ॥ जब देवोंने बहुत प्रार्थना की कि हे मुने! कृपा करो (माफ करो) तब उस अनुग्रहकारी मुनिने इन्द्रको सहस्राक्ष (हजार नेत्रवाला) बना दिया. ॥ ६३ ॥ इसप्रकार काम या मोह तथा मृत्युद्वारा पीड़ित नहीं हो, ऐसा दोषरहित देव इस लोकमें कोई भी नहिं दिखता. परन्तु एक यमराज देव है, सो वास्तवमें सत्यता और पवित्रतामें परायण, अपने विपक्षको मर्दन करनेमें धीर और समवर्ती है ॥ ६४-६५ ॥ सो उसीके पास इस कन्याको रखकर जाना चाहिये, ऐसा विचार कर उस छाया

नाम- ग्नी कन्याको यमराजके पास रखकर वह मंडप-
कौ नी स्त्रीसहित तीर्थयात्राको चला गया. सो ठीक ही
हैं. निराकुल होने पर ही धर्मकार्य्योंमें प्रवृत्ति करते
विना- ।॥ उसके चले जानेके पश्चात् यमराजने
जगत- ररूपी वृक्षके लिये पृथिवीके समान देखकर
सर्वव्यापी वना ली. क्योंकि ' दुनियांमें ऐसा कोई
त्रिलोक- र्योंमें निस्पृह हो' ॥ ६८ ॥ यमराजने
लानेमें दावा- के भयसे अपने पेटमें रख (छिपा)
दा, चक्रके द्वारा -'कुबुद्धि कामीजन अपनी प्रिय स्त्री-
. ॥ ६९ ॥ तत्पश्चात् वह यमराज
।नकाल २ कर उसके साथ वारंवार रमने
.. और रमण करनेके पश्चात् हरी जानेके भयसे फिर अपने
पेटमें रख लेने लगा ॥ ७० ॥ इसप्रकार यमराज
उसके साथ रतामृत भोगते २ अपना समय सुखसे व्यतीत
करता हुवा अपनेको इन्द्रसे भी अधिक मानने लगा ॥ ७१ ॥
यह नीति है कि, लेखनी पुस्तक और स्त्री पराये हाथ गई
हुई वापिस नहिं आती. यदि आती है तो टूटी फटी मर्दन
की हुई मिलती है ॥ ७२ ॥ एक समय पवन देवने अग्नि-
देवसे कहा कि, हे भद्र! देवोंमें तो आजकल एक यमराज
ही अपना काल सुखसे विताता है. क्योंकि उसने सुरतामृ-
तकी नदीके समान एक मनोहर स्त्री पाई है. सो उसको
दृढालिंगनकर सुखरूपी सागरमें मग्न होकर सोता है !
॥ ७३-७४ ॥ उस नितम्बिनीके दिये हुये पवित्र सुखमें
गंगाके जलसे समुद्रके समान यमराज कभी तृप्त ही नहिं

होता ॥ ७५ ॥ यह सुनकर अग्निदेवने कहा कि—उसके साथ मेरा समागम किसप्रकार हो? तब पवनदेवने कहा कि, ॥ ७६ ॥ यमराजसे रक्षा की हुई वह स्त्री देखनेको भी नहिं मिलती तो उसका मिलाप किसप्रकार हो सक्ता है? ॥७७॥ क्योंकि वह स्त्री अपनी शोभासे समस्त देवांगनाओंको जीतनेवाली है. सो यमराज रतामृत भोगनेके पश्चात् उसको अपने पेटमें रख लेता है ॥ ७८ ॥ परन्तु जिस समय यमराज नित्यकर्म करता है उससमय उसको एक पहरतक उदरसे बाहर निकालकर रखता है, सो उस समय वेशक वह अकेली ही स्पष्टतया देखनेमें आती है ॥ ७९ ॥ तव अग्निदेवने कहा कि, हे वायु, एक पहरमें तो मैं तीन लोकमेंसे किसी भी स्त्रीको ग्रहण कर सक्ता हूं, सो एकान्तमें वैठी हुईकी तो वात ही क्या है? ॥ ८० ॥ आचार्य्य कहते हैं कि, यौवनसे भूषित है अंग जिसका और कामसे व्यापित है शरीररूपी यष्टि जिसकी, ऐसी एकान्तमें वैठी हुई अकेली स्त्रीको युवा पुरुष तुरंत ही अपने वशमें कर लें तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? ॥ ८१ ॥ तीक्ष्ण कामरूपी वाणसे भिद गया है शरीर जिसका ऐसा वह अग्निदेव वायुको इसप्रकार कहकर जहांपर यमराज उस तन्वीको उदरसे निकालकर अघमर्षण (नित्यकर्म) किया करता था, वहींपर जा पहुंचा ॥ ८२ ॥ यमराजने आकर छायाको वाहर निकालकर पापरूपी मैलसे विशुद्ध होनेके लिये गंगाजीमें प्रवेश किया. उसी वक्त अग्निदेव अपना अत्यन्त मनोहर रूप वनाकर और छायाको ग्रहणकरके उसके साथ रमने लगा ॥ ८३ ॥ जिस

प्रकार हरे पत्तोंके समूहको देखकर मूर्ख बकरी उन पत्तोंको खाने लग जाती है, उसीप्रकार रक्षा नहिं की हुई निरंकुश स्त्री मनसे प्रसन्न हो अपने मन चाहे इष्ट पुरुषको ग्रहण कर लेती है. और रोकनेपर प्रायः कोप किया करती है ॥ ८४ ॥ उस अग्निदेवके साथ रमण करनेके पश्चात् छायाने कहा कि तू यहांसे शीघ्र ही चला जा; क्योंकि मेरे पति विरुद्धवृत्ति यमराजके आनेका समय हो गया है ॥ ८५ ॥ वह यदि मुझे तेरे साथ देखैगा तो गुस्से होकर मेरी नाशिका काट लेगा और तुझे भी जानसे मार डालैगा. क्योंकि–'अपनी स्त्रीके जारको देखकर कोई भी क्षमा नहिं करता' ॥ ८६ ॥ तव उस पीनस्तनसे पीड़ितअंगवाली छायाको आलिंगन देकर अग्निदेवने कहा कि, हे प्रिये ! तुझे छोड़कर मैं चला जाऊं, तो मुझे दुष्टचित्तवाला वियोगरूपी हस्ती मार डालैगा ॥ ८७ ॥ इसकारण हे प्रिये ! तेरे सन्मुख दुष्ट यमराजके हाथसे मारा जाऊं तो वहुत ही श्रेष्ठ है, परन्तु दुःखसे है अंत-जिसका ऐसी कामरूपी अग्निसे तेरे विना निरन्तर जलते रहना श्रेष्ठ नहीं ॥ ८८ ॥ इसप्रकार कहते हुये अग्निदेवको उस छायाने उसी समय निगलकर अपने पेटमें रख लिया. सो अपने प्रिय पुरुषको स्त्रीने हृदयमें रख लिया तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है ॥ ८९ ॥ तत्पश्चात् यमराज अपना नित्य कर्म करके इस वातको कुछ भी नहिं जानकर छायाको अपने पेटमें रखकर चल दिया सो उचित ही है–'स्त्रियोंका प्रपंच विद्वानोंको भी अगम्य है' ॥ ९० ॥ उधर अग्निदेव तो छाया और यमराजके पेटमें अटक गये, इधर

उनके (अग्निके) विना संसारभरमें रसोई बनाना, होम करना, प्रदीप जलाना आदि समस्त काम बंद हो गये. तब मनुष्य और देव सबके सब अग्निके विना अपना नाश समझके घबरा गये ॥ ९१ ॥ फिर लाचार होकर इन्द्रने वायुदेवसे कहा कि हे सखे ! तू सर्वत्र फिरता है और तेरी समस्त देवोंके यहाँ गति है. अग्निदेव कहां है, सो तुम ढूंढकर पता लगावो ॥ ९२ ॥ वायुने कहा कि हे देव ! मैंने अग्निदेवको सर्वत्र ढूंढ लिया, परन्तु कहीं भी पता नहिं लगा. हां एक जगह मैंने नहिं ढूंढा है, सो हे देवेश ! उस जगह भी ढूंढता हूं ॥ ९३ ॥ इसप्रकार कहकर वायुदेवने उत्तमोत्तम भोजन वनाकर समस्त देवोंको निमंत्रण किया, जब सबके सब देव आ गये, तब उसने हरएक देवके लिये तो एक एक आसन दिया, परन्तु यमराजकेलिये तीन आसन दिये ॥९४॥ जब समस्त देव वैठ गये तो अपरिमाणा है गति जिसकी ऐसे वायुदेवने हरएक देवको तो एक २ भाग परोसा परन्तु यमराजको तीन भाग (पत्तल या थालीमें) भोजन परोसा, सो ठीक ही है, प्रपंच किये विना किसीका भी कार्य्य सिद्ध नहिं होता ॥ ९५ ॥

इति श्रीअमितगतिआचार्य्यविराचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें एकादशम परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ११ ॥

अथानन्तर—जब अपने सन्मुख भोजनके तीन भाग परोसे हुये देखे तो यमराजने वायुदेवसे कहा कि—हे पवन ! तूने मेरे सामने तीन भाग क्यों रक्खे ? ॥ १ ॥ यदि मेरे

पेटमें एक स्त्री है तो दो भाग परोसने थे, तूने तीन भाग किस कारण परोसे? ॥ २ ॥ यह सुनकर पवनदेवने कहा कि—हे भद्र! अपनी मनकी प्यारी स्त्रीको पेटसे निकाल, तो अपने आप ही तीन भाग परोसनेका कारण मालूम हो जायगा ॥ ३ ॥ जब प्रेतभर्त्ताने (यमराजने) अपने पेटमेंसे छायाको निकाला तब तत्काल वायुदेवने छायासे कहा कि—हे भद्रे! अपने उदरस्थित अग्निदेवको शीघ्र ही निकाल ॥४॥ जब छायाने अपने पेटमेंसे प्रकाशमान अग्निदेवको निकाल दिया तो यह कौतुक देख समस्तदेव आश्चर्य्यान्वित हो गये. सो उचित ही है 'अदृष्टपूर्व (जो पहिले नहिं देखनेमें आई ऐसी) वस्तुके देखनेसे किसको आश्चर्य्य नहिं होता' ॥ ५ ॥ जो स्त्री कामातुर हो कर जलती हुई अग्निको निगल जाती है उस स्त्रीको कोई भी वस्तु प्राप्त करना दुर्गम व दुष्कर नहीं है ॥ ६ ॥ यमराज अग्निको देख कर बड़ा क्रोधित हुआ और दंड लेकर मारनेकेलिये तत्पर हो गया, सो नीति ही है. कि—'प्रत्यक्षमें अपनी स्त्रीके जारको देखकर ऐसा कौन है जो उसपर क्षमा कर दे' ॥ ७ ॥ यमराजको दंड लिये हुए देखकर अग्निदेव भागे. सो उचित ही है—'नीच, जार व चौरोंको धीरता कहां' ॥ ८ ॥ भागते २ थक गया तो अग्निदेव वृक्ष पाषाण वगैरहमें छिपकर बैठ गया. सो ठीक ही है 'व्यभिचारी व चौर छिपकर ही रहते हैं' ॥ ९ ॥ जो अग्नि उस समय यमराजके भयसे वृक्ष और पत्थरोंमें छिपा था, सो अभी तक बुद्धिमानोंके प्रयोग विना प्रगट नहिं होता है ॥ १० ॥ इसप्रकार कहकर मनोवेगने पूछा कि—हे विप्रो!

आपके पुराणोंमें यह कथा इसीप्रकार है कि नहीं ? ब्राह्मणोंने कहा कि, निस्सन्देह ऐसी ही कथा है। तब मनोवेगने कहा कि—हे ब्राह्मणो ! जो यमराज सबके शुभाशुभका ज्ञाता है और हमेशा शिष्टोंपर अनुग्रह और दुष्टोंपर दंड करनेवाला है उसने यदि अपने पेटमें स्थित प्रियाके पेटमें अग्निदेवको रहते हुये भी नहिं जाना, तो उसका देवपणा व अग्निका देवपणा क्यों नहीं चला गया ? ॥ ११–१२–१३ ॥ जिसप्रकार इस छोटेसे दोषसे उनका देवपणा नहिं गया, उसी प्रकार मूसोंके द्वारा मेरे मार्जारके कान काटे जानेसे अन्य जो बडे २ गुण हैं, वे कैसे जा सक्ते हैं ? ॥ १४ ॥ यह सुनकर ब्राह्मणोंने प्रशंसापूर्वक कहा कि—हे भद्र ! तुमने बहुत ठीक कहा. सो नीति ही है कि—'जो समझदार सत्पुरुष होते हैं, वे न्यायरहित पक्षका समर्थन कदापि नाहिं करते' ॥ १५ ॥ हे भद्र ! हम अपने पुराणोंका ज्यों ज्यों विचार करते हैं, त्यों त्यों उनके जीर्ण वस्त्रोंकी समान सैकड़ों खंड होते हैं, सो क्या किया जाय, उनका हम किसीप्रकार भी समर्थन नाहिं कर सक्ते ॥ १६ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंके वचन सुनकर विद्याधरपुत्र मनोवेगने कहा कि—हे विप्रो ! संसाररूपी वृक्षको अग्निके समान जो देव है, उसका स्वरूप सुनो ॥ १७ ॥ जिसका चित्त, लावण्यरूपी जलकी लहर, कामदेवके रहनेकी वस्ती, गुण और सुंदरताकी खानि, कटाक्षरूपी वाणोंके द्वारा समस्तजनोंको घायलकरनेवाली, त्रिलोकीमें सबसे श्रेष्ठ ऐसी स्त्रियोंकेद्वारा नहिं भिदता, उसी देवको मनवचनकायकी शुद्धिपूर्वक नमस्कार करो और उसीकी शरण ग्रहण करो ॥ १८–१९ ॥ भो विप्रो ! जिस कामके वशीभूत हो शंकरने

अपना पवित्र और मोक्षका कारण योग छोड़कर पार्वतीको अपने आधे अंगमें स्थापन किया और—॥ २० ॥ जिस कामदेवकी आज्ञासे सुखकी इच्छा रखनेवाला विष्णु गोपियोंके नखच्छदोंसे शोभित अपने हृदयमें लक्ष्मीको रखता हुवा तथा—॥ २१ ॥ जिसके वाणोंसे पीड़ित होकर ब्रह्माजीने तृणके समान तपश्चरणको छोड़ दिव्य तिलोत्तमाके नृत्यको देखनेके लिये चतुर्मुख वनाये तथा—॥ २२ ॥ जिसने अपने दुर्वार तीक्ष्णवाणोंसे घायलकर इन्द्रको दुष्कर्मोंका घर और सहस्रभग बना दिया तथा—॥ २३ ॥ जिस कामदेवकी आज्ञासे समस्तदोषोंको आज्ञामें चलानेवाले सबसे बलवान् यमराजने चोरी जानेके भयसे छायानामकी लड़कीको पेटमें रखकर प्रिया वनाया तथा—॥ २४ ॥ जिस कामदेवने त्रिलोकीमें रहनेवाले समस्तदेवोंमें प्रधान अग्निदेवको पत्थर और वृक्षोंमें प्रवेश करा दिया, ऐसे दुर्जय कामदेवको जिस देवने जीत लिया, उसी परमेष्ठीके प्रसादसे ही सबका कल्याण हो सक्ता है ॥ २५–२६ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंके सन्मुख परमात्माका विचार करके उस मनोवेगने उसी वागमें उपस्थित हो, अपने मित्र पवनवेगसे कहा कि—॥ २७ ॥ हे मित्र ! तूने अन्यमतावलम्बियोंके माने हुये देवोंका विशेष सुना ? विचार करनेमें चतुर हैं आशय जिनका ऐसे पुरुषोंको चाहिये कि—अपने विचारके वलसे ऐसे रागी द्वेषी कामी देवोंको छोड़ दें ॥ २८ ॥ हे मित्र ! समस्त देवोंमें अणिमा महिमादि अष्ट रिद्धियें प्रसिद्ध हैं.उनमेंसे लघिमा (नीचपना) नामकी ऋद्धि ही इन देवोंमें विशेषतर देखने-

में आती है. क्योंकि—॥ २९ ॥ ब्रह्मा तो महादेवके विवाहमें पुरोहित (विवाहकरानेवाला) बनकर गया था, सो पाणिग्रहण कराते समय पार्वतीके स्पर्शमात्रसे कामसे पीड़ित हो गया था और—॥ ३०॥ महादेवने नृत्य करते समय ऋषियोंकी कन्याओंको कष्ट दिया, जिससे वह उनऋषियोंके द्वारा शिश्नच्छेदनकी दुःसह पीड़ा भोगता हुवा और—॥३१॥ अहिल्याने इन्द्रको, छायाने यमराज और अग्निको, कुंतीने सूर्य्यको, अखंडित नीचपनेके कार्यमें प्रवर्त्ताया ॥ ३२ ॥ इसप्रकार लोकमें अनेक देव हैं परन्तु जिसने कामदेवको नष्ट कर दिया, ऐसा लोकसम्मत निर्दोष देव एक भी नहीं है ॥ ३३ ॥ हे साधु! अब जैनमतमें गधेके शिरश्छेदनका जो सच्चा इतिहास है, वह कहता हूं सो सुन—॥३४॥ जिनमतमें ११ रुद्र माने हैं. उनमेंसे अन्तका रुद्र सात्यकी नामक मुनिके अंगसे ज्येष्ठा नामकी आर्जिका (जैनसाध्वी) के गर्भसे उत्पन्न हुवा था. सो वह बड़ा होनेपर मुनिदीक्षा ग्रहण करके दुष्कर तपश्चरणके प्रभावसे अनेकप्रकारकी विद्याओंका स्वामी हो गया ॥ ३५ ॥ जिसप्रकार समुद्रमें नदियोंका मिलाप (प्रवेश) होता है, उसीप्रकार इस धीर मुनिको पांचसौ तो बड़ी २ विद्यायें और सातसौ छोटी २ विद्यायें प्राप्त हुईं ॥ ३६ ॥ सो वह ग्यारहवां रुद्र जिनमतके ग्यारह अंग चवदहपूर्वमेंसे दशमें पूर्वतकका पाठी था. उस दशमें पूर्वमें विद्याओंका (देवांगनाओंका) अपरिमाण विभव देखकर मुनिके व्रतसे चलायमान हो गया. सो ठीक ही है,—"अनेकप्रकारके भोगाभिलाष करनेवाली स्त्रियोंके द्वारा ऐसा कौन पुरुष है जो व्रतमें

चलायमान न हो ? ॥३७॥ तब उस मुनिने एक जगह विद्या-धरोंकी आठ कन्याओंको देखकर उसी वक्त मुनिपनेको छोड़ उन कन्याओंके पिताओंसे याचना की, और उन्होंने आठों कन्या इस रुद्रको परणा दीं. परन्तु–॥ ३८ ॥ उस रुद्रके साथ रतिकर्मकरनेमें असमर्थ हो, वे आठों ही विद्याधरकी पुत्रियें मर गई, सो नीतिही है कि–'जो विपरीत कार्य्य (वे जोड़के विवाहवगैरह) होते हैं, वे सब सत्यानाशकेलिये ही होते हैं' ॥ ३९ ॥ तत्पश्चात् उस महादेवने (रुद्रने) अपनी विद्याओं-के द्वारा पर्वतराजकी बेटी पार्वतीको अपने रतिप्रभावकी सहनेवाली समझकर उसके साथ विवाह किया. सो ठीक ही है, जो मनवांछित कार्य्य करनेवाले हैं, वे सब योग्य उपायोंमें ही यत्नकरके अपना इच्छित कार्य्य सिद्ध करते हैं ॥४०॥ एक दिन वह रुद्र पार्वतीके साथ रमणकरके त्रिशूलविद्याको ग्रहण करता था, सो परभर्तारसे पतिव्रताके समान शीघ्र ही वह त्रिशूलविद्या नष्ट हो गई ॥ ४१ ॥ उस त्रिशूलवि-द्याके नष्ट होनेपर स्वाभिमानमें तत्पर वह रुद्र ब्राह्मणी नामकी एक दूसरी विद्याको साधने लगा ॥ ४२ ॥ सो उस ब्रा-ह्मणीविद्याकी प्रतिमा बनाकर उसके सन्मुख मंत्रका जाप करने लगा. तब ब्राह्मणी विद्याने इसको ध्यानसे डिगानेके-लिये विक्रिया करना प्रारंभ किया ॥ ४३ ॥ सो उसने आकाशमें बाजे बजाना गीत गाना नृत्य करना आदि विघ्न शुरू किये. जब यह रुद्र ऊपरको देखने लगा तो उसने एक सर्वो-त्तम स्त्रीको देखा ॥ ४४ ॥ जब उस रुद्रने नीची दृष्टिक-रके उस प्रतिमाको देखा तो उस प्रतिमाकी जगहपर एक

दिव्य चतुर्मुखी मनुष्यको देखा. तथा—॥ ४५ ॥ उसके शिरपर एक गधेका मुख वढ़ता हुवा देखा, सो उस रुद्रने उस वढ़ते हुये शिरको उदय होते हुये कमल-पत्रके समान उसी वक्त काट लिया. परन्तु वह शिर सुख-सौभाग्यादिको नष्टकरनेवाले पापके समान उसके हाथमें लगा ही रह गया. नीचे नहिं गिरा ॥ ४६—४७ ॥ इसप्रकार वह ब्राह्मणी विद्या उसकी विद्यासाधनेरूप जपादिक्रियाको व्यर्थ (नष्ट) करके अपनी विक्रियाको संकोचकर चली गई. सो ठीक ही है—'निरर्थक (निकम्मे) पुरुषके निकट कोई भी स्त्री नहिं रहती' ॥ ४८ ॥ तत्पश्चात् उस रुद्रने रात्रिके समय वर्द्धमान भगवानको श्मशानभूमिमें पद्मासनसे ध्याना-रूढ देखकर उनको विद्यारूपी मनुष्य समझ वड़ा उपद्रव किया ॥ ४९ ॥ जब प्रातःकाल होनेपर मालूम हुवा कि ये तो वर्द्धमान भगवान् हैं, तब उसने उदास होकर नम-स्कार पूर्वक वड़ा पश्चात्ताप किया और शीघ्र ही उनके चरणोंका स्पर्शन किया ॥ ५० ॥ सो जिनेन्द्रभगवानके स्पर्शनमात्रसे ही उसके हाथमेंसे विनयवानके मनसे पापके समान वह गधेका शिर गिर पड़ा ॥ ५१ ॥ हे, मित्र ! खर-मस्तकके कटनेका तो यह प्रक्रम (सच्चा इतिहास) है, परन्तु मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे अंधे हुये पुरुषोंने और ही प्रका-रसे प्रसिद्धकरके जगत्‌के भोले भाले जीवोंको बहका दिया है ॥ ५२ ॥ हे मित्र ! तुझे मैं फिर भी बड़ा कौतुक दिखाता हूं, ऐसा कहकर मनोवेगने नग्नमुद्रा युक्त जैनके मुनिका रूप धा-रण किया और पवनवेगको साथ लेकर उस चतुर धर्मात्मा

मनोवेगने पश्चिमकी तरफसे उस पुष्पनगरमें (पटनेमें) प्रवेश किया और-॥ ५३-५४ ॥ तीसरी वादशालामें जाकर वह ब्राह्मणोंके मनमें वादीके आनेकी सूचना करनेके लिये वाद सूचक भेरीको बजाकर सोनेके सिंहासनपर जा बैठा ॥५५॥ जिसप्रकार मेघकी गर्जना सुनकर अपनी गुफामेंसे केसरी-सिंह निकलते हैं, उसीप्रकार उस भेरीके शब्दको सुनते-ही पक्षपातमें तत्पर सबके सब ब्राह्मण पंडित अपने २ घरसे निकल पड़े ॥ ५६ ॥ उन ब्राह्मणोंने आकर पूछा कि-हे भद्र! तुम हमारे साथ कौनसा वाद करना चाहते हो? तब मनो-वेगने कहा कि-हे विप्रो! 'वाद' किस चीजको कहते हैं, सो मैं नहिं जानता ॥ ५७ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि-जब वादका नाम ही नहिं जानता तो वादसूचक भेरी किसलिये बजाई? तब मनोवेगने कहा कि-हे ब्राह्मणो! मैंने यों ही कौतुकसे बजा दी और-॥ ५८ ॥ जन्मसे आजतक मैंने ऐसा मनोहर आसन नहिं देखा था, इसकारण मैं इसपर बैठ गया. न कि वादके गर्वसे. इसलिये क्रोध न करो, लो मैं उतर जाता हूं ॥ ५९ ॥ तत्पश्चात् ब्राह्मणोंने कहा कि-तेरा गुरु कौन है सो कह मनोवेगने कहा कि-मेरा गुरु कोई भी नहीं है. मैंने अपने आप ही तपग्रहण कर लिया है ॥ ६० ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि-हे सुबुद्धे! तुमने विनागुरुके अपने आप ही तपग्रहण किया सो इसका क्या कारण है? ॥ ६१ ॥ तब मनोवेगने कहा कि-हे द्विजो! मैं इसका कारण कहते डरता हूं. परन्तु तो भी मैं एकबात आपको कहता हूं सो सुनो॥६२॥

चम्पानगरीमें गुरुवर्मराजाके मंत्री हरि नामक द्विजने एक-

दिन पानीमें एक शिला तरती हुई देखी, उस समय उसके पास दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं था ॥ ६३ ॥ उसने राजसभामें आकर यह प्रत्यक्ष देखा हुवा आश्चर्य राजाके सन्मुख प्रगट किया तो राजाने इसपर कुछ भी विश्वास नहिं किया. किन्तु उल्टा क्रोधित होकर इस असत्य कथनके अपराधमें मंत्रीको बँधवा दिया और कहा कि—इस ब्राह्मणके अवश्य ही कोई पिशाच (भूत) लग गया है. यदि ऐसा नहिं होता तो यह ऐसी असंभव बात कदापि नहिं कहता ॥ ६४–६५ ॥ तत्पश्चात् उस मंत्रीने कहा कि—हे देव ! मैंने यह बात झूठ ही कह दी थी, सो अपराध क्षमा करो. इसप्रकार प्रार्थना करनेपर राजाने मंत्रीको छोड दिया ॥ ६६ ॥ फिर मंत्रीने इसका वदला लेनेकी इच्छासे अनेक वंदरोंको वाजा वजाना और नाचना गाना सिखाकर तयार किये फिर—॥ ६७ ॥ एक दिन वनमें राजाको अकेला देख उन वंदरोंका मनोहर संगीत कराया जिसको देखकर राजा मोहित हो गया ॥ ६८ ॥ जब राजाने तुरंत ही अपने मंत्री और भट्टोंको वह संगीत दिखानेकेलिये वुलाया कि, इतनेमें ही वे सब वंदर अपना संगीत वंद करके इधर उधर भाग गये ॥ ६९ ॥ तव मंत्रीने कहा कि—हे भट्टगणो ! राजाको अवश्य ही कोई भूत लग गया है, सो इनको वांध लो, योद्धावोंने उसी वक्त राजाको वांध लिया. तत्पश्चात् उस तुष्टचित्त मंत्रीनें हँस कर राजाको छोड़ दिया और कहा कि—हे राजन् जिसप्रकार आपने वनमें वंदरोंका नृत्य देखा, उसी प्रकार मैंने भी जलमें

तरती हुई शिला देखी थी ॥ ७०-७१-७२ ॥ राजा और मंत्रीके वृत्तान्तको जाननेवाले विद्वानोंको चाहिये कि-प्रत्यक्ष देखा हुवा भी अश्रद्धेय वचन कदापि नहिं कहैं ॥७३॥ इसी-प्रकार हे ब्राह्मणो ! साक्षीविना मुझ अकेलेके कहेहुये वाक्य-का आप विश्वास नहिं करैंगे. इसकारण मैं पूछने पर भी अपना हाल नहिं कह सक्ता ॥ ७४ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि-हे भद्र ! क्या हम ऐसे मूर्ख हैं ? जो युक्तिसे घटते हुये वाक्यको भी नहिं पहचाने ? ॥ ७५ ॥ तब मनोवेगने कहा कि-यदि आप सत्यासत्यका विचार करनेवाले हैं तो मैं स्पष्टतया कहता हूं सो एक चित्त होकर सुनो ॥ ७६ ॥

श्रीपुरमें मुनिदत्तनामका श्रावक मेरा पिता है. उसने मुझे एक ऋषीके पास पढनेकेलिये भेज दिया ॥ ७७ ॥ एक दिन उस ऋषीने अपना कमंडलु देकर मुझे जल लानेके लिये भेजा. मैं मार्गमें लड़कोंके साथ बहुत देरतक खेलनेमें लग गया ॥ ७८ ॥ तब कई विद्यार्थियोंने आकर कहा कि-तेरेपर गुरुजी बड़े क्रोधित होगये है, सो हे मित्र! भाग जा नहीं तो गुरुजी आकर तुझे बहुत मारैंगे ॥ ७९ ॥ तब मैंने अन्यनगरोंमें भी पढानेवाले साधु अनेक हैं, उनसे पढ़-लूंगा, ऐसा विचारकर मैं वहांसे भागाहुवा दूसरे नगरको चल दिया ॥८०॥ तत्पश्चात् एक नगरके निकट, पहुँचा तो जलके निर्झरने सहित चलतेहुये पर्वतकी समान मदरूपी जलसे पृथिवीको सींचते हुये एक बहुत बडे हाथीको, अपने सन्मुख आता हुवा देखा ॥ ८१ ॥ सो शरीरसहित अनि-वार्य्य मृत्युकी समान तथा मुझे देख क्रोधित होकर महा-

वतके अंकुशको न माननेवाला वह महाभयंकर हाथी पूंछ और कानोंको चलायमान करता हुवा अपना विस्तीर्ण सूंड उठाकर मेरे पीछे भागने लगा ॥ ८२ ॥ तत्पश्चात् कोई शरण न पाकर भागनेमें असमर्थ हो मैंने वह कमंडलु तो भिंडीके एक वृक्षपर रख दिया और मारे डरके मैं कांपने लगा ॥ ८३ ॥ दैवयोगसे उसी समय मेरे चित्तमें एक बुद्धि उपजी कि—मैं उस हाथीके भयसे झटपट उस कमंडलुकी नाल (टोंटी) से कमंडलुमें प्रवेश कर छिप गया और 'इस कष्टसे मैं मुक्त हो गया' इस प्रकार क्षणभर प्रसन्नचित्त हो विचार कर रहा था कि—इतनेमें ही—॥ ८४॥ वह विरुद्धचित्त गजराज भी शीघ्र ही उस कमंडलुमें प्रवेश करके क्रोधित हो मेरे रोते हुयेके वस्त्र खैंचकर अपनी सूंडसे मेरी धोतीको फाड़ने लगा ॥ ८६ ॥ तत्पश्चात् उसे वस्त्रके फाड़नेमें लगा हुवा देखा मैं तो व्याकुलहोतासे नंगा होकर शीघ्र ही कमंडलुके ऊर्ध्वभागसे (मुखके छिद्रसे) बाहर निकल आया. सो ठीक ही है,—'जीते रहते कोई न कोई बचनेका उपाय निकल ही आता है' ॥ ८६ ॥ तत्पश्चात् वह हाथी भी उसी रस्तेसे निकल आया परन्तु उस कमंडलुके मुखमें हाथीकी पूंछका एक वाल अटक गया, जिसको निकालनेमें असमर्थ होकर वह हाथी दुःखित व विपण्णचित्त हो वहीं पर गिर पड़ा ॥८७॥ उस हाथीको जमीनपर पड़ा हुवा देखकर मैंने कहा कि—रे दुर्मते! रे शत्रु! तू अब यहीं पर मर, इसप्रकार कहकर मैं तो भय और कांपनेसे रहित प्रसन्नचित्त होकर निकटके नगरमें पहुंचा ॥ ८८ ॥ उस नगरमें मैंने एक

अतिशय मनोहर जिनमंदिर देखा. तत्काल ही उस मंदिरमें जाकर जिनेन्द्रभगवानके दर्शन करके मार्गके परिश्रमसे थका हुआ नंगा ही जमीनपर शयन कर रात्रि विताई ॥ ८९ ॥ मुझे पहरनेको कपड़ा कौन देगा ? और नग्न शरीर रहते मांग ही कैसें सक्ता हूं ? इसकारण अपने कुल आम्नायसे चला आया. तपश्चरण करना ही श्रेष्ठ है, इसप्रकार वहुतसमयतक विचार करके मैं वैसाका वैसा ही दिगम्बर मुनि हो गया ॥९०॥ तत्पश्चात् अनेक पुर नगर ग्रामोंमें सैर करता करता आज आपके इस विद्वज्जनोंसे भरेहुये पत्तनमें आ निकला ॥९१॥ इसप्रकार मैंने अपने आप ही व्रत ग्रहणकरनेका कारण संक्षेपमें ही आपको कह सुनाया. विद्याधरके ये वचन सुनते ही वे सबके सब ब्राह्मण हँसीसे विकसित मुख हो बोले ॥९२॥ हे-दुर्मते ! हमने असत्य भाषण करनेमें चतुर अनेकप्रकारके मनुष्य देखे हैं परन्तु तेरी समान असत्य कहनेवाला कोई भी नहिं देखा, जो मुनिव्रत धारण करके भी झूंट बोलता है ? ॥९३॥ भिंडीके वृक्षकी शाखापर (डाहलीपर) कमंडलुका रखा जाना और उसमें हाथीका प्रवेश करना, फिरना और निकलना आजतक इस तीनलोकमें क्या किसीने भी देखा या सुना है ? ॥९४॥ हे दुर्मते ? कदाचित् अग्निमें जल, शिलापर कमल, गधेके सींग, सूर्य्यमें अन्धकार और अचलपर्वतमें चलपना हो जाय परन्तु तेरे वचनकी सत्यता तो कदापि नहिं हो सक्ती ॥ ९५ ॥ यह सुनकर विद्याधरने कहा कि—हे ब्राह्मणो! वड़ा आश्चर्य है कि—ऐसे असत्यभाषी केवल हम ही हैं ? तुमारे मतमें ऐसे २ अनिवार्य्य असत्य वचन नहीं हैं? ॥९६॥

इस लोकमें प्रायः सब जने परके ही दोष देखते हैं अथवा अपने असत्यमतकी पोषणा करनेवाले ही दीखते हैं किन्तु परके गुणोंकी शुद्धिको और अमित ज्ञानके धारक पुरुषोंके विचारको विस्तार करनेवाला पक्षपातरहित कोई विरला ही होता है ॥ ९७ ॥

इति श्रीअमितगतिआचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें द्वादशमा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १२ ॥

अथानंतर सूत्रकंठोंने (ब्राह्मणोंने) कहा कि–हे भद्र ! यदि तूने ऐसी असंभव बात हमारे वेद या पुराणोंमें देखी हो तो कह ॥ १ ॥ यदि पुराणोंमें ऐसी असंभवता निकल आवेगी तो हम पुराणोंका कथन कदापि ग्रहण नहिं करेंगे क्योंकि न्यायनिपुण पुरुष कहीं भी न्यायरहित बचनको ग्रहण नहिं करते ॥ २ ॥ यह सुनकर ऋषीरूपके धारक मनोवेगने कहा कि–हे ब्राह्मणो ! वेशक मैं जानता हूं और कहूंगा परन्तु कहते हुये डरता हूं. क्योंकि जब–मैंने अपना वृत्तान्त कहा, तब तो तुम रुष्ट हो गये और तुमारे वेदपुराणोंके विषयमें कहूंगा तो न मालूम तुम क्या कर बैठो ? ॥३–४॥ ब्राह्मणोंने कहा कि–तुम निर्भय होकर कहो. यदि तुमारे वचनोंकी सदृश कहनेवाला कोई शास्त्र होगा तो हम उस शास्त्रको अवश्य ही छोड़ देंगे ॥ ५ ॥ तब मनोवेगने कहा कि–यादि तुम विचारवान हो तो लो, मैं कहता हूं, एक चित्त होकर सुनो॥६॥

एक समय युधिष्ठिरने सभामें कहा था कि–कोई ऐसा पुरुष है जो पातालमेंसे फणीन्द्रको ले आवे ? ॥ ७ ॥ तब

अर्जुनने कहा कि—हे देव ! आपकी आज्ञा हो तो पातालमें जाकर सप्त ऋषीसहित फणीश्वरको मैं ला सक्ता हूं ॥ ८॥ तत्पश्चात् अर्जुनने गांडीव धनुषके द्वारा तीक्षणमुखवाले शरोंसे कामसे वियोगिनी स्त्रीकी समान पृथिवीको भेदकर छिद्र किया ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् रसातलमें जाकर दश करोड़ सेना सहित शेषनाग और सप्त ऋषियोंको ले आया ॥ १० ॥ मनोवेगने कहा कि—क्यों विप्रो ! आपके शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि नहीं ? तब ब्राह्मणोंने कहा कि—बेशक ऐसा ही लिखा है ॥ ११ ॥ तब मनोवेगने कहा कि—जब बाणकेद्वारा किये हुये सूक्ष्मछिद्रसे दश करोड़ सेनासहित शेषनाग आता है तो हे विप्रो ! कमंडलुके छिद्रमेंसे हस्ती कैसें नहिं निकलैगा ? सो पक्षपात छोड़कर शीघ्र ही कहो ? ॥ १२–१३ ॥ आपका शास्त्र तो सच्चा और मेरा वचन झूंटा है सो इसमें सिवाय पक्षपातके दूसरा कोई कारण प्रतीत नहिं होता ॥ १४ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि—कमंडलुके छिद्रमेंसे हाथीका और तेरा निकलना तो हमने शेषनागके आने जानेकी समान प्रमाण किया परन्तु इतना बड़ा हाथी उस कमंडलुमें कैसें समाया ? तथा हाथीके भारसे भिंडीका वृक्ष कैसें नहिं टूटा ? तथा कमंडलुके मुखसे जब हाथीका पुष्ट शरीर निकल गया तो पूंछका बाल कैसें अटक रहा ? सो हे भद्र ! यह वचन तो तेरा हम कदापि नहिं मान सक्के ? तब मनोवेगने कहा कि—यह वचन मेरा प्रत्यक्षतया सत्य है क्योंकि—आपके आगममें सुना गया है कि—एक वार अंगुष्ठके बराबर अगस्त्य मुनिने समुद्रका समस्त जल तीन चुळूमें भरकर पी लिया था जब-

॥ १५-१६-१७-१८ ॥ अगस्त्य मुनिके उदरमें समस्त समुद्रका जल समागया तो हे विप्रो ! मेरे कमंडलुमें हाथी कैसें नहिं समावे ? ॥ १९ ॥ तथा एक समय यह समस्त सृष्टि समुद्रमें वह कर नष्ट हो गई, ऐसा समझकर ब्रह्माजी व्याकुल चित हो इधर उधर ढूंढ़ते फिरे ॥ २० ॥ तब अलसीके पेड़-की शाखापर सरसों बराबर कमंडलुको रखकर उसके नीचें बैठेहुये अगस्त्यमुनिको देखा ॥ २१ ॥ अगस्त्यमुनिने कहा कि हे विरंचि ! तू व्याकुलचित्त होकर क्यों भ्रमण करता फिरता है ? ॥ २२ ॥ तब ब्रह्माजीने कहा कि-हे साधो ! मेरी सृष्टि कहीं पर भी भाग गई, अतः मैं पागलसा होकर उसको ढूंढता हुवा फिरता हूं ॥ २३ ॥ अगस्त्यमुनिने कहा कि-हे विधे ! तू मेरे कमंडलुमें प्रवेशकरके देख, अन्यत्र कहीं मत जा ॥ २४॥ तब ब्रह्माने कमंडलुमें प्रवेशकर देखा तो वहांपर एक वटका वृक्ष है. उसके पत्तेपर पेट फुलाये हुये श्रीपति (विष्णुभगवान) सो रहे हैं ॥ २५ ॥ तब ब्रह्माने विष्णुभगवानको कहा कि-हे कमलापते ! निश्चल शरीर हो पेट फुलाये कैसें सो रहे हो ! ॥ २६ ॥ तब विष्णुने कहा कि-तेरी सृष्टि एक समुद्रमें वही जाती थी, सो मैंने अपने पेटमें रख ली है ॥ २७ ॥ सो शाखावोंकर व्याप्त महान् वटवृक्षके विस्तीर्णपत्रपर सोतेहुये विष्णुका पेट इसीकारणसे फूल गया दीखै है ऐसा विचार कर ब्रह्माने कहा कि-हे श्रीमते ! तुमने वहुत अच्छा किया जो प्रलयमें नष्ट होती हुई पृथिवीकी रक्षा की. परंतु-॥२८॥ ॥२९ ॥ हे श्रीपते ! उस सृष्टिके देखनेको मेरा चित्त वड़ा ही उत्कंठित हो रहा है. सो ठीक ही है,-वालवच्चोंका

नहिं अवके? ॥ ३९ ॥ जव समस्तसृष्टिसहित कमंडलुके भारसे अलसीके वृक्षकी शाखा नहिं टूटी तो एक हस्तीके भारसे मेरा भिंडीका वृक्ष कैसें टूट सक्ता है ॥ ४० ॥ जव अगस्त्यके सरसों वरावर कमंडलुमें समस्त सृष्टि समा- गई तो हे ब्राह्मणो ? मेरे वडे कमंडलुमे मुझसहित हस्ती कैसैं नहिं समावैगा ? ॥ ४१ ॥ कुछ विचार तो करो कि–विष्णुने जगतको पेटमें रखकर वह विना जगतके कहां वैठा ? और अगस्त्यमुनि ही कहांपर वैठा था ? और अल- सीका वृक्ष ही काहेपर रहा ? और ब्रह्माजी पृथिवीके विना ही सृष्टिको ढूंढ़ते हुये कहां फिरे ? ॥ ४२ ॥ वड़ा आश्चर्य है कि–पृथिवीके रहते भिंडीके वृक्षपर हाथी सहित मेरे कमं- डलुका रहना तो असत्य और आपका वे शिरपांवका कथन सत्य, यह कैसा न्याय है ? ॥ ४३ ॥ जो ब्रह्मा सर्वज्ञ है व्यापक है चराचर पदार्थोंको जाननेवाला है तो ऐसा ब्रह्मा 'सृष्टि कहां है' सो कैसे नहिं जानी, जो ढूंढता फिरा ?॥४४॥ जो ब्रह्मा शीघ्र ही नरकसे प्राणियोंको खैंचकर ला सक्ता ? है, वह ब्रह्मा अपने वृषणके केशको कैसें नहिं छुटा सका ?॥४५॥ जो विष्णु समस्त पृथिवीको प्रलय होता जानकर रक्षा करता है, उसने सीताके हरणको कैसे नहिं जाना ? और क्यों नहीं रक्षा करी ? ॥ ४६ ॥ जो लक्ष्मण समस्त जगतको मोहित कर सक्ता है, वह श्रीपति लक्ष्मण इन्द्रजीतकेद्वारा मोहित होकर नागपासमें कैसे बांधा गया ? ॥ ४७ ॥ जिस विष्णुके स्मरणमात्रसे समस्त जीवोंकी आपदा नष्ट होना मा- नते हो, ऐसे विष्णुभगवानको सीताका वियोग होना वगैरह

दुःख कैसे प्राप्त हुवा ? और जो अपनी आपदा ही दूर नहिं कर सक्ता, वह दूसरोंकी आपदा किसप्रकार दूर कर सक्ता है ? ॥ ४८ ॥ जिस रामचन्द्रने नारदको अपने दशजन्मकी वार्ता कही, वह राम फणिपतिसे अपनी कान्ता सीताका हाल क्यों पूछै ? कि—॥४९॥ "हे फणिराज ! जिसके कमलसमान हाथपांव और मुख था. रूपलावण्यकी नदी गुणोंकी खानि ऐसी मेरी स्त्री तुमने कहीं देखी ?" ॥५०॥ जो लोग अनादिकालसे मिथ्यात्वरूपी हवासे टेढे किये गये हैं, उनको सैंकड़ों जन्ममें भी सरल करनेको कौन समर्थ है ? ॥ ५१ ॥ क्षुधा १ तृषा २ भय ३ द्वेष ४ राग ५ मोह ६ मद (गर्व) ७ रोग ८ चिंता ९ जन्म १० जरा ११ मृत्यु १२ विषाद १३ विस्मय १४ रति १५ स्वेद १६ खेद १७ निद्रा १८ ये अठारह दोष सर्वसाधारणके मुख्यतया दुःखके कारण हैं. सो ही भिन्न२कहते हैं ॥५२–५३॥ क्षुधारूपी अग्निसे तप्तायमान होकर मनुष्यका शरीर तुरंत ही सूख जाता है. तथा पांचों इन्द्रियें भी अपने २ विषयोंमें प्रवृत्ति नहिं करती और—॥५४॥ तृष्णासे पीड़ित होनेवालेका विलास विभ्रम (कटाक्ष) हास्य संभ्रम (विनय) कौतुक आदि समस्त शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ५५ ॥ पवनसे हणे हुवे सूखे पत्रोंकी समान भयसे समस्त शरीर कम्पित होकर वचनशक्ति नष्ट हो जाती है और समस्त विषय विपरीत दीखते हैं और—॥ ५६ ॥ जो पुरुष द्वेषी है, वह विना कारण ही सबके दोषोंको ग्रहण करता है. और विना ही कारणके रुष्ट हो जाता है तब वह नष्टबुद्धि क्रोधी हो जाता है और किसीकी भी नहिं

मानता ॥ ५७ ॥ जो नीच कामातुर होता है, वह पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त हो अन्य प्राणीको पीड़ा करता है तथा युक्त अयुक्तको कुछ भी नहिं देखता ॥ ५८ ॥ जिनके पीछे मोहरूपी पिशाच लग जाता है, वह पुरुष मेरी स्त्री, मेरी पुत्री, मेरा धन, मेरा घर और बांधव भी मेरे हैं,इसप्रकार करता हुवा मोहित (अज्ञान) हो जाता है ॥५९॥ जो पुरुष मदसहित है, वह दुराचारी, ज्ञान (विद्या) जाति कुल ऐश्वर्ह तप रूप वल आदिकके गर्वसे सवका अनादर करने लग जाता है ॥६०॥ जो मनुष्य वातपित्तकफजनित रोगरूपी अग्निसे तप्तायमान होता है, वह शरीरके द्वारा पराधीन होकर कदापि सुखको प्राप्त नहिं होता ॥ ६१ ॥ जो नर चिंतातुर होता है, वह मित्र कैसे होगा, धन कैसे होगा, पुत्र कैसें होंगें, प्रिया कैसें होगी, मेरी प्रसिद्धता कैसें होगी, अमुकसे प्रीति कैसें होगी, इसप्रकार अहोरात्र आर्त्तध्यानमें मग्न हो दुःखी ही रहता है ॥ ६२ ॥ नरकसे भी अधिक है असाताकर्मका उदय जिसमें ऐसे कृमिकुलसहित गर्भमें प्राणी जन वारंबार जन्म लेकर दुःख भोगते हैं ॥ ६३ ॥ वुढापेमें अपना शरीर ही वशमें नहीं रहता तो अन्यकुटुंवी जन तो उस चेतनारहित बुढ्ढेके वशमें कैसे होंगे ? ॥ ६४ ॥ जिसका नाम सुनते ही चित्तमें कॅपकॅंपी छुटती है, ऐसा मृत्यु साक्षात् आनेपर किसको भय वा दुःख नहिं होता ? ॥ ६५ ॥ उपसर्ग महारोग पुत्र मित्र और धनके क्षय होनेपर अल्पज्ञ जीवोंके ही प्राणहारी विषाद होता है ॥ ६६ ॥ अपने पास होना असंभव है, ऐसी परकी सम्पत्तिको देखनेसे ज्ञानशून्य

पुरुषोंके दुःखदायक आश्चर्य्य होता है ॥ ६७ ॥ समस्त अशु-
चियोंका घर त्यागने योग्य ग्लानिकारक कुत्सित शरीरमें
कुत्तोंकी समान नीचपुरुष ही रत होते हैं ॥ ६८ ॥ व्यापार
करनेसे देहको नष्ट करनेवाला, व विकल्प करनेवाला खेद
(कष्ट) बल रहित जीवोंके होता है ॥ ६९ ॥ जिसप्रकार
अग्निसे घृतका घड़ा पिघल जाता है, उसीप्रकार व्यापार
सम्बन्धी असह्य परिश्रमके कारण शीघ्र ही मनुष्यका शरीर
खेदमयी हो जाता है ॥ ७० ॥ जो पुरुष निद्राके वशीभूत
होता है, वह मदिरासे उन्मत्तकी तरहँ समस्त व्यापाररहित हो
अपने हिताहितको नहिं जानता ॥७१॥ इसप्रकार अठारह
दोष महा दुःखके कारण हैं सो महादेव तो कपालरोगसे
दुःखी है. विष्णुके शिरोरोग, सूर्य्यको कुष्टी (कोढी) और
अग्निदेवको पाण्डुरोगी कहा है ॥ ७२ ॥ तथा विष्णु निद्रासे
व्याप्त है. अग्नि क्षुधासे, शंकर रतिसे और ब्रह्मा रागसे
व्याप्त है ॥ ७३ ॥ स्त्रीका होना तो रागको प्रगट करता है,
वैरीको मारना द्वेषको प्रगट करता है. अपने विघ्नका न
जानना अज्ञानपनेको सूचन करता है, और आयुधका
रखना सो भयको प्रगट करता है ॥ ७४ ॥ जो ब्रह्मा विष्णु
महादेवादि इन दोषोंकेद्वारा पीडित किये जाते हैं. वे दूसरोंको
किसप्रकार दुःखोंसे छुटा सक्ते हैं? क्योंकि—हत्तियोंको
मारनेवाले सिंहोंको हिरनोंके मारनेमें कुछ भी परिश्रम नहीं
है. किन्तु जो हिरणोंको ही मारनेमें असमर्थ है. वे भलाँ
हस्तियोंका क्षय कैसे कर सक्ते हैं? ॥ ७५ ॥ जिसप्रकार
रूपी पुद्गलमें स्पर्शरसगंधादिक गुण नियमसे पाये जाते हैं,

उसीप्रकार रागी पुरुषमें क्षुधादिक अष्टादश दोष भी अवश्य होते हैं ॥ ७६ ॥ इसके सिवाय आपके पुराणोंमें ब्रह्मा विष्णु महेशको एकमूर्त्ति ही कहा है. यदि ऐसा है तो ये तीनों परस्पर मस्तक छेदनादि क्रिया कैसे करते हैं? ॥७७॥ इसकारण अंधकारके समूहको सूर्य्यकी समान जिस देवने उपर्युक्त अठारह दोषोंको नष्ट कर दिया, वही समस्त देवों· का अधिपति संसारी जीवोंके पापोंको नष्टकरनेमें समर्थ है ॥ ७८ ॥ तथा और भी सुनो, तुमारे पुराणोंमें कहा है कि- ब्रह्माजीने जलके भीतर अपना वीर्य्यक्षेपण किया. उससे एक बुदबुदा उठकर उससे एक जगदंड (जगतको पैदा करनेवाला एक अंडा) पैदा हुवा ॥ ७९ ॥ उस अंडेका दो खंड करनेपर तीनलोककी (सृष्टिकी) उत्पत्ति हो गई. सो यदि ऐसा आपके आगममें (शास्त्रोंमें) कहा है तो यह बताइये कि- सृष्टि होनेसे पहिले जल किसके उपरि था? ॥ ८० ॥ नदी पर्वत पृथिवी वृक्षादिकोंकी उत्पत्तिके उपादान कारणोंके अभावस्वरूप आकाशमें पृथिवी नदीपर्वतादिक पदार्थोंकी उत्पत्तिकारक सामग्री कहांपर मिली? ॥ ८१ ॥ क्योंकि जिस आकाशमें (सृष्टिसे पहिले) एक शरीरको उत्पन्न करनेकी सामग्रीका मिलना भी दुर्लभ है, उसमें तीनलो· कके कारणभूत मूर्त्तिक पुद्गल द्रव्यको प्राप्ति किसप्रकार हो सक्ती है? ॥ ८२ ॥ शरीररहित ब्रह्माने सृष्टिको किस प्रकार वनाया? क्योंकि जो स्वयं शरीररहित (अमूर्त्तीक) है, वह अन्य शरीरको (मूर्त्तिक पदार्थको) कदापि नहिं वना सक्ता ॥ ८३ ॥ दूसरे सृष्टिको उत्पन्न करके वही ब्रह्मा

करता है तो उसको जो लोककी हत्याका (अपनी सं-
के मारनेका) महापाप होता है, वह किसप्रकार दूर
ा जा सक्ता है ? ॥ ८४ ॥ जो परमात्मा (ब्रह्मा) कृत-
य, शुद्धार्त्ति, नित्य, अमुर्त्तीक, सर्वज्ञ है तो उसको सृष्टि
चनेसे क्या लाभ है ? ॥ ८५ ॥ जो सृष्टि, विनाश करने
ोग्य है तो उसका उत्पन्न करना ही व्यर्थ है. क्योंकि पुनः
ुनः विनाशकरके विनाशनीय जगतके उत्पन्न करनेमें कोई
फल नहीं है ॥ ८६ ॥ इसप्रकार तुमारे समस्त पुराण पूर्वापर
विरोधसे भरे हुये है. सो हे विभो ! न्यायनिष्ठ विद्वज्जन
उनपर कैसे विश्वास करते हैं ॥ ८७ ॥ इसप्रकार मनोवेगके
कहनेपर ब्राह्मणोंको कोई उत्तर नहिं आया, तब वह मनो-
वेग वहांसे निकलकर बागमें गया और अपने मित्र पवन-
वेगसे कहने लगा कि—॥८८॥ हे मित्र ! तूने देवोंका विशेष
तथा पुराणोंका अर्थ सुना कि—कैसे हैं ? जो विचारवान् हैं,
उनको तो इन पुराणों व देवोंमें कुछ भी सार नहिं दीखता
॥८९॥ ऐसा कौन पुरुष है जो नारायण चतुर्भुज ब्रह्माको
चतुर्मुख व महादेवको त्रिनेत्री विश्वास करे ? या प्रतिपादन
करे ? ॥ ९० ॥ जगतमें सबके एक मुख दो हाथ और दो
नेत्र ही दीखते हैं. परन्तु मिथ्यात्वसे आकुलित लोक कुछके
कुछ बक देते हैं ॥९१॥ हे मित्र ! यह लोक अनादिनिधन
आकाशमें स्थिर और अकृतिम है. आकाशकी समान इसका
भी कोई कर्ता हर्ता नहीं है ॥ ९२ ॥ इसलोकमें अपने २
कर्मोंसे प्रेरे हुये प्राणीमात्र सदा सर्वदा पवनसे सूके पत्तोंकी
सदृश सुखदुख भोगते हुये नरकादिक चारों गतियोंमें परि-

भ्रमण करते हैं ॥ ९३ ॥ जो ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र अपने दुःख भी नष्ट करनेमें कारण (समर्थ) हैं. इस वातको बुद्धिमान किसप्रकार विश्वास कर सक्ते हैं? क्योंकि— ॥ ९४ ॥ जो आलसी अपने ही जलते हुये घरको नहिं बुझाता, वह अन्यके घरको बुझावैगा इस वातको शुभमति पुरुष किसीप्रकार भी अपने हृदयमें श्रद्धान नहिं कर सक्ते ॥ ९५ ॥ जो देव (आप्त) रागद्वेष भय मोहादिकसे मोहित होकर अपने सुखदायक पदार्थोंको नहिं जानते, वे नष्टबुद्धि दूसरोंको शाश्वत सुखका कारणभूत मोक्षमार्गका उपदेश कैसें करैंगे? ॥ ९६ ॥ आश्चर्य्य है कि—इस लोककी स्थिति तो और ही प्रकार है. और कामभोगके वशीभूत नष्टबुद्धि खलपुरुषोंने औरका और ही कह दिया है. सो उन्होंने दुःखदायक नरकवासको नहिं देखा. यदि देखते व जानते तो नरकमें ले जानेवाले ऐसे महापापरूप असत्यवचन कदापि नहिं कहते ॥ ९७ ॥ भवसमुद्रमें पटकनेवाले कुमार्गियोंकेद्वारा सत्यार्थ मोक्षमार्ग आच्छादन किया जाता है, उसको जो कोई नष्टबुद्धि नहिं विचारता, वह मोक्षरूपी मंदिरको किसप्रकार जायगा? ॥ ९८ ॥ जो निर्मलबुद्धिके धारक हैं, वे छेदकर तपाकर घसकर और कूटकर सोनेकी परीक्षा किया करते हैं, उसीप्रकार शील संयम तप दया आदिक गुणोंसे अमूल्य रत्नकी भी परीक्षा करके ग्रहण करते हैं ॥ ९९ ॥

पुरुष देव धर्म गुरु और शास्त्रकी परीक्षा करके निर्दोष वह अ॰र गुरु आदिकी उपासना करते हैं, वे ही कर्मरूपी वना सक्ता

। वेड़ीको काटकर अविनाशी पवित्र पदको (मोक्षपदको)
प्राप्त होते हैं ॥ १०० ॥ जो पूजनीय ज्ञानीपुरुष अपने हि-
तकी वांछा करते हैं, उनको चाहिये कि-अपने घमंडको
छोड़कर देवसे देवकी शास्त्रसे शास्त्रकी धर्मसे धर्मकी और
गुरुसे गुरुकी परीक्षा करें ॥ १०१ ॥ देव तो वह है कि-जो
समस्तकर्मरहित, सर्वज्ञ और इन्द्र धरनींद्र नरेन्द्रोंकर पूजित हो.
धर्म वही है जो कि-रागादि दोषोंको नष्ट करनेमें कुशल व
दयाप्रधान हो. शास्त्र वही इष्ट है जो कि-हेय उपादेय और
युक्तिपूर्वक वस्तुका सत्यार्थस्वरूप प्रगट करनेमें निपुण हो
और यति कहिये गुरु वही है जो कि अपरिमाणज्ञानका धारक
और परिग्रहरहित होकर निर्दोष हो ॥ १०२ ॥

इति श्रीअमितगतिआचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी
बालावबोधिनी भाषाटीकामें त्रयोदशमा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १३ ।

अथानन्तर वह मनोवेग "हे मित्र! तुझे और भी कौतूहल
दिखाऊंगा" ऐसा कहकर ऋषिका भेष जो किया था वह
छोड़ता हुवा तत्पश्चात्-॥ १ ॥ उन दोनोंने तपस्वीका भेष
वनाकर उस पटने नगरमें उत्तरकी तरफसे प्रवेश किया और
॥ २ ॥ एक अन्यवादशालामें जाकर घंटेकी भेरी वजाकर
मनोवेग सुवर्णके सिंहासनपर वैठ गया. भेरीके सुनते ही स-
मस्त ब्राह्मण आकर वोले कि-हे तापस! तू कहांसे आया?
॥ ३ ॥ तू व्याकरण जानता है कि विस्ताररूपतर्कशास्त्र जा-
नता है? शास्त्रोंके पारगामी इन ब्राह्मणोंके साथ कौनसा
वाद करैगा? ॥ ४ ॥ तव तापसरूप मनोवेगने कहा कि-हे

दूर होगया, सो हम अपने देशको जाते हैं' ॥२५॥ उनके ये वचन सुनकर मै भी गर्भसे निकलने लगा. उस समय मेरी माता चूलेके पास वैठी थी, सो मेरे प्रसवकी वेदनासे वहीं ओढनेको डालकर अचेत होगई. मैं उसी वक्त गर्भसे निकल-कर चूलेकी राखमें गिर गया, मैं वारह वर्षका भूखा था सो उठते ही मैने एक पात्र लेकर अपनी मातासे कहा कि-हे माता, मैं वहुत ही भूखा हूं सो मुझे भोजन दे? ॥ २६ ॥ ॥ २७-२८ ॥ उस समय मेरे नानाने कहा कि-हे तप-स्वियो! तुमने कहीं ऐसा वालक भी देखा है? जो पैदा होते ही भोजन मांगै? ॥ २९ ॥ उन्होंने कहा कि-यह कोई उत्पात है, इसको घरसे निकाल दो, नहीं तो हे भद्र! तेरे घरमें निरंतर विघ्न होते रहैगे ॥ ३० ॥ तव मेरी माताने कहा कि-मुझे वड़ा दुःखदायक है तू अव यमके द्वारे जा. वही तुझे भिक्षा देगा ॥ ३१ ॥ तव मैंने कहा कि-हे माता, यदि तू आज्ञा दे तो मैं चला जाता हूं? माताने कहा, वेशक तू मेरे घरसे निकल जा ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् मैं अपने देहमें भस्म रमाकर मस्तक मुंडा घरसे निकल तपस्वियोंके साथ ही चल दिया ॥ ३३ ॥ तपस्वियोंमें रहकर मैंनें वड़ा दुष्कर तप किया क्योंकि-जो चतुर हैं वे कल्याणकारी कार्य्यको प्रारंभ करकें कदापि प्रमादी नहि होते ॥ ३४ ॥ एक दिन मैं स्मरण करके साकेतपुर नगरमें गया तो अपनी माताको अन्य वरसे व्याही हुई देखी तव ॥ ३५ ॥ मैंने अपना पूर्वसंबंध निवेदन करके तपस्वियोंसे पूछा तो उनोंने कहा कि-एकसे विवाह हुये पीछे अन्यवरसे विवाह करनेमें कोई

दोष नहीं है. क्योंकि–'द्रोपदीके पांचों पांडव भर्त्तार थे, तो तेरी माताके दो भर्त्तार होनेमें क्या दोष है' ॥ २६–३७॥ 'एकवार विवाह करनेपर दैवयोगसे पति मरगया हो तो अक्षतयोनि स्त्रीका फिरसे विवाहसंस्कार होना चाहिये ॥ ३८ ॥ यदि पति परदेशमें चला गया हो तो प्रसूता स्त्री आठ वर्षतक और अप्रसूता चार वर्षतक अपने पतिके आनेकी राह (वाट) देखकर दूसरा पति करले वल्के– ॥ ३९ ॥ विशेपकारण होनेपर पांच पतितक करनेमें भी स्त्रियोंको कोई भी दोष नहीं है. इसप्रकार व्यासादि ऋपियोंके वचन हैं ॥ ४० ॥ तव मैंने ऋपियोंके वचन सुनकर अपनी माताको निर्दोप जान तापसाश्रमके एकान्तमें रहकर एकवर्पतक तप किया ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् हे ब्राह्मणो ! तीर्थयात्राके लिये पृथिवीमें भ्रमण करता २ आज आपके इस पत्तनमें आया हूं ॥ ४२ ॥ इस-प्रकार सुनकर क्रोधके साथ होटोंको चवाते हुये ब्राह्मण वोले कि–अरे दुष्ट ! तूने इसप्रकार असत्य वोलना कहां सीखा ? ॥४३॥ मालूम होता है कि–ब्रह्माजीने जगतकी समस्त असत्यता इकट्ठी करके ही तुझे वनाया है, नहीं तो इसप्रकार असंभव कार्य्योंको वृथा ही क्यों कहता ? ॥ ४४ ॥ तव मनो-वेगने कहा कि–हे विप्रो ! आप इसप्रकार क्यों कहते हो ? आपके पुराणोंमें क्या ऐसे कार्य्य नहीं हैं ? ॥ ४५ ॥ तव ब्राह्मणोंने कहा कि–हे भद्र ! तूने हमारे वेद या पुराणोंमें ऐसा असंभव देखा हो तो वता ? ॥ ४६ ॥ तव मनोवेगने कहा कि– हे ब्राह्मणो ! मैं कहूंगा परन्तु तुम लोग विनाविचारे ही मेरे समस्त वचन ग्रहण करो तो तुमसे कहते हुये डरता हूं

॥४७॥क्योंकि–आपके वेद और पुराणोंमें पदपदपर ब्रह्महत्या है तो तुम सुभाषित कहे हुयेको किसप्रकार ग्रहण करोगे? ॥ ४८ ॥ जैसे आपके आगममें कहा है कि–पुराण, मानवधर्म (मनुस्मृतिमें कहा हुवा धर्म) अंगसहित वेद और चिकित्सा ये चार आज्ञासिद्ध है, इनको हेतुसे खंडन नहिं करना चाहिये तथा–॥ ४९ ॥ मनु व्यास वसिष्ठके वचन वेदानुकूल ही हैं, इनके वचनोंको जो अप्रमाण करते हैं, उनको बड़ी भारी ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५० ॥ जो सदोष वचन होते हैं, तो उनमें हेतु लगानेका निषेध किया जाता है. क्योंकि–निर्दोष सुवर्णकी परीक्षा करानेमें कोई भी नहिं डरता ॥ ५१ ॥ तब उन वेदावलम्बियोंने कहा कि–हे भद्र! केवल मात्र वचन कहनेमें ही पाप नहिं लगता क्योंकि 'तीक्षण खड्ग' इसप्रकार उच्चारणकरनेमात्रमें जिह्वा नहिं कटती ॥ ५२ ॥ यदि वचनके उच्चारणमात्रसे ही पाप होता है तो 'उष्ण अग्नि' कहतेहुये मुख क्यों नहिं जलता? ॥ ५३ ॥ इसकारण तुम निर्भय होकर पुराणोंका अर्थ कहो, हम सब नैयायिक हैं, सो न्यायपूर्वक कहेहुये वचनको अवश्य ही ग्रहण करेंगे ॥५४॥ तत्पश्चात् स्वपरशास्त्रके जानकार मनोवेग विद्याधरने कहा कि–यदि ऐसा है तो हे विप्रो! मैं अपने मनोगत विचारको प्रकाश करताहूं ॥ ५५ ॥

भागीरथी नामकी दो स्त्रियें एकत्र सूती थीं सो उन दोनोंके स्पर्शसे एकके गर्भस्थिति होकर जगत्प्रसिद्ध भगीरथ नामका पुत्र उत्पन्न हुवा ॥ ५६ ॥ यदि स्त्रीके स्पर्शमात्रसे स्त्रीके गर्भ होता है तो पुरुषके स्पर्शसे मेरी माताके गर्भ कैसे नहिं हो?

॥५७॥ तथा गांधारी नामकी लड़की धृतराष्ट्रको देना निश्चय किया था, उस वाक्सम्प्रदानसे दो मास पहिले ही वह रजस्वला हो गई ॥५८॥ चोथे दिन स्नानकरके उसने फनसवृक्षसे आलिंगन किया, सो उसी दिनसे गांधारीके बडेभार सहित गर्भस्थिति होकर पेटको वढ़ाने लगी ॥ ५९ ॥ तव उसके पिताने गांधारीके गर्भ हुवा देखा तो तुरंत ही धृतराष्ट्रको विवाह दी. क्योंकि—'लोकापवादको दूर करनेकेलिये सभी जने यत्न किया करते हैं' ॥६०॥ फिर उस गांधारीके पेटमें फनसका वहुत वडा फल हुवा उसीसे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ६१ ॥ मनोवेगने कहा कि—कहो तुमारे पुराणमें ऐसा है कि नहीं? ब्राह्मणोंने कहाकि—वेशक है इसका कौन निषेध कर सक्ता है? ॥६२॥ यदि फनसके आलिंगनसे ही पुत्रोंका होना कहा गया है तो मेरी माताके पुरुपका स्पर्श होनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होना असत्य कैसें है? ॥ ६३ ॥ इसप्रकार मनोवेगके वचन सुनकर ब्राह्मणोंने कहा कि—तू भरतारके स्पर्शमात्रसे उत्पन्न हुवा सो तो सत्य है परन्तु तपस्वियोंके वचनको सुनकर तू वारहवर्षपर्यन्त माताके गर्भमें ही रहा, यह वात हम प्रमाण नहिं कर सक्ते ॥ ६४–६५ ॥ तव मनोवेगने कहा कि-पूर्वकालमें श्रीकृष्णने सुभद्राको चक्रव्यूहकी रचनाका व्योरा कहा था, तव उसके गर्भमें स्थित अभिमन्युने सुना था. ऐसा तुमारे पुराणमें कहा है तो मैंने तपस्वियोंके वचन कैसे नहिं सुने! ॥ ६६–६७ ॥ एक समय यमनामा मुनिने किसी तालावमें अपनी कोपीन धोई. उस कोपीनकु लगा हुवा वीर्य जलमें गिरनेपर एक मेंडकीने

(मंडूकीने) पी लिया. उसके पीनेसे मेंडकीके गर्भ रह गया. गर्भके दिन पूरे होनेपर उस मेंडकीके एक वहुत ही सुंदर कन्या उत्पन्न हुई. किन्तु मेंडकीने जाना कि—यह शुभलक्षणा तो हमारी जातिकी नहीं है. ऐसा समझकर उसने एक कमलके पत्तेपर रख दिया ॥ ६८–६९–७० ॥ फिर किसी समय वहीं यम नामा मुनि आया तो उस सुंदरीको देखते ही पहचान लिया कि—यह तो मेरे वीर्य्यके वलसे उत्पन्न हुई है. ऐसा समझ स्नेहके साथ उस पुत्रीको ग्रहण किया और अनेकप्रकारके उपायोंसे प्रतिपालना करके वड़ी की सो ठीक ही है 'अपनी सन्तानको पालनेमें स्वभावसे ही सवजने यत्न किया करते हैं' ॥ ७१–७२ ॥ उस छोकरीने तरुण होनेपर रजस्वलावस्थामें अपने पिताके वीर्यसे मैली कोपीनको पहरकर स्नान किया. स्नानकरते समय उस कोपीनके लगेहुये वीर्य्यका कोई विन्दु उस छोकरीके पेटमें चला गया. उसके संयोगसे वह छोकरी गर्भवती होगई—तव उस मुनिने अपने वीर्य्यसे गर्भोत्पत्ति जान कन्याका दूषण प्रगट होनेके भयसे अपने तपोबलसे उस गर्भका स्थंभन करादिया अर्थात् गर्भका बढ़ना व संततिका उत्पन्न होना वंध कर दिया ॥ ७३–७४ ॥ सो निश्चल कियाहुवा वह गर्भ सातहजार वर्षपर्य्यन्त उस कन्याको कष्ट देताहुवा रुका रहा ॥ ७५ ॥ तत्पश्चात् वह सुंदरी मुनिकर प्रदान की हुई लंकाधिपति रावण महात्माने परणी. तव उसके उस गर्भसे इन्द्रजीतनामा पुत्र उत्पन्न हुवा ॥ ७६ ॥ सो इन्द्रजीत सातहजारवर्ष पहिले ही गर्भमें आया और उसका

पिता रावण सातहजार वर्षपीछे उत्पन्न भया ॥ ७७ ॥ यदि इन्द्रजीत अपनी माताके गर्भमें सातहजार वर्षतक रहा, यह वात सत्य है तो मैं अपनी माताके गर्भमें वाहर वर्ष कैसे नहिं रहा ? ॥ ७८ ॥ तव ब्राह्मणोंने लाचारहोकर स्वीकार किया कि तेरा कहना सत्य है परन्तु तूने उत्पन्न होते ही तपग्रहण कैसे किया ! ॥ ७९ ॥ तथा तेरी माता परणीहुई भी कन्या कैसें हुई ? यह सब होना दुर्घट है सो हमारे संदेहरूपी अंधकारको दूर कर ॥ ८० ॥ तव उस मनोवेग वक्ताने कहा कि–ध्यान देकर सुनो. पूर्वकालमें अनेक तपस्वियोंकर पूजनीय पारासरनामा एक तपस्वी था ॥ ८१ ॥ सो वह पारासर एकदिन तरुणावस्थाकी धारक योजनगंधा नामक धीवरकी कन्याकेद्वारा चलाई हुई नावसे गंगाजीसे पार होता था ॥८२॥ उस समय धीवरकी कन्याको अतिशय तरुण देखकर वह परासर उसके साथ रमने लगा. सो नीति ही है कि–'कामवाणसे भिदेहुये पुरुष योग्य अयोग्य स्थानको नहिं देखते' ॥ ८३ ॥ उस विचारी वालिकाने भी ऋपीके शापके भयसे वह नीचकृत्य करना स्वीकार किया क्योंकि–संसारी जीव अकृत्यकरके भी अपने जीवनकी रक्षा करते हैं परन्तु ॥ ८४ ॥ इस नीचकृत्यको करते हुये कोई देखैगा तो मुझे कैसा शरमिंदा होना पड़ैगा इत्यादि निन्दाके भयसे पारासरने तपोवलके प्रभावसे दिनमें ही अंधकारमय रात्रि करडाली. सो ठीक ही है–'सामग्रीके विना किसीका भी कोई कार्य्य भलेप्रकार सिद्ध नहिं होता' ॥८५॥ फिर क्या था उस नीचकर्मके करते ही तत्काल उस धीवरी-

के उदरसे अष्टादशपुराणके कर्त्ता जगत्प्रसिद्ध वेदव्यासजी उत्पन्न हो गये. व्यासजीने भक्तिपूर्वक अपने पिता पारासरजीसे कहा कि–' हे पिता ! मुझे आज्ञा दीजिये कि–मैं क्या करूं?' ॥ ८६ ॥ पारासरने कहा कि–' हे पुत्र ! तूं यहीं पर तप करता हुवा तिष्ठ ' ऐसा कहकर पारासरजीने प्रसन्नताके साथ व्यासको दीक्षा देकर योगी (तपस्वी) कर दिया ॥८७॥ तत्पश्चात् उस योजनगंधा धीवरकी कन्याको भी पारासरने अपने तपके प्रभावसे ऐसी सुगंधित शरीरवाली कर दी कि–"जिसकी सुगंधसे दशोंदिशा महकने लगी. फिर वे पारासरजी अपने आश्रममें चले गये ॥ ८८ ॥ अब जरा विचार तो करो कि–जब व्यासजीने जन्मलेते ही पिताकी आज्ञासे तप ग्रहण कर लिया तो मैं अपनी माताकी आज्ञासे क्यों नहीं तपस्वी होउं ? और–॥ ८९ ॥ व्यासजीको पैदा करनेपर भी वह धीवरी कन्या ही रही तो मेरी माताके कन्या रहनेमें उजर करना सिवाय पक्षपातके और क्या है ? तथा–॥ ९० ॥ यह बात भी महत्पुरुषोंको विचारना चाहिये कि–सूर्यके प्रसंगसे कुंतीने कर्णनामा पुत्रको पैदा करके भी वह कन्या रही तो मेरी माता कन्या क्यों नहीं रहै ? ॥ ९१ ॥ तथा पूर्वकालमें एक जगत्प्रसिद्ध उद्दालकनामा महातपस्वी था. उसका स्वप्नावस्थामें वीर्य्य स्खलित होगया, सो उसको ग्रहणकरके गंगाजीमें कमलपत्रपर स्थापन कर दिया ॥ ९२ ॥ उस दिन अनेक देवांगनावोंसहित इन्द्राणीकी सदृश गुणोंकी राजधानी अतिशय सुंदर रघुराजाकी चंद्रमतीनामा कन्या अपनी सखियों सहित चतुर्थस्नान करनेकेलिये गंगास्नानको आई

। ९३ ॥ सो स्नानकरते समय उस वीर्यसहित कमलको सूंघनेपर वह वीर्य्य उस चंद्रमतीके उदरमें चला गया सो जलसे सीपकी समान उस चंद्रमतीके समस्त देहयष्टिको वढ़ाता हुवा गर्भाधान हो गया ॥ ९४ ॥ उस कुमारी कन्याको गर्भवती देखकर उसकी माताने यह वृत्तांत रघुराजाको निवेदन किया. राजाने तुरंत ही उस चंद्रमती कन्याको वनमें छुडवा दिया सो ठीक ही है, सत्पुरुष अपने गृहकलंकसे डरते ही रहते हैं ॥ ९५ ॥ तत्पश्चात् उस कुमारीने तृणविंदु नामा मुनिके आश्रममें धनको नाश करनेवाली दुर्नीतिकी सदृश निर्मलकीर्तिके नष्ट करनेका कारण नागकेतु नामा पुत्रको जना ॥ ९६ ॥ उस वालाने उद्विग्नचित्त हो उसी वक्त अपने पुत्रसे कहा कि—" जा तू अपने पिताको अन्वेषण कर " ऐसा कहकर उसीवक्त सदूकमें रखकर गंगाजीमें छोड़ दिया ॥ ९७ ॥ तत्पश्चात् उसी विशुद्धज्ञानी उद्दालक ऋषीने गंगाजीमें संतरण करके वहती हुई संदूकमेंसे अपने वीर्यसे उत्पन्नहुये पुत्रको देखकर ग्रहण किया ॥ ९८ ॥ फिर वह चंद्रमती भी अपने पुत्रको ढूंढती हुई उस ऋषिके पास आई. ऋषीने प्रसन्नताके साथ उस वालकको दिखाकर कहा कि—"मै तेरा हूं अब तू मेरी प्रिया हो जा " ॥९९॥ उस कुमारीने कहा कि हे मुने ! यदि मेरा पिता तुमको प्रदान करेगा तो निःसंदेह मै तुमारी प्रिया हो सक्ती हूं. इसकारण तू जाकर मेरे पितासे याचना कर क्योंकि—कुलीन कन्यायें पिताकी आज्ञाके विना अपने आप पतिको ग्रहण नहिं करतीं

के उदरसे अष्टादशपुराणके कर्त्ता जगत्प्रसिद्ध वेदव्यासजी उत्पन्न हो गये. व्यासजीने भक्तिपूर्वक अपने पिता पारासरजीसे कहा कि-' हे पिता ! मुझे आज्ञा दीजिये कि-मैं क्या करूं!' ॥ ८६ ॥ पारासरने कहा कि-' हे पुत्र ! तूं यहीं पर तप करता हुवा तिष्ठ ' ऐसा कहकर पारासरजीने प्रसन्नताके साथ व्यासको दीक्षा देकर योगी (तपस्वी) कर दिया ॥८७॥ तत्पश्चात् उस योजनगंधा धीवरकी कन्याको भी पारासरने अपने तपके प्रभावसे ऐसी सुगंधित शरीरवाली कर दी कि-"जिसकी सुगंधसे दशोंदिशा महकने लगी. फिर वे पारासरजी अपने आश्रममें चले गये ॥ ८८ ॥ अब जरा विचार तो करो कि-जब व्यासजीने जन्मलेते ही पिताकी आज्ञासे तपग्रहण कर लिया तो मैं अपनी माताकी आज्ञासे क्यों नहीं तपस्वी होउं ? और-॥ ८९ ॥ व्यासजीको पैदा करनेपर भी वह धीवरी कन्या ही रही तो मेरी माताके कन्या रहनेमें उजर करना सिवाय पक्षपातके और क्या है ? तथा-॥ ९० ॥ यह बात भी महत्पुरुषोंको विचारना चाहिये कि-सूर्यके प्रसंगसे कुंतीने कर्णनामा पुत्रको पैदा करके भी वह कन्या रही तो मेरी माता कन्या क्यों नहीं रहै ? ॥ ९१ ॥ तथा पूर्वकालमें एक जगत्प्रसिद्ध उद्दालकनामा महातपस्वी था. उसका स्वप्नावस्थामें वीर्य्य स्खलित होगया, सो उसको ग्रहणकरके गंगाजीमें कमलपत्रपर स्थापन कर दिया ॥ ९२ ॥ उस दिन अनेक देवांगनावोंसहित इन्द्राणीकी सदृश गुणोंकी राजधानी अतिशय सुंदर रघुराजाकी चंद्रमतीनामा कन्या अपनी सखियों सहित चतुर्थस्नान करनेकेलिये गंगास्नानको आई

। ९३ ॥ सो स्नानकरते समय उस वीर्यसहित कमलको सूंघनेपर वह वीर्य्य उस चंद्रमतीके उदरमें चला गया सो जलसे सीपकी समान उस चंद्रमतीके समस्त देहयष्टिको बढ़ाता हुवा गर्भाधान हो गया ॥ ९४ ॥ उस कुमारी कन्याको गर्भवती देखकर उसकी माताने यह वृत्तांत रघुराजाको निवेदन किया. राजाने तुरंत ही उस चंद्रमती, कन्याको वनमें छुडवा दिया सो ठीक ही है, सत्पुरुष अपने गृहकलंकसे डरते ही रहते हैं ॥ ९५ ॥ तत्पश्चात् उस कुमारीने तृणबिंदु नामा मुनिके आश्रममें धनको नाश करनेवाली दुर्नीतिकी सदृश निर्मलकीर्तिके नष्ट करनेका कारण नागकेतु नामा पुत्रको जना ॥ ९६ ॥ उस वालाने उद्विग्नचित्त हो उसी वक्त अपने पुत्रसे कहा कि—" जा तू अपने पिताको अन्वेषण कर " ऐसा कहकर उसीवक्त संदूकमें रखकर गंगाजीमें छोड़ दिया ॥ ९७ ॥ तत्पश्चात् उसी विशुद्धज्ञानी उद्दालक ऋषीने गंगाजीमें संतरण करके वहती हुई संदूकमेंसे अपने वीर्य्यसे उत्पन्नहुये पुत्रको देखकर ग्रहण किया ॥ ९८ ॥ फिर वह चंद्रमती भी अपने पुत्रको ढूंढतीहुई उस ऋषिके पास आई. ऋषीने प्रसन्नताके साथ उस वालकको दिखाकर कहा कि— "मै तेरा हूं अब तू मेरी प्रिया हो जा " ॥९९॥ उस कुमारीने कहा कि हे मुने ! यदि मेरा पिता तुमको प्रदान करैगा तो निःसंदेह मै तुमारी प्रिया हो सक्ती हूं. इसकारण तू जाकर मेरे पितासे याचना कर क्योंकि—कुलीन कन्यायें पिताकी आज्ञाके विना अपने आप पतिको ग्रहण नहिं करतीं

॥ १०० ॥ तत्पश्चात् वह उद्दालक ऋषी शीघ्र ही राजाके पास जाकर प्रार्थनापूर्वक उस महा गुणवती यौवनवती चंद्रमतीको पुनः कुमारी कन्या करके आनंदके साथ विवाह किया और अपनी प्राणप्रिया स्त्री वनाली सो नीति ही है कि–'कामके पांचों वाणोंसे पीड़ित होकर प्राणी जन क्या क्या अनर्थ नहिं करते' ॥ १०१ ॥

इति श्रीअमितगतिआचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें चतुर्दशमा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १४॥

अथानंतर मनोवेगने कहा कि–यदि पुत्रके होतेसंते भी चन्द्रमती कन्या ही रही तो मेरे होनेसे मेरी माता कन्या कैसे नहिं होय ! ॥ १ ॥ इसप्रकार उन वैदिक ब्राह्मणोंको निरुत्तर करकें वह विद्याधर बागमें जाकर और तापसीके भेषको छोड़कर अपने मित्रसे कहा कि–हे मित्र ! कैसा आश्चर्य है कि–लोगोंके पुराण परस्पर विरुद्ध होनेपरभी मिथ्यात्वके वशीभूत हो उनके सत्यासत्यका कुछ भी विचार नहिं करते ॥२–३॥ कहींपर पनसवृक्षके आलिंगनसे भी स्त्रीके पुत्र होता है ? यदि ऐसा हो सकता है तो मनुष्यके स्पर्शसे वल्ली अर्थात् वेलें क्यों नहिं फलतीं ॥ ४ ॥ स्त्रीके स्पर्शमात्रसे स्त्री गर्भवती कैसें हो सक्ती है ? गौके संगसे गौको गर्भवती होना हमने तो कहीं भी नहिं देखा ॥५॥ जरासी मंडूकी (मेंडकी) मनुष्यको पैदा करती है ऐसा कोई विश्वास करैगा ? कहीं शालिसे कोदों भी पैदा हुये देखा है ? ॥ ६ ॥ यदि शुक्रके भक्षणमात्रसे ही सन्तान होजाय तो स्त्रियोंको सन्तानके लिये

पतिके संगकरनेसे क्या प्रयोजन है? ॥७॥ शुक्रके स्पर्शनमात्रसे ही पुत्रोत्पत्ति हो जाय तो फिर बीजके पड़ते ही पृथिवी क्यों नहीं धान्य देती? ॥ ८ ॥ यदि शुक्रसहित कमलके सूंघने मात्रसे ही स्त्रीके गर्भाधान हो जाता है तो भोजनसहित पात्रके (थालके) निकट होते ही तृप्ति क्यों न हो जाती? ॥ ९ ॥ मंडूकीने कन्या समझकर उसने कमलपत्रपर कैसे रख दी? क्या मेंडुक जातिमें ऐसा ज्ञान कभी किसीने देखा वा सुना है? ॥ १० ॥ सूर्य धर्म पवन और इन्द्रके संगसे कुन्तीके कर्ण युधिष्ठिर भीम अर्जुन ये पुत्र हुये, ऐसा किस बुद्धिमानके हृदयमें विश्वास हो सक्ता है? ॥ ११ ॥ यदि देवोंके साथ मनुष्यनीका संगम होता है तो मनुष्योंका देवांगनाओंके साथ संगम होना क्यों नही देखनेमें आता? ॥ १२ ॥ समस्त अशुचियोंका घर ऐसे महामलीन मनुष्यके शरीरमें धातु और मलरहित देव किसप्रकार रमें? ॥ १३ ॥ हे मित्र! अन्यमतके शास्त्र हैं,वे सब अविचारियोंको ही रमणीक भासते हैं परन्तु विवेकी पुरुष उनका जितना २ विचार करते हैं उतने ही खंडित हो जाते हैं ॥ १४ ॥ महाप्रभाव सम्पन्न देवता और तपस्वीगण कन्याको भोगकर स्त्री करते हैं, यह बात विद्वज्जन कदापि विश्वास नहिं कर सक्ते. क्योंकि— ॥ १५ ॥ जो परस्त्रीलंपट होकर परस्त्रियोंको सेवन करते हैं ऐसे व्याभिचारियोंको प्रभावशाली देव कैसे कह सक्ते हैं? ॥१६॥ हे मित्र! असत्य प्रलाप करनेसे क्या लाभ? तुझे मैं जैनमतानुसार कर्णराजाकी उत्पत्तिकी सच्ची कथा कहता हूं सो सुन ॥ १७ ॥

हस्तिनापुर नगरके व्यास नामा राजाके गुणोंके घर ऐसे धृतराष्ट्र पांडु और विदुर नामके जगत्प्रसिद्ध तीन पुत्र हुये ॥ १८ ॥ एक दिन किसी मनोहर उपवनमें (बागमें) क्रीड़ा करते हुये पांडुने लतामंडपमें पड़ीहुई एक विद्याधरकी काम मुद्रिका (अंगूठी) देखी ॥ १९ ॥ पाण्डुने उस मुद्रिकाको अंगुलीमें डालकर देखता था इतनेमें ही उस काममुद्रिकाका मालिक चित्रांगद नामा विद्याधर अपनी मुद्रिकाको ढूंढता हुवा आ पहुंचा ॥ २० ॥ उस निस्पृही पांडुने उसी वक्त वह अंगूठी उस विद्याधरके सुपुर्द करदी. सो नीति ही है कि—'महापुरुष परद्रव्यमें निस्पृही होते हैं' ॥२१॥ वह विद्याधर पांडुकी इसप्रकार अलोभताको देख उसको अपना परम मित्र समझने लगा. क्योंकि 'जो अन्यद्रव्यसे पराङ्मुख हैं वे जगतभरके मित्र होते हैं' ॥ २२॥ सो उस विद्याधरने पांडुसे कहा कि—हे साधु ! तू ही मेरा मित्र है. जो परद्रव्यको कूड़े कचरेकी समान देखता है ॥ २३ ॥ हे मित्र ! तू उदासीन दीखता है, इसका कारण क्या है ? क्योंकि—' चतुर पुरुष अपने मित्रसे कुछ भी नहिं छिपाते' ॥ २४ ॥ तब पांडुने कहा कि- हे मित्र ! सूर्यपुरमें अंधकवृष्टि नामा राजा स्वर्गके इन्द्रकी समान राज्य करता हुवा तिष्टै है, उस राजाके त्रिलोकीको जीतनेवाले कामदेवकर ऊंची की हुई पताकाके समान एक कुंती नामा अतिशय सुंदर कन्या है ॥ २५–२६ ॥ सो वह कामदेवको वढानेवाली कन्या उसके पिताने पहिले तो मुझे देनी करी थी, परन्तु मुझे पांडुरोगी देखकर अब नहिं देता है ॥ २७ ॥ इसीकारण हे मित्र ! मेरे चित्तमें काष्टाको कुटा-

रकी समान मेरे मर्मोंको काटनेवाला विषाद उत्पन्न हो गया है ॥ २८ ॥ तब चित्रांगदने कहा कि—हे मित्र ! इस विषण्णताको छोड़, मैं तेरे उद्वेगको दूर करदूंगा. तू मेरा कहा कर ॥ २९ ॥ हे मित्र ! इस मेरी काममुद्रिकाको लेकर पहर ले, जिससे तू कामदेवकी समान सुंदर होकर उस अपने मनकी प्यारीको सेवन कर जब वह गर्भवती हो जायगी तो वह राजा अपने आप तुझे ही देदेगा. क्योंकि—दूषित कन्याको अपने घरमें कोई भी नहिं रखता ॥ ३०–३१ ॥ तत्पश्चात् वह पांडु उस मुद्रिकाको पहरकर उस कुंतीके महलमें गया. सो प्रथम तो 'सांसारी जीव अपने आप ही विषयलंपटी होते है, जब सुगम उपाय मिलजाय तो कहना ही क्या' ॥ ३२ ॥ इसप्रकार कामाकारका धारक वह पांडु उस कुंतीको प्राप्त होकर स्वेच्छापूर्वक सेवने लगा. सो ऐसा कौन पुरुष है जो—' अपने मनकी प्यारी स्त्रीको एकान्तमें प्राप्त होकर अपनी इच्छाको पूर्ण न करै' ॥ ३३ ॥ उस कुमारीको सात दिनतक उस युवा पुरुषने सेवन करके उसके गर्भारोपण कर दिया ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् वह पांडु वहांसे निवृत्त हो कुंतीको वही छोडकर अपने घर आ गया सो ठीक ही है. मनवांछित कार्यकी सिद्धि होनेपर किसको निवृत्ति नहिं होती ? ॥ ३५ ॥ कुंतीकी माताने उसको गर्भवती जानकर पूरे दिन होनेपर गुप्तभावसे प्रसूति करवाइ सो ठीक ही है अपने घरकी निंदाके भयसे सभी जने गुप्तबातको छिपाते हैं ॥३६ ॥ फिर कुंतीकी माताने गृहकलंकके भयसे उसके पुत्रको एक संदूकमें बंद करके गंगाजीमें बहा दिया ॥ ३७ ॥ सम्पत्तिको

दुर्नीतिकी सदृश उस संदूकको गंगाजी वहाकर ले जातीं थीं, सो चम्पापुरीके आदित्य राजाने ग्रहण किया ॥ ३८ ॥ संदूकको उघाड़कर देखा तो उसमें राजाने पवित्र लक्षणों सहित विद्वानोंकर पूजनीय सरस्वती (जिनबाणी) के आनिन्द्य अर्थके समान सुंदर बालक देखा ॥ ३९ ॥ बालकको अपने कान पकड़े हुये देखकर राजाने उसका प्रीतिपूर्वक 'कर्ण' नाम रख दिया ॥ ४० ॥ जिसप्रकार दरिद्री द्रव्यराशिको पाकर रक्षा करता है. उसीप्रकार वह निपुत्र राजा उसको पुत्र समझ वड़े यत्नसे रक्षाकरके वढ़ाता हुवा ॥४१॥ तत्पश्चात् उस महोदयरूप आदित्य राजाके मरजानेपर वह कर्ण आकाशको चंद्रमाकी समान त्रिभुवनको आनंद करनेवाला चम्पावती नगरीका राजा हो गया ॥ ४२ ॥ आदित्य नामा राजाने पालनपोषणकर वढ़ाया इसकारण वह कर्ण 'आदित्यज' कहलाया है. ज्योतिष्क जातिके सूर्यका पुत्र कदापि नहीं है ॥ ४३ ॥ यदि धातुरहित देवोंकेद्वारा स्त्रियें नरको उत्पन्न करती हैं तो पाषाणके द्वारा पृथिवीमें धान्यादिक उत्पन्न होने चाहिये ॥ ४४ ॥ तत्पश्चात् दोष छिपानेकेलिये अन्धकवृष्टि राजाने ये सव वृत्तांत जानकर वह कुंती पांडूको ही परणादी—और धृतराष्ट्रको गांधारी नामकी दूसरी कन्या परणाई ॥ ४५ ॥ पुराणोंकी सत्य २ कथा तो उक्तप्रकार है और व्यासजीने और ही प्रकार कही है. सो रागद्वेष और आग्रहके ग्रसे हुये मनुष्य पापकार्य्यसे नहिं डरते क्योंकि—॥ ४६ ॥ धर्मात्मापुरुष होते हैं, वे युक्तिसे सिद्ध नहिं हो, ऐसे वचन कदापि नहिं कहते. पापीजन ही यु-

क्तिसे अघटित वचन कहते हैं ॥ ४७ ॥ इस संसारमें सबके सर्वप्रकारके संबंध देखनेमें आते हैं परन्तु ऐसा कहीं भी देखने सुननेमें नहिं आया कि—पांच भाइयोंके एक ही स्त्री हो ॥ ४८ ॥ यद्यपि संसारीजीव सर्वप्रकारकी धनसंपत्तिका विभाग करते हैं. परन्तु स्त्रीका संविभाग तो नीचपुरुषोंके यहां भी निंदनीय है ॥ ४९ ॥ हे मित्र! योजनगंधा नामकी धीवरीका जना व्यास कोई दूसरा ही होगा. और यह धन्यवादनीय सत्यवती राजकन्याका व्यासपुत्र (व्यासनामा) राजा अन्य है ॥ ५० ॥ पारासर राजा दूसरा है. पारासर तापसी दूसरा ही है परन्तु मूढलोक नाममात्रको सुनकर कहीका कहीं संबंध लगाते हैं ॥ ५१ ॥ दुर्योधनादिक सौ पुत्र तो गांधारी और धृतराष्ट्रसे उत्पन्न हुये और जगत्प्रसिद्ध पांच पांडव हैं वे कुंती तथा माद्रीके पुत्र हैं ॥ ५२ ॥ गांधारीके सौ पुत्र तो कर्णराजासहित जरासिन्धु नामा राजाके अनुयायी सेवक थे. और पांच पांडव श्रीकृष्ण नवमें नारायणकी सेवामें रहते थे ॥ ५३ ॥ वह महाबली श्रीकृष्ण जरासिंधु प्रतिनारायणको मारकर समस्त पृथिवीका (तीनखंडका) राजा होता हुवा और— ॥ ५४ ॥ कुंतीके पुत्र युधिष्ठिर भीम और अर्जुन तो तपस्या करके मोक्षपदको गये और माद्रीका भव्यपुत्र नकुल और सहदेव सर्वार्थसिद्धिको गये और—॥ ५५ ॥ दुर्योधनादिक भी जिनशासनकी सेवा करके अपने २ कर्मानुसार स्वर्गादिकमें जाते हुये॥५६॥ हे मित्र! पुराणोंका अभिप्राय तो ऐसा है. व्यासजीने औरका और ही कहा है. सो नीति ही है. मिथ्यात्वसे आकु-

लित है चित्त जिनका, ऐसे पुरुषोंकी वाणी सत्य कैसे होय ! ॥ ५७ ॥ महाभारतमें अतिशय निंदाकी कारणरूप पूर्वापर-विरुद्ध कथाको देख व्यासजीने अपने मनमें इसप्रकार विचार किया कि— ॥ ५८ ॥ यदि इस लोकमें निरर्थक कार्य्य भी प्रसिद्धिको प्राप्त हो जाय तो निश्चय करके विरुद्धार्थका प्रतिपादन करनेवाला मेरा बनाया असंबद्ध यह शास्त्र (महाभारत) भी प्रसिद्ध हो जायगा ॥ ५९ ॥ इसप्रकार विचार करते व्यासजीने गंगाके किनारेपर अपना ताम्रपात्र वालूरेतमें गाडकर उसके उपरि एक वालूका पुंज बनाकर स्नानार्थ गंगाजीमें प्रवेश किया ॥ ६० ॥ व्यासजीको वालुकापुंज करके स्नान करनेको जाते देख मूर्ख लोगोंने " इसप्रकार वालुकाका पुंज करके गंगास्नानार्थ जानेमें कोई भी विशेष पुण्य (धर्म) होगा " ऐसा समझकर व्यासजीकी देखादेखी सबजने वालुका पुंज बना २ कर गंगास्नान करने लगे ॥६१॥ व्यासजी स्नानकरके अपने ताम्रभाजनको देखनेके लिये आये तो असंख्यात वालुकापुंजोंके समूहमें उस स्थानका भी पता नहिं लगा सके ॥६२ ॥ इसप्रकार वालुका पुंजसे गंगातटको भराहुवा देख समस्त लोकको मूढ समझकर यह श्लोक पढा कि— ॥ ६३ ॥

" दृष्टानुसारिभिर्लोकैः परमार्थाविचारिभिः ।
तथा स्वं हार्यते कार्यं यथा मे ताम्रभाजनं " ॥ ६४ ॥

"अर्थात् जो लोग परमार्थका विचार नहिं करके दूसरोंकी देखादेखी करते हैं, वे मेरे ताम्रभाजनकी सदृश अपना कार्य्य नष्ट करते हैं" ॥ ६४ ॥ इन मिथ्याज्ञानरूपी अंधकारके

ारसे भरे हुये लोकमें यदि कोई विचारवान पुरुष हो तो
ेमें कोई एक ही होगा ॥६५॥ इसकारण निश्चय है कि-
रा यह विरुद्धशास्त्र (महाभारत) भी लोकमें वहुमान्य होगा.
सप्रकार लोकमूढताका विचार करके व्यासजी अपने मनमें
हुत प्रसन्न हुये ॥ ६६ ॥ इसप्रकारके लौकिक पुराणोंको
पने शत्रुके वचनोंकी समान जानकर बुद्धिमानोंको प्रमाण
रना किसीप्रकार भी उचित नहीं है ॥ ६७ ॥ "हे मित्र!
ो मैं और भी पुराणोंके गपोड़े दिखाता हूं" ऐसा
हकर मनोवेगने रक्ताम्वरका भेष धारण किया ॥ ६८ ॥
पश्चात् अपने मित्रको साथ ले पांचवें द्वारसे पटने नगरमें
ेश किया—और वादशालामें जाकर भेरी वजाय
ार्णसिंहासनपर वैठ गया ॥ ६९ ॥ भेरीका शब्द सुनते
समस्त ब्राह्मण एकत्र होकर आये और मनोवेगसे कहा
—तू विचक्षण पुरुप दीखता है, सो हमारे साथ किस विष-
में वाद करैगा? कुछ जानता भी है कि नहीं? ॥ ७० ॥
कपटधारी मनोवेगने कहा कि—हे ब्राह्मणो! मैं कुछ भी
ास्त्र नहिं जानता. सहज ही यह अपूर्व भेरी वजाकर इस
वर्णसिंहासन पर वैठ गया हूं॥७१॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—
भद्र! हंसीको छोड़कर सत्यसत्य ही स्पष्टताके साथ कहो?
समीचीन कहनेवालोंके साथ हंसी करनेवालोंकी निंदा की
जाती है ॥ ७२ ॥ मनोवेगने कहा कि—मै अपने देखे हुये
आश्चर्य्यको अवश्य कहूंगा परन्तु आप विना विचारे कुछका
कुछ न समझ लें ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—हे भद्र! तू
किसीप्रकार भी मत डर, जो कुछ कहना हो सो कह. हम

सब न्यायवासित मनवाले विवेकी हैं ॥ ७४ ॥ तब रक्तपट-धारी मनोवेगने कहा कि–यदि आप सब विवेकी और नै-यायिक हैं, तो मैं कहता हूं सो सुनो. हम दोनों उपासकोंके पुत्र हैं. सो वौद्धगुरुकी सेवा किया करते हैं ॥ ७५ ॥ एक समय उन वौद्धोंने अपने कपड़े सुखानेकेलिये विछा दिये थे और हम दोनों हाथमें लाठी लेकर उन कपड़ोंकी रक्षा कर-ने लगे ॥ ७६ ॥ उस समय हम दोनों वड़े यत्नसे उन कपड़ोंकी रक्षा करते थे. इतनेमें ही वड़े भयंकर मोटे २ दो गृध्र (गीदड़) आये ॥ ७७ ॥ उनके भयसे हम दोनों एक मट्टीके टीलेपर जा चढे परन्तु उन दोनों गीधोंने उस टीलेको उठाकर आकाशमार्गसे चलना प्रारंभ किया ॥ ७८ ॥ हमारा चिल्लाना सुनते ही वौद्धभिक्षुक हमारी रक्षाकेलिये आये परंतु इतनेमें तो वे शीघ्रगामी गीध वारह योजन दूर चले आये तत्पश्चात्–॥ ७९ ॥ वे दोनों गृध्र उस तूपको (टीलेको) जमीनपर रखके हम दोनोंको भक्षण करनेमें उद्यमी हुये किन्तु उसी समय उन्होंने अनेक प्रकारके शस्त्रधारी शिकारियोंको (कषाइयोंको) देखा ॥ ८० ॥ उनको देखते ही वे दोनों गीध भयभीत होकर हम दोनोंको खाना छोड़ भाग गये. सो ठीक ही है, 'प्राण जा-नेकी शंकामें ऐसा कौन है जो भोजन करना प्रारंभ करै'? तत्पश्चात्–॥ ८१ ॥ उन शिकारियोंके साथ शिवनामा देशमें आकर हम दोनोंने अपने मनको निश्चलकरके विचार किया कि–॥ ८२ ॥ इस परके देशमें तो आये परन्तु रस्ता खर्चके और मार्गके जाने विना दिशा भ्रम हो जांयगे तो अपने घरको

कैसे जांयगे? ॥ ८३॥ इससे तो श्रेष्ठ यही है कि–अपन दोनों अपने कुलसे चले आये बुद्धभाषित तपको ग्रहणं करें. जिससे उभयलोकमें नित्य समीचीन सुखकी प्राप्ति हो ॥ ८४ ॥ क्तवस्त्र तो है ही केवलमात्र मूंड और मुंड़ा लेंगे. अनर्थोंका कारण ऐसे घरसे अपन क्या करेंगे? ॥ ८५ ॥ इसप्रकार विचार करके हम दोनों अपने आप ही बुद्धभाषित व्रतोंको ग्रहण करलिये. क्योंकि–चतुर होते हैं वे स्वयमेव ही धर्मकार्य्योंमें लग जाते हैं किसीके उपदेशकी आवश्यकता नहिं रखते तत्पश्चात्–॥ ८६ ॥ हम दोनों नगरके समूहोंसे भूषित इस पृथिवीमें भ्रमण (शैर) करते २ आज ब्राह्मणोंसे भये हुये आपके इस नगरमें आये हैं ॥ ८७ ॥ शृगालोंके द्वारा टीलेको उठाना और ले जाना आदिका जो कुछ आश्चर्य हमने प्रत्यक्षतया देखा था, वह आपके सन्मुख निवेदन किया ॥ ८८ ॥ इस वचनको सुनकर ब्राह्मणोंने कहा कि–हे भद्र! तुम तपस्वी होकर भी इसप्रकार असत्यभाषण कैसे करते हो? ॥ ८९ ॥ मालूम होता है कि–सृष्टिकर्त्ताने तीन लोकके असत्यवादियोंको इकट्ठा करके ही तुझे बनाया है क्योंकि–ऐसा असत्यवादी दूसरा कोई भी हमारे देखने वा सुननेमे नहिं आया ॥ ९० ॥ ब्राह्मणोंके वचन सुनकर वह विद्याधर राजाका मनीषी पुत्र बोला कि–हे ब्राह्मणो! आपके पुराणोंमें क्या ऐसे झूटे वचन नहीं हैं? अवश्य हैं परन्तु यह समस्त जगत परके दोषोंको ही देखता है. अपने दोषोंको कोई नहिं देखता. जैसे चन्द्रमाका कलंक तो सब कोई देखते हैं, परन्तु अपने नेत्रमें डाले हुये कज्जलको

अष्ट महाऋद्धिके धारक राक्षस और कहां ज्ञानरहित पशु ? ॥११॥ जरा विचार तो कर कि—बंदर बड़े २ भारी पर्वतोंको किसप्रकार उठा सक्ते हैं ? और वे अगाध समुद्रमें डालेहुये किसप्रकार रहसक्ते हैं और किसप्रकार पुल बंध सक्ता है ?॥१२॥ जो रावण देवताओंसे भी अवध्य है, ऐसा वर पाया हुवा है; उसको मनुष्य किसप्रकार मार सक्ता है ?॥ १३ ॥ तथा देवता ही बंदर होकर राक्षसोंके अधिपतिको मारा कहो तो यह कहना भी मनोवांछित गतिको प्राप्त नहिं होता ॥ १४ ॥ शंकरने सर्वज्ञ होकर रावणको ऐसा वर क्यों दिया ? जिससे देवताओंके भी बड़ा उपद्रव हुवा ॥ १५ ॥ हे मित्र ! पाणीको मथन करनेसे (विलोनेसे) मक्खन नहिं निकलता. उसीप्रकार अन्यमतके पुराणोंका विचार करनेपर वे सर्वतया साररहित दीखते हैं ॥ १६ ॥ हे मित्र ! ये लोगोंपर कल्पना कियेगये सुग्रीवादिक वानर और रावणादिक राक्षस नहीं थे ॥ १७ ॥ ये सब विद्याविभवसे सम्पन्न जैनधर्ममें लवलीन पवित्र सदाचारी बड़े प्रतापी मनुष्योंके राजा हैं. इनकी सेनामें वंदरोंके चित्रसे चिह्नित धुजा होनेसे ही वे वानरवंसी कहनेमें आते हैं और बड़ी विद्याओंके धारक रावणादिककी ध्वजामें राक्षसोंकी मूर्त्तिका चिन्ह रहनेसे राक्षसवंसी कहे जाते हैं ॥१८–१९॥ सो हे मित्र ! चंद्रमाकी समान उज्ज्वलदृष्टिके धारक भव्य हैं, उनको जिसप्रकार महावीरस्वामीके गौत्तम गणधरने श्रेणिकराजासे वर्णन किये, उसीप्रकार श्रद्धान करना चाहिये ॥ २० ॥ हे भद्र ! अन्यमतके पुराणोंके गपोड़े और भी दि-
ा हूं, इसप्रकार कहकर पवनवेगसहित स्वेताम्वरका भेष

धारण किया और—॥२१॥ पटने नगरमें छट्टे द्वारसे प्रवेश करके शीघ्र ही वाद सूचनाकी भेरी वजाय सोनेके सिंहासनपर वैठ गया ॥२२॥ भेरीका शब्द सुनते ही ब्राह्मणोंने आकर मनोवेगसे पूछा कि—तू कौनसा शास्त्र जानता है ? तेरा गुरु कौन है? हमारे साथ कौनसा वाद कर सक्ता है? सो कह! विना कहे तो केवल तेरी सुंदरता ही दीखती है ॥ २३ ॥ मनोवेगने कहा कि—न तो मैं कुछ जानता हूं और न मेरा कोई गुरु है. वादका नाम भी नाहिं जानता तो वाद करनेकी शक्ति कहांसे होगी ? ॥२४॥ मैं तो यहांपर पहिले नाहिं देखा, ऐसा सुवर्णसिंहासन देखकर वैठ गया और इस भेरीकी आवाज देखनेकी इच्छासे भेरी वजाकर देखी है॥ २५ ॥ हम तो शास्त्रज्ञानरहित गोवालेके मूर्ख लड़के हैं. किसी भयसे अपने आप ही तप ग्रहण करके पृथिवीमें भ्रमण करते फिरते हैं ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—तुमने किस भयसे भयभीत होकर ऐसी युवावस्थामें तप ग्रहण किया सो कृपा करके कहो. हमको सुननेकी वड़ी इच्छा है॥२७॥ तव उस श्वेतपटधारी मनोवेगने कहा कि—हमारा पिता आभीरदेशके वृक्ष नामक गांवमें उरणियोंके (भेड़ोंके) पालनेका रोजगार करता हुवा रहता है ॥ २८ ॥ एक दिन उरणियोंकी रक्षा करनेवाले हमारे नोकरके ज्वर होनेसे हमारे पिताने उरणियोंकी रक्षा करनेके लिये हम दोनों भाइयोंको भेजे. सो हम दोनों वनमें गये ॥ २९॥ हमने उस वनमें महाउदयरूप कुटुंवीकी समान शाखा उपशाखादिकर सहित फलोंसे नम्रीभूत एक कवीठका (कैथका) वृक्ष देखा ॥३०॥ उसको देखकर कवीट खानेकी इच्छासे मैंने

इस भाईसे कहा कि—हे भाई! तू उरणियोंकी रक्षा कर, मैं इस पेडके कवीठ खाकर आता हूं ॥ ३१ ॥ तब उरणियोंकी रक्षार्थ भाईके चले जानेपर मैंने उस कवीठके पेडको दुरारोह (बहुत ऊंचा) देखकर विचार किया कि—॥ ३२ ॥ इस वृक्षपर तो मैं किसीप्रकार भी नहिं चढ़ सक्ता. फिर किसप्रकार कवीठ खाकर अपनी भूख मिटाऊं? ॥ ३३ ॥ फिर मैंने उस कवीठके नीचे जाकर विचार किया तो कोई उपाय नहिं सूझा, तब लाचार हो शिरको काटकर अपने समस्त प्राणोंसहित कवीठके पेडपर फेंक दिया ॥ ३४ ॥ मेरे मस्तकने ज्यों ज्यों कवीठ खाने सुरू किये, त्यों त्यों महासुखकी करनेवाली तृप्ति आने लगी अर्थात् मेरी भूख मिटने लगी ॥ ३५ ॥ जब मेरे मस्तकने नीचे नजर करके मेरा पेट पूर्ण भरा हुवा देखा तो पेडपरसे झट आकर मेरी धड़पर बेजोड़के पूर्ववत् चिपक गया तत्पश्चात् मैं अपने उरणे देखनेको गया ॥ ३६ ॥ जब मैं वहां जाकर देखना हूं तो मेरा भाई एक जगहँ सो रहा है. मेपोंका (भेड़ोंका) कहीं पता भी नहीं है ॥ ३७ ॥ मैंने अपने भाईको उठा कर पूछा तो उसने कहा कि—हे भाई! मेरे सो जानेपर न मालूम कहां चले गये ॥ ३८ ॥ तब मैंने अपने भाईसे कहा कि—अब हम उरणियोंको खोकरकें घरपर कैसे जाँवे? पिताजी सुनते ही कोप करैंगे और हम दोनोंको वहुत ही मारैंगे और—॥ ३९ ॥ विना भेपके परदेशमें भी जांवेंगे तो भूखसे मरजांयगे. इसकारण हे भद्र! अपन दोनों कोई भेप धारण करें ॥ ४० ॥ अपने यहां लाठी कम्बल सहित मुंडित मस्तकवाले श्वेताम्बरी साधुओंको भोजनादि-

कका बड़ा सुख है ॥ ४१ ॥ अपने कुलसे ऐसे श्वेताम्बरी साधुओंकी ही भक्ति होती आई है सो अपन दोनों तो श्वेतपटधारी ही बनें. अन्य भेषसे कुछ प्रयोजन नहीं ॥ ४२ ॥ इसप्रकार विचार करके हम दोनों अपने आप ही श्वेताम्बरी साधु बनगये और पृथिवीमें भ्रमण करते २ आज आपके इस नगरमें आये हैं ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—यद्यपि तू नरकमें जानेसे नहिं डरता, तो भी व्रती पुरुषको इसप्रकारका असत्यभाषण करना सर्वथा अयोग्य है ॥ ४४ ॥ यह सुनकर श्वेतपटधारी मनोवेगने कहा कि—आपके वाल्मीकीकृत रामायणमें इसप्रकारके वचन क्या नहीं हैं? ॥ ४५ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि—यदि तूनें रामायणमें कहींपर भी ऐसे वचन देखे हों तो निःसन्देह कह. तब मनोवेगने कहा कि— ॥ ४६ ॥ दश मस्तक और वीस भुजावाला अतिशय धीरवीर त्रिभुवनमें प्रसिद्ध राक्षसोंके अधिपति रावणने शिवजीमें अत्यन्त स्थायी भक्ति प्रगट करनेकेलिये तरवारसे अपने ९ मस्तक काट डाले और पुष्पके दलसमान है होट जिनके ऐसे मुखरूपी नव कमलोंकेद्वारा शिवजीकी भक्तिपूर्वक पूजा करी. सो ठीक ही है, 'वरकी इच्छा रखनेवाला क्या क्या नहिं करता' ॥ ४७–४८–४९ ॥ तत्पश्चात रावणने वीस हाथोंसे गंधर्वदेवोंको भी मोहित करनेवाला हस्तक नामा संगीत करना प्रारंभ किया ॥ ५० ॥ महादेवने भी पार्वतीके मुखपरसे अपनी दृष्टिको हटाकर रावणके साहसको देखकर उसको मन चाहा वर दिया ॥ ५१ ॥ तत्पश्चात् गर्म २ खूनसे जमीनको सिंचन करती हुई उस मस्तकमालाको रावणने

जोडरहित अपने कंधोंपर चिपकालिया ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणो! इसप्रकार वाल्मीकिने रामायणमें लिखा है कि नहीं सो आपलोग यदि सत्यवादी हैं तो ठीक २ कहो? ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—हे साधु! यह सब सत्य हैं. इसप्रकार प्रसिद्ध व प्रत्यक्ष वातको अन्यथा कौन कह सक्ता है? ॥ ५४ ॥ तब श्वेतपटधारीने कहा कि—जब रावणके काटे हुये नौ मस्तक उसकी धड़के लग गये तो मेरा एक मस्तक कैसे नहिं चिपक सक्ता? ॥ ५५ ॥ आपका तो यह वचन सत्य और मेरा वचन असत्य है, इसमें सिवाय मोहके माहात्म्यके और कुछ कारण नहिं दीखता ॥ ५६ ॥ यदि आप कहो कि—रावणके शिर तो महादेवजीने जोड़ दिये सो कदापि नहिं हो सक्ता, क्योंकि महादेवजीमें मस्तक जोड़ देनेकी शक्ति होती तो तपस्वियोंकेद्वारा कटायाहुवा अपना ** क्यों न जोड़ लिया? ॥५७॥ जो महादेव अपना उपकार करनेमें असमर्थ है, वह अन्यका उपकार कदापि नहिं कर सक्ता. क्योंकि जो वैरीकी मारसे अपनी ही रक्षा नहिं कर सक्ता, वह दूसरेकी रक्षा कैसे करैगा? ॥ ५८ ॥ हे विप्रो! और भी सुनो. श्रीकंठा नामकी ब्राह्मणीने जगत्प्रसिद्ध दधिमुख नामा पुत्र (जिसके सिवाय मस्तकके हाथ पांव धड़ पैर कुछ भी नहीं थे) उत्पन्न किया ॥ ५९ ॥ सो उस दधिमुखने थोड़े ही दिनोंमें नदियोंको समुद्रकी समान मनुष्यको निर्मल करनेवाले समस्त वेद और स्मृति आदिक कंठाग्र कर लिये ॥ ६० ॥ एक दिन उस दधिमुखने (मस्तकने) अगस्त्यमुनिको देखकर भक्तिपूर्वक प्रार्थना करी

कि–हे मुने ! आज तो आप मेरे घरपर ही भोजन करें॥६१॥ अगस्त्यमुनिने कहा कि–हे भद्र ! कहाँ है वह तेरा घर ? जहां कि मुझे आदरपूर्वक भोजन करावैगा ? ॥ ६२ ॥ दधिमुखने कहा कि–हे मुने ! क्या मेरे पिताका घर है सो मेरा घर नहीं है ? मुनिने कहा कि–तेरा उस घरसे कुछ भी संवंध नहीं है क्यों कि जिसके घरमें दानधर्म क्षमादि गुणविशिष्ट साध्वी गृहिणी (स्त्री) हो वही गृहस्थ (घरवाला) होता है कुमाराव-स्थामें दान देने योग्य (दाता) गृहस्थी नहिं होसक्ता ॥ ६३–६४ ॥ इसप्रकार कहकर अगस्त्यमुनिके चले जानेपर दधिमुखने अपने मातापितासे कहा कि–जिसप्रकार हो, मेरा कुमारपणा दूर करो अर्थात् मेरा विवाह करो ॥ ६५ ॥ दधिमुखके माता पिताने कहा कि–हे पुत्र ! तुझे अपनी पुत्री कौन देगा ? तो भी हम तेरी यह इच्छा पूर्ण करैंगे ॥ ६६ ॥ तत्पश्चात् वहुतसा द्रव्य देकर किसी दरिद्रकी पुत्रीके साथ महोत्सवपूर्वक दधिमुखका विवाह कर दिया ॥ ६७ ॥ कुछ दिनोंके पश्चात् दधिमुखके माता पिताने कहा कि–हे वेटे ! अव हमारे पास द्रव्य नहिं रहा, सो तू अलग होकर अपनी वल्लभाका पालन पोपण कर ॥ ६८ ॥ यह सुनकर दधिमु-खने अपनी स्त्रीसे कहा कि–हे वल्लभे ! पिताने अपनेको घरसे निकाल दिया, सो चलो कहींपर भी रहकर जीवन व्यतीत करैं ॥ ६९ ॥ तत्पश्चात् उस पतिव्रताने अपने पतिको (दधि-मुखनामक मस्तकको) छींकेमें रखकर पृथिवीतलमें घर २ दिखलाती हुई फिरने लगी ॥ ७० ॥ इसीप्रकार पूजा प्रति-ष्ठा पाती हुई वह पतिव्रता उज्जयिनीनामा नगरीमें आई. उस

उज्जयिनीनगरीके चारों तरफ बड़े २ कैरोंका बन (जंगल)था
॥ ७१ ॥ इस प्रकार विकल (मस्तकमात्र) पतिको पालती हुई
देखनेसे सबजने उसको भक्तिपूर्वक अन्नवस्त्रादि देने लगे ॥७२॥
उसने अपने पतिसहित छींकेको टिंटाकीलिक कहिये कैरोंकी
झाडीमें अथवा कैरकी डालीमें रखकर वह उज्जायिनीमें भि-
क्षार्थ चली गई. [यहा टिंट शब्दका अर्थ जुवारी और
टिंटाकीलिक शब्दका अर्थ जुवारियोंका घर भी होता है. सो वह
जुवारीखानेकी खूंटीपर छींका रखकर गई ऐसा भी अर्थ हो सक्ता
है] ॥ ७३ ॥ वहांपर परस्पर दो जुआरीयोंका युद्ध हो
गया. जिसमें एकने दूसरेका माथा तरवारसे काट डाला.
॥ ७४ ॥ उसीसमय एककी तलवारके लगनेसे वह दधिमु-
खका छींका भी कट गया. तब वह दधिमुख (मस्तक) नीचे
गिरते ही उस धडपर लग गया ॥ ७५ ॥ निःसंधिरूप (जि-
समें जोड़ लगनेका कोई चिन्ह नहिं दीखे ऐसा) मस्तकके
जुड़जानेसे वह दधिमुख सर्वाङ्गसुन्दर समस्त काम करनेमें स-
मर्थ ऐसा पुरुप हो गया ॥ ७६ ॥ इसप्रकार कहकर मनोवे-
गने ब्राह्मणोंसे कहा कि—हे विप्रो ! अपने मनसे आप विचार
करके शीघ्र ही कहैं कि—यह वाल्मीकिका वचन सत्य है
कि—नहीं ? ॥ ७७ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—बेशक यह सत्य है.
ऐसा कौन है जो इस कथनको असत्य कह सके ? क्योंकि—
उदयरूप सूर्यको अनुदयरूप कौन कह सक्ता है ?—अर्थात्
कहीं दिनकी भी रात हो सक्ती है ? कदापि नहीं ॥ ७८ ॥
तब मनोवेगने कहा कि—यदि दधिमुखका मस्तक जो कि
कटा हुवा नहीं था और वह अन्य मनुष्यकी धड़के सन्धि

रहित लग गया तो मेरा कटा हुवा मस्तक तुरंत ही जुड़गया ऐसे क्यों नहीं सत्य कहते ? ॥ ७९ ॥ तथा तीक्ष्ण खड्गकेद्वारा रावणने अगदके दो टुकड़े कर डाले और फिर हनूमानने कैसें जोड़ दिये ? और भी सुनो ॥ ८० ॥ एक दानवेन्द्रने पुत्रप्राप्तिके अर्थ देवीकी उपासना करी. देवीने प्रसन्न होकर उसकी वांछा पूरण करनेकेलिये एक पिंड (लड्डू) दिया और कहा कि—यह पिंड तेरी स्त्री खावेगी तो तेरे पुत्र होगा- दानवेन्द्रके दो स्त्री थीं. सो उसने एक स्त्रीको वह पिंड देदिया. दोनोंमें भी परस्पर अनुराग था, इसकारण उसने वह पिंड आधा आधा करके आधा आप खाया और आधा अपनी सौतको खिलाया. इसलिये उससे उन दोनोंके ही गर्भ रह गया. ॥ ८१-८२ ॥ जब उन दोनोंके गर्भके दिन पूरे होगये, तब उन दोनोंके मनुष्यका आधा २ अंग उत्पन्न हुवा. सो उनको निरर्थक समझ घरके बाहर फेंक दिया परंतु जरा नामकी राक्षसीने उन दोनों खंडोंको मिलाया तो दोनोंका एक लड़का हो गया. वही लड़का देवमनुष्योंका जीतनेवाला प्रशंसनीय है पराक्रम जिसका, ऐसा जगत्प्रसिद्ध जरासन्ध नामका राजा हुवा ॥ ८३-८४ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब घावरहित शरीरके दो टुकड़े जुड़कर एक हो गये तो मेरा मस्तक तुरतका कटा हुवा ताजे खूनसहित होनेपर भी कैसे नहिं जुडा ? ॥ ८५ ॥ जरासन्ध और अंगदादि जुदे २ कलेवर जुड़कर जीवित रहे तो मेरा धड़ और मस्तक कैसे नहिं जुड़ा ? ॥ ८६ ॥ तथा और भी सुनो. पार्वतीका पुत्र कार्तिकेय (षडानन) छः टुकड़ोंसे जोड़ कर बनाया

गया है तो मेरा कटा हुवा देह और मस्तकका जुड़ना क्यों नहीं विश्वास किया जाता ? ॥ ८७ ॥ इसके सिवाय षडानन देव है, वह छहों मुखोंसे खाता है और मनुष्यनीके उत्पन्न हुवा सो यह भी असंभव है ॥ ८८ ॥ तथा देवांगना के उत्पन्न हुवा कहो सो भी नहिं वनता. क्योंकि रक्तमला-दिरहित देवांगनाके गर्भका होना शिलाके (पत्थरके) गर्भ होनेकी समान असंभव है ॥ ८९ ॥ ये सव सुनकर ब्राह्मणोंने कहा कि—हे भद्र ! तूने जो कहा सो सव सत्य है—परन्तु तेरे मस्तकने तो वृक्षपर फल खाये और नीचे तेरा पेट भर गया. यह कैसे सत्य हो सक्ता है ? ॥९०॥ तव श्वेतवस्त्रधारी मनोवेगने कहा कि—हे ब्राह्मणो ! श्राद्धमें ब्राह्म-णोंको भोजन करानेसे मरे हुये देहरहित पिता पितामहादिकों तृप्ति होती है तो मेरा शरीर मस्तकके निकट रहते मेरी तृप्ति व उदरपूर्ति क्यों नहीं हो सक्ती ? ॥ ९१ ॥ वडा आश्चर्य है कि—जो जलाकर खाक कर दिये गये और जिनको मरेहुये बहुत काल वीत गया, ऐसे पित्रादिक तो अन्यको भोजन करानेसे तृप्त हो जाते हैं और मेरा शरीरपास रहते भी मेरी तृप्ति नहीं हो ? ॥ ९२ ॥ इसीप्रकार नर्कके भयसे भयभीत न होकर मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे अंधे होकर व्या-सादिक धर्ममें प्रवीण महान् पूजनीय पुराणपुरुषोंके (श्रेष्ठपु-रुषोंके) विषयमें भी कुछका कुछ वक दिया है ॥ ९३ ॥ जैसे कि—दुर्योधन जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंका भ्रमर धन्य-पुरुष चर्मशरीरी कहिये उसी भवसे मोक्षपदको प्राप्त होने-वाला था, सो युद्धमें भीमकेद्वारा मारा गया. इसप्रकार व्या-

सने कहा है सो सर्वथा असत्य है और-॥९४॥ मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिंगन करनेकी है वांछा जिनके, ऐसे मोक्षगामी कुंभकर्ण इन्द्रजीतादि विद्याधर पुरुषरत्नोंको व्यासने निन्दनीय मांसके भक्षण करनेवाले दुष्ट और मनुष्योंको खानेवाले राक्षस वताया है सो वडा अन्याय किया है ॥ ९५ ॥ जो वालि महात्मा कर्मवंधोंको नष्ट करके सिद्धिवधूके वरपणेको प्राप्त हुये अर्थात् मोक्षमें गये, उनको वाल्मीकिने रामसे मारा गया लिखा है सो सर्वथा असत्य है ॥ ९६ ॥ एक समय कैलास पर्वतपर वालिमुनिके ध्यानास्थित वैठे रहनेके कारण कैलास परसे जाता हुवा रावणका विमान अटक गया जिससे रुष्ट होकर रावणने अपने विद्यावलसे शरीरको वड़ा करके कैलासपर्वतको उठाकर समुद्रमें डाल देनेको तत्पर हुवा ॥ ९७॥ कैलासपर्वतके जिनमंदिरोंकी रक्षा करनेके लिये वालमुनिराजने अपने पांवके अंगूठेसे कैलासको दवा दिया, तव लंकाधिपति रावण पांवोंको संकोचकर वहुत रोया ॥ ९८ ॥ इसप्रकार वालिमुनिकेद्वारा कैलासकी रक्षा हुई, सो लोकप्रसिद्ध है. परन्तु व्यासादिक कवि है, सो रुद्रकेलिये जोड़ते हैं. सो कहां तो मुनिसुव्रत भगवानके तीर्थमें होनेवाला रावण और कहां वर्धमानस्वामीके समयमें होनेवाला रुद्र? कहींका कहीं जोड़ लगा दिया और-॥ ९९ ॥ अहल्याके संयोगसे तो दीनवृत्ति इन्द्र नामा विद्याधर दूषित हुवा था-और मूर्खोंने निर्मलवृत्तिवाले सौधर्मस्वर्गके पति इन्द्रको भ्रष्ट हुवा कर दिया. सो ऐसा कदापि नहीं है. क्योंकि-देव और मनुष्यनीका संग कदापि नहिं हो सक्ता और- ॥ १०० ॥

सौधर्मस्वर्गका अधिपति महात्मा, सवसे अधिक है लक्ष्मी जिसकी ऐसे इन्द्रको 'रावणने जीत लिया' इसप्रकार नष्टबुद्धियोंने प्रसिद्ध किया है, सो यह कहना कैसा है जैसे कि-कीड़ेने सिंहको जीत लिया ॥ १०१ ॥ इन्द्रनामा विद्याधरकी जगहँ स्वर्गपति इन्द्रदेवको जीता हुवा कहते हैं. सो ठीक ही है कि-'विचारशून्य दुर्जन होते हैं, वे इसीप्रकार महापुरुषोंको कलंकित करके जगतमें प्रसिद्ध करते हैं' ॥ १०२ ॥ जो विष्णु (कृष्ण नारायण) जगतका पूजनीय जगत्प्रसिद्ध महावली तीन खंडका अधिपति था, उसने अपने नोकर अर्जुनका सारथीपना व दूतपना किया कहते हैं सो यह कैसा आश्चर्य है? और ऐसे महापुरुषको कैसा कलंकित किया है? ॥ १०३ ॥ सो हे ब्राह्मणो! ये सब पुराण जगतके जीवोंके चित्तमें भ्रम पैदा करनेवाले और असत्यार्थका प्रकाश करनेवाले हैं इसप्रकार जानकर इन लौकिक पुराणोंका अमितगति कहि ये अपरिमाण ज्ञानके धारक निर्मल चित्तवाले पुरुषोंको चाहिये कि-अपने मनमें विश्वास न रक्खें ॥१०४॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें सोलहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १६ ॥

जब ब्राह्मणोंको निरुत्तर देखा तो वे दोनों विद्याधरपुत्र वहांसे निकलकर अनेक वृक्षोंसे शोभित उसी उपवनमें (बागमें) आ गये और-॥ १ ॥ श्वेताम्बरका भेष छोड़कर सज्जनकी समान नम्रीभूत विचित्र फलवाले एक वृक्षके नीचें वैठे ॥ २ ॥ तव जिनमत ग्रहण करनेकी इच्छासे पवन-

वेगने कहा कि—हे मित्र ! ब्राह्मणोंके शास्त्रोंका विशेष और भी सुना—॥ ३ ॥ तव मनोवेगने कहा कि—हे मित्र ! ब्राह्मणोंके यहां धर्मादिकमें प्रमाणभूत एक वेदशास्त्र है उसको वे लोग अकृत्रिम (अपौरुषेय) और निर्दोष वताते हैं परन्तु उसमें संसाररूपी वृक्षको वढानेवाली हिंसाका प्रतिपादन किया गया है, इतकारण ठगधूर्तोंके अथवा निशाचरोंके शास्त्रकी समान समझकर उत्तमपुरुष उसको प्रमाण नहिं करते क्योंकि— ॥ ५ ॥ वेदमें कही हुई हिंसा ही यदि धर्मका कारण हो जाय तो फिर वेदमें और ठगोंके शास्त्रमें कुछ भी अंतर (फर्क) नहिं दीखता ॥६॥ धर्मके प्रतिपादन करनेवाले वेदमें अपौरुपेयताका प्रतिपादन करते हैं परन्तु विचारकरनेसे किसीप्रकार भी अपौरुपेयता सिद्ध नहिं होती क्योंकि- ॥ ७ ॥ तालुकंठओष्ठादिसे उत्पन्नहुये वेदको अकृत्रिम कैसें कह सक्ते हे ? यदि ऐसा कहा जायगा तो सूत्रधारके वनाये हुये महलको भी अकृत्रिम मानना पड़ेगा ॥ ८ ॥ यदि कोई कहै कि—ताल्वादिक तो वेदको प्रकाश करनेवाले हैं न कि उत्पन्न करनेवाले. सो यह कहना भी नहिं वनता. क्योंकि—इसमें कोई भी निश्चयकारक हेतु नहिं दीखता. जैसे दीपक प्रकाशक है, उससे घटपटादि प्रकाशित होते हैं. परन्तु घटपटादिक जिसप्रकार विना दीपकके भी प्रकाशित हो सक्ते हैं, उसप्रकार तालुआदिके विना वैदिकशब्द कदापि प्रकाशित नहिं हो सक्ते ॥ ९—१० ॥ तथा कृत्रिम शास्त्रोंमें और वेदोंमें कोई विशेपता भी नहिं दीखती फिर वैदिक लोग किसप्रकार उसकी अपौरुपेयता सिद्ध

सौधर्मस्वर्गका अधिपति महात्मा, सबसे अधिक है लक्ष्मी जिसकी ऐसे इन्द्रको 'रावणने जीत लिया' इसप्रकार नष्टबुद्धियोंने प्रसिद्ध किया है, सो यह कहना कैसा है जैसे कि-कीड़ेने सिंहको जीत लिया ॥ १०१ ॥ इन्द्रनामा विद्याधरकी जगहँ स्वर्गपति इन्द्रदेवको जीता हुवा कहते हैं. सो ठीक ही है कि-'विचारशून्य दुर्जन होते हैं, वे इसीप्रकार महापुरुषोंको कलंकित करके जगतमे प्रसिद्ध करते हैं' ॥ १०२ ॥ जो विष्णु (कृष्ण नारायण) जगतका पूजनीय जगत्प्रसिद्ध महाबली तीन खंडका अधिपति था, उसने अपने नोकर अर्जुनका सारथीपना व दूतपना किया कहते हैं सो यह कैसा आश्चर्य है ? और ऐसे महापुरुषको कैसा कलंकित किया है ? ॥ १०३ ॥ सो हे ब्राह्मणो ! ये सब पुराण जगतके जीवोंके चित्तमें भ्रम पैदा करनेवाले और असत्यार्थका प्रकाश करनेवाले हैं इसप्रकार जानकर इन लौकिक पुराणोंका आमितगति कहि ये अपरिमाण ज्ञानके धारक निर्मल चित्तवाले पुरुषोंको चाहिये कि-अपने मनमें विश्वास न रक्खें ॥१०४॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें सोलहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १६ ॥

जब ब्राह्मणोंको निरुत्तर देखा तो वे दोनों विद्याधरपुत्र वहांसे निकलकर अनेक वृक्षोंसे शोभित उसी उपवनमें (बागमें) आ गये और-॥ १ ॥ श्वेताम्बरका भेष छोड़कर सज्जनकी समान नम्रीभूत विचित्र फलवाले एक वृक्षके नीचें बैठे ॥ २ ॥ तब जिनमत ग्रहण करनेकी इच्छासे पवन-

वेगने कहा कि–हे मित्र ! ब्राह्मणोंके शास्त्रोंका विशेष और भी सुना–॥ ३ ॥ तब मनोवेगने कहा कि–हे मित्र ! ब्राह्मणोंके यहां धर्मादिकमें प्रमाणभूत एक वेदशास्त्र है उसको वे लोग अकृत्रिम (अपौरुषेय) और निर्दोष वताते हैं परन्तु उसमें संसाररूपी वृक्षको बढानेवाली हिंसाका प्रतिपादन किया गया है, इतकारण ठगधूर्तोंके अथवा निशाचरोंके शास्त्रकी समान समझकर उत्तमपुरुष उसको प्रमाण नहिं करते क्योंकि– ॥ ५ ॥ वेदमें कही हुई हिंसा ही यदि धर्मका कारण हो जाय तो फिर वेदमें और ठगोंके शास्त्रमें कुछ भी अंतर (फर्क) नहिं दीखता ॥६॥ धर्मके प्रतिपादन करनेवाले वेदमें अपौरुषेयताका प्रतिपादन करते हैं परन्तु विचारकरनेसे किसीप्रकार भी अपौरुषेयता सिद्ध नहिं होती क्योंकि- ॥ ७ ॥ तालुकंठओष्ठादिसे उत्पन्नहुये वेदको अकृत्रिम कैसें कह सक्ते हैं ? यदि ऐसा कहा जायगा तो सूत्रधारके बनाये हुये महलको भी अकृत्रिम मानना पडैगा ॥ ८ ॥ यदि कोई कहै कि–तात्वादिक तो वेदको प्रकाश करनेवाले हैं न कि उत्पन्न करनेवाले. सो यह कहना भी नहिं बनता. क्योंकि–इसमें कोई भी निश्चयकारक हेतु नहिं दीखता. जैसे दीपक प्रकाशक है, उससे घटपटादि प्रकाशित होते हैं. परन्तु घटपटादिक जिसप्रकार विना दीपकके भी प्रकाशित हो सक्ते हैं, उसप्रकार तालुआदिके विना वैदिकशब्द कदापि प्रकाशित नहिं हो सक्ते ॥ ९–१० ॥ तथा कृत्रिम शास्त्रोंमें और वेदोंमें कोई विशेपता भी नहिं दीखती फिर वैदिक लोग किसप्रकार उसकी अपौरुषेयता सिद्ध

करते हैं? ॥ ११ ॥ इसके अतिरिक्त यदि तालुकंठओष्ठादिक प्रकाशक हैं तो जिसप्रकार दीपक अनेक घटपटादिको एक साथ ही प्रकाशित कर देता है. उसीप्रकार तालुआदिक वेदको एक साथ ही प्रकाशित क्यों नहिं करते ? ॥ १२ ॥ सर्वज्ञके विना वेदोंका अर्थ स्पष्टतया (यथार्थ) किसप्रकार प्रकट हो सक्ता है ? यदि वेद स्वयं ही अर्थप्रकाशक हैं तो इसमें अनेक विसंवाद खड़े होते हैं. सो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि—जैनबौद्धादिके सिवाय शैव वैष्णव दयानंदी आदि समस्त मतवाले अपनेको वेदानुयायी कहते हैं. परंतु परस्पर एक दूसरेकी निंदा करते और वेदका असत्य अर्थ करनेवाला बताते हैं ॥१३॥ यदि वेद अनादिनिधन (अकृत्रिम) ही है तो वेदमें इस युगमें होनेवाले ऋषियोंके हजारों गोत्र और शाखाओंका वर्णन कैसें लिखा हुवा है ?॥ १४ ॥ यदि कोई कहै कि—वेदका अर्थ परंपरासे जाना जाता है तो यह कहना भी ठीक नहीं हैं क्योंकि जिसका मूल कारण सर्वज्ञ नहीं है, उसकी परंपरा कहांसे आई ? ॥ १५ ॥ यदि कोई कहै कि समस्त असर्वज्ञ मिलकर सर्वज्ञकी सदृश वेदार्थको जान सक्ते हैं. सो यह भी ठीक नहीं. क्योंकि—सबके सब अंधे मिलकर अपने इष्टमार्गको कदापि नहिं जान सक्ते ॥ १६ ॥ दूसरे सबके सब असर्वज्ञोंके होनेपर अनादि कालके नष्ट हुये वेदार्थको आदिम लोकव्यवहारकी सदृश कोन प्रकाश कर सक्ता है ? ॥ १७ ॥ इसके अतिरिक्त सज्जन विद्वज्जनोंमें अपौरुषयता सर्वत्र समीचीन भी नहिं मानी जाती. क्योंकि-जारचोरोंका पंथ भी तो अपौरुषेय है. सो ऐसा कोन

पुरु(है जो जारचौरोंके पंथको समीचीन मानें ? ॥ १८ ॥ दूसरे जिसप्रकार दुष्ट शिकारी लोग वनमें जाकर अनेक प्राणियोंको पीड़ित करते हैं. उसीप्रकार यज्ञकरानेवाले ब्राह्मणोंके द्वारा संसारभ्रमणको कारण ऐसी जीवहिंसा की जाती है ॥ १९ ॥ दुष्ट व्याधोंकी (भीलोंकी) सदृश यज्ञकरानेवालोंके द्वारा जवरदस्तीसे मारेहुये तथा संक्लेशित व व्याकुलित किये हुये जीव स्वर्गमें जाते हैं सो हे मित्र ! वैदिकोंका इसप्रकार कहना कैसा आश्चर्य्यकारक है ? क्योंकि- स्वर्गकी जिस उत्तम गतिको संसारी जीव धर्माचरण नियम और ध्यानादिक कठिन तपस्यायें करके प्राप्त करते हैं, वह गति जवरदस्तीसे मारेहुये जीवोंको किसप्रकार प्राप्त हो सक्ती है ? ॥ २०-२१ ॥ इसकारण महाहिंसाके साधक वेदमतावलम्बियोंके वचन सत्पुरुषोंको कदापि नहिं मानना चाहिये. कहीं हिंसक व्याधोंके (शिकारियोंके) वाक्य भी धर्मात्मा लोग हृदयमें धारण करते हैं ? कदापि नहीं ॥ २२ ॥ वहुतसे मूर्ख सत्य शौच तप शील ध्यान स्वाध्यायादि उत्तम आचरणोंसे रहित होकर भी ब्राह्मणादि उत्तम जातिमें पैदाहोनेमात्रसे ही अपनेको धर्मात्मा और सवसे उच्च श्रेष्ठ मानते हैं. सो यह भी वड़ा भ्रम है. क्योंकि-सदाचार कदाचारके कारण ही जातिभेद होता है. केवल ब्राह्मणकी जाति मात्र ही श्रेष्ठ है, ऐसा नियम नहीं है ॥ २३-२४ ॥ वास्तवमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चारो ही एक मनुष्यजाति है परंतु आचारमात्रसे इनके चार विभाग किये जाते हैं ॥ २५ ॥ कोई कहै कि-ब्राह्मणजातिमें क्षत्रिय (शूरवीर) कदापि नहिं

हो सक्ता. क्योंकि–चावलोंकी जातिमें कोदों कदापि उत्पन्न हुये नहिं देखे ॥ २६ ॥ तुम पवित्राचारके धारकको ही ब्राह्मण कहते हो, शुद्धशीलकी धारक ब्राह्मणीसे उत्पन्न हुयेको ब्राह्मण क्यों नहीं कहते ? इसका उत्तर यह है कि–ब्राह्मण और ब्राह्मणीका सदाकाल शुद्धशीलादिक पवित्राचार नहिं रह सक्ता. क्योंकि–वहुत काल वीत जानेपर शुद्धशीलादिक सदाचार छुट जाते और जातिच्युत होते देखिये हैं– ॥ २७–२८ ॥ इसकारण जिस जातिमें संयम नियम शील तप दान जितेन्द्रियता और दयादि वास्तवमें विद्यमान हो, उसको ही सत्पुरुषोंने पूजनीय जाति कहा है. क्योंकि–॥२९॥ तपादिकमें बुद्धि लगानेसे ही योजनगंधा सारिखी धीवरी आदिके गर्भमें उत्पन्नहुये व्यासादिककी पूजा होती देखिये है ॥ ३० ॥ तथा शीलसंयमादिके धारक नीचजाति होनेपर भी स्वर्गमें गये और जिन्होंने शीलसंयमादिक छोड़ दिये, ऐसे कुलीन भी नरकमें गये हैं ॥ ३१ ॥ उत्तम गुणोंसे ही उत्तम जाति पैदा होती है और उत्तमगुणोंके नाश होनेसे नाश हो जाती है. इसकारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि उत्तम गुणोंको आदरपूर्वक धारण करें और नीचताको करनेवाला जातिमात्रका गर्व करना छोड़कर जिससे अपनेमें उच्चपणा आवे, ऐसे शीलसंयमादिका आदर किया करैं ॥ ३२–३३ ॥ वहुतसे मूढ़ शीलसत्यादि सदाचारोंके विना ही गंगास्नानादिकसे अपनेको पवित्र (पापरहित) मानते हैं. सो मेरी समझमें उनकी समान पापरूपी वृक्षके वढ़ानेवाले और कोई भी नहीं हैं. क्योंकि–शुक्रशोणितसे वने हुये और माताकी उगा-

लसे वढे हुये महाअपवित्र शरीरको स्नानकरके पवित्र मानते हैं तो इससे अधिक आश्चर्य्य और क्या होगा ?॥ ३४-३५॥ जलसे शरीरके वाहरका मैला धुल सक्ता है किन्तु अन्तरके शुक्र शोणितहाडमांसादिक अथवा पाप धोये जा सक्ते हैं. यह वात किसके हृदयमें ठहर सक्ती है ? अर्थात् इस वातको कौन वुद्धिमान मानसक्ता है ? ॥ ३६ ॥ संसारी जीव जो पाप मिथ्यात्व असंयम अज्ञानसे उपार्जन करते हैं, वह पाप निश्चयकरके सम्यक्त्व संयम और ज्ञानके विना कदापि नष्ट नहिं हो सक्ता ॥ ३७ ॥ क्रोधमानमायालोभादि कषायोंसे उत्पन्न हुवा पाप गंगास्नानादिसे धोया जाता है. ऐसे वचन मूढात्मा ही कहते हैं. मीमांसक (परीक्षक) विद्वान् कदापि नहिं कह सक्ते ॥ ३८ ॥ जो जल शरीरको ही शुद्धकरनेमें असमर्थ है, वह शरीरके भीतर रहनेवाले दुष्ट मनको किसप्रकार शुद्ध (निर्मल) कर सक्ता है ? ॥ ३९ ॥ जो लोग ऐसा कहते हैं कि—गर्भसे मृत्युपर्य्यन्त यह जीव पृथिवी अप तेज वायु इन ४ भूतोंसे (तत्त्वोंसे) ही वना हुवा है. इन ४ तत्त्वोंके (पदार्थोंके) सिवाय अन्य कोई जीव पदार्थ नहीं हैं, वे लोग अपनी आत्माको ठगते हैं ॥ ४० ॥ चित्त (ज्ञान) जो है सो आत्माका (जीवका) स्वभाव है. और चित्तका (ज्ञानका) कार्य्य जानना वा विचार करना है. यह जानने वा विचारनेकी शक्ति प्रत्येक देहधारीमें प्रतिक्षण पाई जाती है. सो प्रतिक्षणके ज्ञानको (विचारको) पूर्व क्षणका ज्ञान (विचार) कारण होता है अर्थात् आदिके ज्ञानसे (विचारसे) मध्यका ज्ञान और मध्यके ज्ञानसे अन्तका ज्ञान और

अन्तके ज्ञानसे आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है. जब इसप्रकार प्रत्येक क्षणके ज्ञानको पूर्व पूर्वके ज्ञान कारण हैं तो उसका अभाव कदापि नहिं हो सक्ता. जब ज्ञानगुणका अभाव नहीं है तब उसके स्वामीका (गुणीका) अर्थात् जीवका अस्तित्व मानना ही पड़ैगा ॥ ४१–४२ ॥ यद्यपि शरीर दीखनेपर भी चैतन्य (जीव) देखनेमें नहिं आता, परन्तु शरीर है सो चैतन्य नहीं है, जड है, रूपी है, इसकारण शरीरमें जो चैतन्यभाव दीखता है वह, इसका विरुद्धधर्मी अरूपी चैतन्य ही (जीव) है सो जिसप्रकार जड़रूप शरीर जड़रूपनेत्रोंसे दीखता है, उसीप्रकार अरूपी होनेसे चैतन्य (जीवपदार्थ) भी ज्ञानचक्षुसे प्रतीत होता है. यही उनकी ज्ञानजनक सामग्रीमें भेद होनेसे शरीर और चेतनका स्पष्ट भेद है. जड़रूप नेत्रोंसे चैतन्य देखना चाहो, सो कदापि नाहिं दीख सक्ता ॥ ४३–४४ ॥ इसप्रकार समस्तभूतवादियोंमें आत्माका अस्तित्व प्रत्यक्ष होनेपर भी मूढलोकोंने किसप्रकार कह दिया कि–परलोक नहीं हैं. आत्मा नहीं हैं. इत्यादि ? ॥४५॥ जैसे मिलेहुए दुग्ध और पानीकी भिन्नता किसी विशेष विधिसे की जाती है उसीप्रकार आत्मतत्त्वके जाननेवाले विद्वान पुरुष आत्मा और शरीरको भिन्न २ जानते हैं ॥ ४६ ॥ बहुतसे अल्पज्ञानी बंधमोक्षादि तत्त्वोंका अभाव कहते हैं. सो उनके सिवाय अन्य कौन धृष्ट हैं ? क्योंकि– ॥ ४७ ॥ आत्मा यदि सर्वथा और सदाकाल कर्मसे नहिं बंधता है तो इस दुःखमयी घोरसंसारमें क्यों भ्रमण करता है ? ॥ ४८ ॥ यदि आत्मा नित्य शुद्ध ज्ञानी और परमात्मा

है तो उसकी इस दुर्गन्धमय अपवित्र शरीरमें स्थिति क्यों है? जब यह किसीके वशमें है, तभी तो यह जेलखानेकी समान इस दुर्गन्धमय शरीरमें स्थिति करता है, नहीं तो क्यों करता? ॥ ४९ ॥ यदि सुखदुःखादिका ज्ञान देहको होता है तो फिर निर्जीव मुरदेके सुखदु खादि होना कौन रोक सकता है अर्थात् मुरदेके भी सुखदुःखादि होना चाहिये ॥ ५० ॥ 'बंधबुद्धिको नहिं करता जहां तहां परिभ्रमण करता हुवा आत्मा कर्मसे नहिं बंधता' यह वचन कहना कदापि ठीक नही है ॥ ५१ ॥ निर्बुद्धि जीव जहां तहां कैसें फिरता है? कहीं जड़रूप पर्वतोंके भी हलन चलन क्रिया देखी गई है? ॥५२॥ मरनेकी इच्छा न करके भी यदि कोई महाविष खाता है तो क्या नहिं मरता है? अवश्य मरता हैं ॥५३॥ यदि आत्मा सर्वशुद्ध होता तो फिर ध्यानाभ्यासादि क्यों किये जाते हैं? कोई निर्मल सुवर्णकी परीक्षार्थ भी प्रवृत्ति करता है? अर्थात् कोई भी नहिं करता ॥५४॥ कोई २ केवलमात्र ज्ञानसे ही आत्माकी शुद्धि मानते हैं सो उनको भी वड़ा भ्रम है, क्योंकि औषधीका स्वरूप जाननेमात्रसे ही किसीका रोग दूर नहिं होता. उसके खानेसे ही होता है. इसीप्रकार ज्ञानके साथ श्रद्धा और चारित्र होनेसे ही आत्माकी शुद्धि (मोक्ष) होती है ॥ ५५ ॥ कोई २ श्वासरोकने मात्रको ही ध्यानकी सिद्धि (कल्याण) होना मानते है. सो वे आकाशके फूलोंसे शेखर (मुकुट) वनानेकी इच्छा करते है ॥ ५६ ॥ जिसप्रकार काष्ठमें अग्नि है, वह विना सुप्रयोगके प्रगट नहिं होती, इसीप्रकार आत्मा भी इस देहमें ही

अन्तके ज्ञानसे आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है. जब इसप्रकार प्रत्येक क्षणके ज्ञानको पूर्व पूर्वके ज्ञान कारण हैं तो उसका अभाव कदापि नहिं हो सक्ता. जब ज्ञानगुणका अभाव नहीं है तब उसके स्वामीका (गुणीका) अर्थात् जीवका अस्तित्व मानना ही पड़ेगा ॥ ४१-४२ ॥ यद्यपि शरीर दीखनेपर भी चैतन्य (जीव) देखनेमें नहिं आता, परन्तु शरीर है सो चैतन्य नहीं है, जड़ है, रूपी है, इसकारण शरीरमें जो चैतन्यभाव दीखता है वह, इसका विरुद्धधर्मी अरूपी चैतन्य ही (जीव) है सो जिसप्रकार जड़रूप शरीर जड़रूपनेत्रोंसे दीखता है, इसीप्रकार अरूपी होनेसे चैतन्य (जीवपदार्थ) भी ज्ञाननेत्रोंसे प्रतीत होता है. यही उनकी ज्ञानजनक सामग्रीमें भेद होनेसे शरीर और चेतनका स्पष्ट भेद है. चर्मनेत्रोंसे चैतन्य देखना चाहो, सो कदापि नहिं दीख सक्ता ॥ ४३-४४ ॥ इसप्रकार समस्तभावनादिकोंसे आत्माका अस्तित्व प्रत्यक्ष होनेपर भी मूर्खोंने किसप्रकार कह दिया कि परलोक नहीं है. आत्मा नहीं है. इत्यादि? ॥४५॥ जैसे मिले हुए दूध और पानीकी भिन्नता किसी विशे

है तो उसकी इस दुर्गन्धमय अपवित्र शरीरमें स्थिति क्यों है? जब यह किसीके वशमें है, तभी तो यह जेलखानेकी समान इस दुर्गन्धमय शरीरमें स्थिति करता है, नहीं तो क्यों करता? ॥ ४९ ॥ यदि सुखदुःखादिका ज्ञान देहको होता है तो फिर निर्जीव मुरदेके सुखदुःखादि होना कौन रोक सकता है अर्थात् मुरदेके भी सुखदुःखादि होना चाहिये ॥ ५० ॥ 'बंधबुद्धिको नहिं करता जहां तहां परिभ्रमण करता हुवा आत्मा कर्मसे नहिं बंधता' यह वचन कहना कदापि ठीक नही है ॥ ५१ ॥ निर्बुद्धि जीव जहां तहां कैसें फिरता है? कहीं जड़रूप पर्वतोंके भी हलन चलन क्रिया देखी गई है? ॥५२॥ मरनेकी इच्छा न करके भी यदि कोई महाविष खाता है तो क्या नहिं मरता है? अवश्य मरता हैं ॥५३॥ यदि आत्मा सर्वशुद्ध होता तो फिर ध्यानाभ्यासादि क्यों किये जाते हैं? कोई निर्मल सुवर्णकी परीक्षार्थ भी प्रवृत्ति करता है? अर्थात् कोई भी नहिं करता ॥ ५४ ॥ कोई २ केवलमात्र ज्ञानसे ही आत्माकी शुद्धि मानते हैं. सो उनको भी बड़ा भ्रम है, क्योंकि औषधीका स्वरूप जाननेमात्रसे ही किसीका रोग दूर नहिं होता. उसके खानेसे ही होता है. इसीप्रकार ज्ञानके साथ श्रद्धा और चारित्र होनेसे ही आत्माकी शुद्धि (मोक्ष) होती है ॥ ५५ ॥ कोई २ श्वासरोकने मात्रको ही ध्यानकी सिद्धि (कल्याण) होना मानते हैं. सो वे आकाशके फूलोंसे शेखर (मुकुट) बनानेकी इच्छा करते है ॥ ५६ ॥ जिसप्रकार काष्ठमें अग्नि है, वह विना सुप्रयोगके प्रगट नहिं होती, उसीप्रकार आत्मा भी इस देहमें ही

तिष्ठता है परन्तु मूढलोगोंको उसकी प्राप्ति व ज्ञान नहिं होता ॥ ५७ ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकेद्वारा आत्माके मल (कर्म) नष्ट होते हैं क्योंकि यह पूर्वोपार्जित कर्म मल वातपित्त और कफसे उत्पन्न होनेवाले व्याधियोंकी सदृश अनेकप्रकारके दुःखोंको देता है सो इस रत्नत्रयसे ही नष्ट करना चाहिये. क्योंकि—॥ ५८ ॥ जीव और कर्मका अनादिकालसे संबंध है सो रत्नत्रयके सिवाय अन्य कोई भी इन कर्मोंको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ५९ ॥ कोई २ मतवाले दीक्षामात्रसे ही आत्माकी मुक्ति होना मानते हैं सो यह भी भ्रम है. क्योंकि केवलमात्र राज्यस्थापन होनेसे ही शत्रु नष्ट नहिं हो जाते ॥६०॥ जो मूर्ख लोग दीक्षामात्रसे ही पापका नष्ट होना मानते हैं, वे आकाशकी तलवारके अग्रभागसे शत्रुका शिरश्छेदन करना चाहते हैं॥६१॥ जीव, मिथ्यात्व अव्रत और क्रोधादि कषायोंकेद्वारा कर्मबंध करता है. सो मिथ्यात्व अव्रत और कषायोंके अभाव किये विना वह कर्मबंध किसप्रकार नष्ट हो सक्ता है ? ॥ ६२ ॥ जो लोग विना व्रताचरणके दीक्षामात्रसे ही मोक्षफलकी प्राप्ति होना कहते हैं, वे आकाशकी वेलके पुष्पोंकी सुगंधिका वर्णन करते हैं ॥ ६३ ॥ कोई २ ऋषियोंके आशीर्वादमात्रसे ही कर्मक्षय होना मानते हैं, सो यदि ऐसा होता तो राजाके मित्रबंधुओंके आशीर्वचनोंसे राजाके शत्रु नष्ट हो जाते, परन्तु ऐसा कहीं भी देखनेमें नहिं आता ॥ ६४ ॥ जिस दीक्षाके लेनेसे जीवोंका राग (संसारसे मोह) ही नष्ट नहिं होता तो वह दीक्षा अनेकज-

न्योंके कियेहुये प्राचीन कर्मोंको किसप्रकार नष्ट कर सक्ती है? इसलियै ॥६५॥ "सत्यार्थगुरुनके वचनोंसे जानकर रत्नत्रयके सेवन करनेवालोंके ही पाप नष्ट होते हैं." यह वचन ही सत्य जानना ॥ ६६ ॥ हे मित्र ! कषायके वशीभूत होकर आत्माके कियेहुये पाप दीक्षा लेनेसे ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, इस वातको कौन विद्वान प्रमाण कर सक्ता है ? ॥ ६७ ॥ यदि कषायसहित ध्यान करनेसे ही मोक्षपदकी प्राप्ति होय तो वन्ध्याके पुत्रका सौभाग्य वर्णन करनेमें भी द्रव्यकी प्राप्ति होना चाहिये, सो असंभव है ॥ ६८ ॥ जिन पुरुषोंकै इन्द्रियोंका जय और कषायोंका निग्रह नहीं, ऐसे पुरुषोंके वचन धूर्तोंके वचनोंकी समान सत्य नहीं हैं ॥६९॥ उर्ध्व और अधोद्वारसे निकलनेसे मेरी निंदा होगी, ऐसा समझकर जो बुद्ध माताके पेटको फाड़कर निकला और मांसभक्षणमें लोलुपी होकर मांसभक्षण करनेमें दोषका अभाव कहता है, उस मूढ बुद्धके कृपा (दया) किसप्रकार हो सक्ती है ? ॥७०–७१॥ जिस कुधीने कीड़ोंसे भरेहुये शरीरको जानबूझकर भी व्याघ्रीके मुखआगें डाल दिया, उस बुद्धके संयम कैसे हो सक्ता है ? ॥ ७२ ॥ जो बुद्ध प्रत्यक्षसे विरुद्ध सर्वशून्यपणा आत्माका अभाव और क्षणभंगुरता कहता है, उसके कौनसा ज्ञान हो सक्ता है ? ॥ ७३ ॥ जो सर्वशून्यताकी कल्पना करता है, वह बुद्ध कैसा ? और उसके मतमें बंधमोक्षादि तत्त्वोंकी व्यवस्था ही क्या हो सक्ती है ? ॥ ७४ ॥ जिसके मतमें स्वर्गमोक्षके सुखको भोगनेवाले आत्माका ही स्पष्टतया अभाव कहा है तो उसके मतमें व्रतादिकका करना सर्वथा व्यर्थ ही है

॥ ७५ ॥ जिसके मतमें क्षण २ में नवीन आत्माका आना और पहिलेका चला जाना माना है, उसके मतमें हंता और हननेयोग्य, दाता और दानादिक समस्तपदार्थ विरोधरूप हो जाते हैं. इसीकारण विद्वज्जन क्षणिकवादीके मतको सर्वथा असत्य मानते हैं ॥ ७६ ॥ जिस बुद्धके समस्त पक्ष सर्वथा प्रमाणसे वाधित हैं, उस दुरात्माके सर्वज्ञपणा होना भी असंभव है ॥ ७७ ॥ बनारस (काशी) निवासी प्रजापतिका पुत्र तो ब्रह्मा है. और वसुदेवका पुत्र कृष्ण नारायण है. तथा सात्यकी और मुनिका पुत्र रुद्र (महादेव) है. सो नष्टबुद्धिलोगोंने इस अनादिनिधन सृष्टिका ब्रह्माको तो कर्ता, विष्णुको रक्षक और महादेवको संहारक (सृष्टिका नाश करनेवाला) कहा है, सो कैसे माना जावे? ॥७८-७९॥ यदि इन तीनों सर्वज्ञोंकी वास्तवमें एक ही मूर्ति है तो ब्रह्मा और विष्णुने महादेवके लिंगका अंत क्यों नहिं पाया? ॥ ८० ॥ सर्वज्ञ वीतरागी शुद्ध परमेष्ठीके ये तीनों अवयव (ब्रह्मा विष्णु महेश) अल्पज्ञ रागी और अशुद्ध कैसे हुये? ॥ ८१ ॥ प्रलयकी स्थिति और रचनाका करनेवाला पार्वतीका पति महादेव तपस्वियोंकेद्वारा लिङ्गच्छेदनादि शापको किसप्रकार प्राप्त हुवा? ॥ ८२ ॥ जिन तपस्वियोंने महादेवजीको भी महाशाप दिया, वे तपस्वी कामदेवके बाणोंद्वारा किसप्रकार घायल होते रहे? क्या कामदेवको शाप देकर भस्म नहिं कर सके? ॥८३॥ जो देव तीनजगतके कर्त्ता हर्त्ता विधाता हैं और देवताओंकेद्वारा नमस्कार किये जाते हैं, उन तीन महापुरुषोंको (ब्रह्मा विष्णु महेशको) कामने कैसे जीत लिया?

और—॥ ८४ ॥ जिस कामने समस्त देवोंको जीतकर अतिशय विडंवनारूप किया, उस कामको महादेवने अपने तीसरे नेत्रसे किसप्रकार भस्म कर दिया ? ॥ ८५ ॥ जो देव स्वयं रागद्वेषमोहादिक अष्टादश दोषोंके वशीभूत हो दुःख भोगते है, वे देव धर्मार्थी पुरुषोंको हितकारी धर्मका उपदेश किसप्रकार कर सक्ते है ? ॥८६॥ हे मित्र ! जिनको सेवनकरके संसारी जीव मोक्षपदको प्राप्त हो सकै ऐसे निर्दोष देव धर्म गुरु किसी मतमें भी देखनेमें नहिं आते ॥ ८७ ॥ रागी देव परिग्रही गुरु और हिंसामय धर्म सेवन किया हुवा जीवोंकी मनोवांछित सिद्धिको अतिशय दुर्लभ करता है ॥८८॥ मूढ जनही इसप्रकारकी मिथ्यात्वरूपबुद्धि अपनी सुखसमृद्धिकेअर्थ करते हैं. सो ठीक ही है, 'क्योंकि नष्ट हो गई है बुद्धि जिनकी, ऐसे मूढजन क्या नहिं करते ' ॥८९॥ वन्ध्याका पुत्र तो राजा और शिलाका (पत्थरका) पुत्र मंत्री ये दोनों मृगतृष्णाके जलमें स्नान करके लक्ष्मीको सेवन करते हैं. भावार्थ—जो लोग रागी द्वेषी देव परिग्रहधारी गुरु और हिंसामय धर्मको सेवनकर सुखसम्पत्तिकी इच्छा करते हैं, वे वन्ध्यापुत्र और शिलापुत्रकी समान हैं ॥ ९० ॥ जिन रागद्वेष मद मोह विद्वेषादिकने समस्त सुरनरेश्वरोंको जीत लिया, ऐसे दोष सूर्यमें अंधकारकी समान जिसके शरीरमें स्थान नहि पाते और जिसने समस्त पापोंको नष्ट करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और जो जगतके समस्त चराचर पदार्थोंकी व्यवस्थाको जानता है, उसी त्रिलोकपूज्य सिद्धिसाधक आप्तस्वरूप जिनेन्द्रभगवानको ही उत्तम

पुरुष सेवन करते हैं ॥ ९१-९२ ॥ जो समस्त नरसुर विद्याधरको वेधनेवाले कामके बाणोंसे नाहिं तोड़ गये, और संसाररूपी वृक्षको काटनेका है आशय जिनका ऐसे जितेन्द्रिय हैं. वे ही यति कहिये गुरु हैं और-॥ ९३ ॥ वेही धर्मरूपी वृक्ष है कि जिसकी जीवदयापालनरूपी मजबूत जड़ है, सत्य शौच शम शीलादिक पत्ते हैं और इष्ट सुखरूप फलोंके समूहको फलता है और- ॥ ९४ ॥ तिसकेद्वारा पंडितजन सकारण युक्तिसे समस्त बाधारहित, सिद्धिपथ दिखानेमें तत्पर ऐसी बंधमोक्षकी विधि जानते हैं, वही सत्यार्थ शास्त्र है ॥९५॥ यदि मद्यमांस व स्त्रियोंके अंगका सेवन करनेवाले रागी पुरुष ही धर्मात्मा होंय तो कलाल या मद्यपान करनेवाला खटिक व्यभिचारीगण ही निराकुल होकर स्वर्गको चले जांयगे ॥ ९६ ॥ जो यति क्रोध लोभ मद मोहादिसे मर्दित हैं, पुत्र दारा धन मंदिरादिकके चाहनेवाले, धर्म संयम दमादिसे रहित हैं, वे संसारी जीवोंको भवसमुद्रमें डालनेवाले हैं ॥ ९७ ॥ हे मित्र ! देव तो राग द्वेषादिदोषोंसे दूषित, तपोधन (यति) परिग्रहके संगसे भ्रष्ट व व्याकुल, और धर्म जीवहिंसामयी, ये तीनों सेवन करनेसे शीघ्र ही भवसमुद्रमें डाल देते हैं ॥ ९८ ॥ जन्ममृत्युरूप अनेकमार्गों (मतों) कर तथा राग द्वेष मद मत्सरादिकर व्याप्त इस लोकमें मोक्षका मार्ग पाना दुर्लभ है. इसकारण हे मित्र ! तू सदा परीक्षाप्रधानी होकर प्रवर्त ॥ ९९ ॥ जन्मजरामरणरहित देवोंकर वंदनीय देव, और दूर किया है परिग्रह काम और इन्द्रियोंका वेग जिसने ऐसा गुरु, और कपटके संकटरहित सकल

जीवदयाप्रधान धर्म, ये तीनों ही अप्रमाण हैं, ज्ञानकी गति जिसमें, ऐसी मोक्षलक्ष्मीके करनेवाले हैं, सो निरन्तर मेरे मनमें वसो ॥ १०० ॥

इति श्रीअमितगतिआचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें सतरहमाँ परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १७ ॥

अथानंतर पवनवेगने अन्यमतकी ऐसी दुष्टता सुनकर अपने सन्देहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिये मनोवेगसे पूछा कि, हे सन्मते! इन परस्पर विरुद्ध अनेक प्रकारके अन्य मतोंका किसप्रकारसे प्रचार हुवा सो मुझसे कहो ॥ १–२ ॥ तव मनोवेगने पवनवेगका प्रश्न सुनकर कहा कि–हे मित्र! अन्यमतोंकी उत्पत्तिका इतिहास कहता हूं सो सुन ॥ ३ ॥ इस भरतक्षेत्रमें रात्रि और दिनकीसमान दुर्निवार है वेग जिनका ऐसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी नामके दो काल क्रमसे (एकके पीछे दूसरा) निरंतर आया करते हैं ॥ ४ ॥ जिसप्रकार एक वर्षमें ६ ऋतु होती हैं, उसीप्रकार एक एक कालमें एक दूसरेसे विभिन्न सुखमा-सुखमा १ सुखमा २ सुखमादुःखमा ३ दुःखमासुखमा ४ दुःखमा ५ दुःखमदुःखमा ६ ये छ भेद (विभाग) होते हैं ॥ ५ ॥ एक एक काल दश कोड़ाकोड़ी सागरका होता है. सो जिस कालमें उपर्युक्त प्रकारसे सुखमासुखमादि ६ काल होते हैं, उसको तो अवसर्पिणी काल कहते है और जिस कालमें इनके उलटे अर्थात् दुःखमादुःखमा १ दुःख मा २ दुःखमासुखमा ३ सुखमादुःखमा ४ सुखमा, ५ और

और सुखमासुखमा ६, इसप्रकार उत्तरोत्तर आयुकायादि ककी उन्नतिवाले ६ काल होते हैं, उसको उत्सर्पिणी काल कहते हैं. इन दोनोंकी एक फिरणको एक कल्पकाल कहते हैं. इस समय जो काल प्रवर्त्त रहा है, सो दश कोड़ाकोड़ी सागरका अवसर्पिणी काल है. इसीके छह खंड़ोंकी संक्षिप्त व्यवस्था कहता हूं ॥ ६ ॥ इस अवसर्पिणीकालमें आदिका सुखमासुखमा काल चार कोड़ाकोड़ी सागरका हुवा और दूसरा सुखमाकाल तीन कोड़ाकोड़ी सागरका हुवा ॥ ७ ॥ तीसरा सुखमादुःखमा काल दो कोड़ाकोड़ी सागरका हुवा. इनमेंसे पहिले कालमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी दूसरेमें दो और तीसरेमें एक पल्यकी होती है ॥८॥ आयुके समान उनके शरीरकी ऊंचाई भी पहिलेमें तीन कोश, दूसरेमें दो कोश, और तीसरेमें एक कोशकी होती है और पहिलेमें तीन दिनसे दूसरमें दो दिनसे तीसरेमें एक दिनसे आहार होता है ॥ ९ ॥ आहारका परिमाण पहिले कालमें बेरसमान दूसरेमें ऑवलेसमान और तीसरेमें बहेड़ेके बराबर सर्वेन्द्रियोंको बलकारी परको दुर्लभ वीर्यवर्द्धक कल्पवृक्षोंकर दिया हुवा होता है ॥ १० ॥ इन तीनों कालोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंमें स्वामीसेवकादिकका व परके घर आने जानेका संबंध नहीं होता है, वे एक दूसरेसे हीन अधिक नहीं होते हैं तथा उनके व्रत वा संयम कुछ भी नहिं होता है ॥ ११ ॥ इन तीनों कालोंमें एकसाथ चंद्रमा और चांदनीके समान स्वाभाविक कांति और उद्योतसे सर्वांग सुंदर स्त्रीपुरुषोंका जोड़ा ही उत्पन्न होता है और वह

जोड़ा ४९ उनपंचास दिनोंमें समस्त भोग्य भोगनेमें समर्थ नवयौवनकर भूषित हो जाता है. नये जोड़के उत्पन्न होते ही पहिला जोड़ा अर्थात् उन दोनोंके मातापिता मर जाते हैं. और नये जोड़को अपना अस्तित्व छोड़ जाते हैं. इसीकारण इन तीनों कालोंमें उत्तरकुरु आदि भोगभूमिकी सदृश सब मनुष्य गिनतीमें बराबर ही त्पन्नन्न होते हैं ॥ १२–१३॥ उन जोड़ोंमेंसे प्यारी प्रियभाषिणी स्त्री तो अपने पतिको 'हे आर्य' कहकर सम्बोधन करती है और विचित्र प्रकारके चाटु-कार (खुशामद) करनेवाला पुरुष 'हे आर्ये' इसप्रकार कहकर संबोधन किया करता है ॥ १४ ॥ इन तीनों कालोंमें रहनेवाले मनुष्य देहसहित धर्मके सदृश निर्मल आकारके धारक मद्यजाति १, तूर्य्यजाति २, गृहजाति ३, ज्योतिरांग-जाति ४, भूषणांगजाति ५, भोजनजाति ६, मालाजाति ७, दीपकजाति ८, वस्त्रजाति ९ और पात्रजाति १० कल्पवृक्षोंके-द्वारा दियेहुए नानाप्रकारके भोग (सुख) भोगते हैं. इसी कारण इन तीनों कालकी भूमिको भोगभूमि कहा है ॥१५॥ ॥१६॥ जब तीसरे कालके अन्तमें एक पल्यका आठवां भाग शेष रह जाता है तब उस कालमें १४ कुलकर अर्थात् उन भोगभूमियोंमें राजाके समान मुखिया उत्पन्न होते हैं. वे उसी समयसे कालकी पलटना अर्थात् कर्मभूमिके होनेकी व्यवस्था समझाते रहते हैं. कल्पवृक्ष नष्ट होजाने पर सूर्यचंद्रमा दृष्टि-गोचर होते हैं. तब प्रजाको क्षुधादिक वेदनासे पीड़ित होनेपर दुग्धफलादिकका भक्षण करना आदि समस्तप्रकारके उपाय बताकर समस्त प्रजाका भय व दुःख नष्ट करते रहते हैं. इसीका-

रण इनको १४ कुलकर अथवा १४ मनु भी कहते हैं. सो इस वर्त्तमान अवसर्पिणीकालके तीसरे समयके अन्तमें पहिला प्रतिश्रुति, दूसरा सन्मति, तीसरा क्षेमंकर, चौथा क्षेमंधर, पांचवां सीमंकर, छठा सीमंधर, सातवाँ विमलवाह, आठवाँ चक्षुष्मान, नवमां यशस्वी, दशवाँ अभिचन्द्र, ग्यारहमां चंद्राभ, बारहवाँ मरुदेव, तेरहवाँ प्रसेनजित और अंतका नाभिराजा इसप्रकार १४ कुलकर उत्पन्न हुये ॥ १७-१८-१९-२० ॥ ये सब १४ कुलकर जातिस्मरण (अपने पूर्वजन्मके ज्ञाता) और दिव्यज्ञानवाले होते हैं, सो समस्त प्रजाको कर्मभूमिकी व्यवस्था दिखलाते हैं ॥ २१ ॥ पूर्वदिशासे सूर्य्यके समान नाभिराजा और महादेवी मरुदेवीके द्वारा ऋषभनाथ जिनेश्वर उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ जिस समय ऋषभनाथ तीर्थंकर स्वर्गसे चलकर मरुदेवी माताके गर्भमें आये, उस समय कुवेरने अयोध्या नगरीको मनोहर कोट खाई और रत्नमय मकानोंसे शोभित की ॥ २३ ॥ इन्द्रने निर्मल नीति और कीर्तिके समान कच्छराजाकी नंदा सुनंदा नामकी दो कन्याओंका आदिनाथसे विवाह कराया ॥ २४ ॥ उन दोनों स्त्रियोंसे आदिनाथ भगवानके ब्राह्मी सुंदरी दो कन्या और मनको आनंद देनेवाले सौ पुत्र हुये ॥ २५॥ कल्पवृक्षके अभाव होनेपर जब व्याकुल प्रजाने भगवानसे जीवनस्थिति रहनेका उपाय पूछा तब भगवानने असि मषि कृषि वाणिज्य पशुपालन और शिल्प ये छह उपाय बताये. इसके अतिरिक्त ग्राम पुर नगरोंकी रचना वगैरह चोथे कालकी समस्त व्यवस्था इन्द्रके द्वारा कराई और सुखसे राज्यभोग करनेलगे २६

एक समय जब भगवान्के सन्मुख देवियोंका मनोहर नृत्य हो रहा था. तब नाचते २ एक नीलंजसा नामकी देवीका लय (मृत्यु) हो जाना देखकर उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि—॥ २७ ॥ जिसप्रकार विजलीके समान देखते २ यह नीलंजसा देवांगना नष्ट हो गई, उसीप्रकार मोहकी करनेवाली यह समस्त लक्ष्मी भी नष्ट हो जायगी ॥ २८ ॥ जिसप्रकार मृगतृष्णामें जल और आकाशपुरीमें महाजनोंकी प्राप्ति नहीं है, उसीप्रकार इस आसार संसारमें सुखकी प्राप्ति नहीं है ॥ २९ ॥ जिस इष्ट वस्तुके विना इस संसारमें एक क्षणमात्र भी नहिं रहा जाता, उस वस्तुका अग्निके समान महातापकारक वियोग सहना पड़ता है ॥ ३० ॥ यद्यपि चन्द्रमा क्षीण होकर वृद्धिको प्राप्त हो जाता है, और दिन रात भी जाते आते रहते हैं परन्तु नदीके जलके समान गयाहु हुवा यौवन कदापि नहिं आता ॥ ३१ ॥ भाईबंधुओंका संयोग तो मार्गमें वा सरायमें रास्तागीर मिलनेके समान है, मित्रोंका स्नेह विजुलीकी चमकके समान अस्थिर है और—॥ ३२ ॥ पुत्र मित्र गृह द्रव्य धन धान्यादि सम्पदाकी प्राप्ति स्वप्नकीसी माया है. कभी स्थिर नहिं रह सक्ती ॥ ३३ ॥ जिसके लिये महापाप करके द्रव्यादि उपार्जन (संग्रह) किये जाते हैं, वह जीवन शरद ऋतुके वादलके समान शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ ३४ ॥ इस दुःखदायक संसारमें ऐसा कोई भी जीव नहीं दीखता कि—जो जगतभरमें फिरनेवाले कालके (मृत्युके) सन्मुख न पड़ता हो ॥ ३५ ॥ इस संसारमें जीवोंको एकमात्र रत्नत्रयके सिवाय

कोई भी आत्मीयकल्याणका कारण नहीं है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार विचार करके जिनेन्द्र भगवानने घरसे बाहर निकलनेका मानस किया. सो ठीक ही है. संसारकी असारता जाननेवाले घरमें कैसे रह सक्ते हैं? ॥३७॥ तत्पश्चात् वे देवोंकर लाईहुई मुक्ताहार विभूषित पालकीमें बैठकर वनको चल दिये. मानों अपने आप आनेवाली निर्दोष सिद्धभूमिके लानेको ही जाते हैं ॥ ३८ ॥ वह पालकी पहिले तो राजाओंने उठाई. और फिर देवताओंने उठाई सो ठीक ही है 'बुद्धिमान पुरुष समस्त प्रकारके धर्मकार्य्योंमें शामिल होते हैं'॥३९॥ तत्पश्चात् शकटामुख वनको प्राप्त होकर भगवानने एक वटवृक्षके नीचे पर्यंकासन बैठकर समस्त भूषण वसन उतारे और सिद्धोंको नमस्कार करके मजबूत पांच मुट्ठियोंसे अपने केश उखाड़े ॥ ४०-४१ ॥ तत्पश्चात् समस्त जीवोंको कल्याणकारक महापराक्रमी सुरनरकर सेवित वे जिनेन्द्रभगवान् सुमेरके समान कायोत्सर्गसे (खड़े होकर) छः महीनेका ध्यान धरके स्थिर हो गये ॥ ४२ ॥ तत्पश्चात् इन्द्र भगवानके केशोंको रत्नमयी पेटीमें रखकर, अपने मस्तकपर धारणकरके, समस्तदेवोंसहित, आनन्दोत्साहपूर्वक पांचवें क्षीरसमुद्रमें पधराकर अपने २ स्थानको गये ॥४३॥ भगवानने त्यागरूप प्रकृष्ट योग धारण किया था, इसीकारण उस शकटामुख वनका नाम 'प्रयोग' (प्रयाग) प्रसिद्ध हुवा है ॥४४॥ भगवानकी देखा देखी चार हजार अन्यान्य राजाओंने भी उसीप्रकार तपग्रहण कर लिया. सो ठीक ही है. सत्पुरुषोंकर आचरण किये हुये कार्य्यका सभी लोग आश्रय करते हैं ॥ ४५ ॥ वे सब

राजा कुछ दिन तो ऋषभनाथ भगवानके सदृश ही विना आहार पानीके रह गये, परन्तु छः महीनेके भीतर २ भ्रष्ट होगये. सो ठीक ही है क्योंकि दीनचित्तवाले अज्ञानी लोगोंसे क्षुधा तृषादि परी वह सहन नहीं हो सक्ती ॥ ४६ ॥ वे सब दिगम्बर फल भक्षण करके अशुद्ध जल पीने लगे सो ऐसा कौनसा अकार्य्य है, जो क्षीणशरीर क्षुधातुर नहीं करतें ? ॥४७॥इन दिगम्बर मुनियोंका यह कुत्सिताचरण देखकर उस वनके किसी देवताने कहा कि—हे नृपतिगणो ! दिगम्बर मुनिका भेष धारण करके ऐसा निन्द्य कार्य्य करना कदापि उचित नहीं है. क्योंकि दिगम्बरमुनि होकर जो अपने आप ग्रहणकरके आहारपानादि करते हैं, वे नीच पुरुष कदापि संसारसमुद्रसे पार नहिं हो सक्ते ॥ ४८–४९ ॥ जो दिगम्बरसाधु होते हैं, वे अन्यके घर नवधाभक्तिपूर्वक अन्यकर दियाहुआ प्रासुक भोजन धर्मवृद्धिकेलिये हाथोंको ही पात्र-बनाकर ग्रहण किया करते है. सो तुम इस दिगम्बरभेषसे फलादिकका आहारपानादि करोगे तो ठीक न होगा ॥ ५० ॥ इसप्रकार देवताके वचन सुनकर वे सब राजा व्याकुलचित्त हो कोपीन धारण करके गड्ढे व नदियोंका घोर कालकूटविषकी समान पाणी पीने लगे ॥ ५१ ॥ उनमेंसे कितनेयक राजा तो क्षुधातृषासे पीड़ित हो, लज्जा छोड़कर अपने २ घरको चले गये. क्योंकि मनुष्य तभीतक लज्जावान् रहता है, जबतक कि—उसका चित्त दूषित न हो ॥ ५२ ॥ कितने ही राजाओंने ऐसा विचार किया कि—यदि अपन भगवानको वनमें छोड़कर घर जावैंगे तो भग-

वानके पुत्र भरतचक्रवर्ति रुष्ट होकर हमारी वृत्ति छीन लेंगे. तव भी तो भिक्षाटन करना पड़ैगा, इससे तो भगवानकी सेवा करते हुये इस वनमें रहना ही श्रेष्ठ है. इसप्रकार विचार करके वे सव राजा कंदमूलादि भक्षण करतेहुये वहींपर रहने लगे अपने २ घरको नहिं गये ॥ ५३–५४ ॥ तत्पश्चात् कच्छ महाकच्छराजाने अपने पाण्डित्यके गर्वसे फलमूलादि भक्षण करना ही तापसीयधर्म वताकर प्रचार किया और ॥ ५५ ॥ मरीचिकुमारने सांख्यमतकी प्ररूपणा करके अपने कपिलादि शिष्योंको उपदेश किया ॥ ५६ ॥ इसीप्रकार अन्यान्य राजावोंने भी अपने पांडित्यके गर्वसे अपनी २ रुचिके अनुसार एकसौ अस्सी प्रकारके क्रियावादी चौरासी प्रकारके अक्रियावादी सडसठि प्रकारके अज्ञानी और वत्तीस प्रकारके वैनेयिक ऐसे तीनसे तरेसठ प्रकारके महामिथ्यात्वको वढ़ानेवाले पाषंडमत चलाये ॥ ५७–५८ ॥ इनमेंसे शुक्र और वृहस्पति नामक दो राजाओंने मिलकर स्वच्छापूर्वक अपनी इन्द्रियोंको पोषण करतेहुए चार्वाकदर्शनकी प्रवृत्ति की ॥ ५९॥ इसप्रकार उन राजाओंने अनेकप्रकारकी विडंवनायें कीं सो ऐसा कौन पुरुष है जो वडे पुरुषोंकीसी क्रियाओंको करनेकी इच्छा रखतेहुये विडंवना न करै ॥ ६० ॥ जैसे आहारके विना परीसहसे घवराये हुए ये सव भ्रष्ट हुए इसीप्रकार और लोग भी मिथ्यामार्गमें प्रवर्त्त हो जायंगे इसप्रकार विचार करके आदिनाथ भगवानने अपना ध्यान पूर्णकरके मुनियोंके करनेयोग्य शुद्धाहार ग्रहण करनेकी इच्छाकी ॥६१–६२॥ सो हस्तिनापुरके

श्रेयांसराजाने उत्तम स्वप्नकेद्वारा जातिस्मरण होनेसे पूर्वजन्मकी आहारदानकी विधि जानकर नवधा भक्तिपूर्वक इक्षुरसका भोजन कराया ॥ ६३ ॥ उस समय जो उत्तम श्रावक (व्रतधारी) थे, उन सबको भरतचक्रवर्त्तिने अत्यन्त भक्तिपूर्वक धनधान्यादिसे सत्कार करके चोथा ब्राह्मणवर्ण स्थापन किया, सो चक्रवर्त्तिसे पूजाप्रतिष्ठा पाकर वे ब्राह्मण बड़े विस्तारको प्राप्त हो अतिशय उद्धत हो गये ॥ ६४ ॥ आदिनाथ भगवानने इक्ष्वाकुवंश नाथवंश भोजवंश और उग्रवंश ये चार वंश चलाये सो जगतमें प्रसिद्ध हुये ॥६५॥ उस समय जो व्रती थे, वे तो ब्राह्मण कहलाये. जो प्रजाकी भयसे रक्षा करते थे, वे क्षत्रिय कहलाये. जो व्यापारमें कुशल थे, उनका नाम वैश्य पड़ा और जो सेवा करनेमें तत्पर थे, वे शूद्र कहलाये. इसप्रकार इन चारों वर्णोंकी व्यवस्था थी ॥ ६६ ॥ भरतचक्रवर्त्तिके तो सबसे बड़ापुत्र अर्ककीर्त्ति हुवा और भरतके भाई बाहुबलिके सोम नामका पुत्र प्रसिद्ध हुवा. इन ही दोनोंके वंश सूर्य्यवंश और सोमवंश (चन्द्रवंश) नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ६७ ॥ तत्पश्चात् कालदोषसे पार्श्वनाथ भगवान्‌का जो मौडिलायन नामका शिष्य एक तपस्वी था. उसने महावीरस्वामीसे रुष्ट होकर बौद्धमतका निरूपण किया ॥ ६८ ॥ उसने शुद्धोदन राजाके पुत्रको बुद्धपरमात्मा कहकर प्रगट किया है. सो ठीक ही है. कोपरूपी वैरीसे पराजित होकर संसारी जीव क्या क्या नहिं करते ! ॥ ६९ ॥ कृष्णके मरनेपर उसकी लाशको बलभद्रजी भ्रातृमोहके वशीभूत हो छह महीनेतक लिये २ फिरे,

उसी दिनसे जगतमें कंकालनामक व्रत प्रसिद्धिमें आया ॥ ७० ॥ हे मित्र! मिथ्यादृष्टि पुरुषोंने जो अगण्य पाखण्ड मत चलाये हैं, उनका मैं कहांतक वर्णन करूं? ॥ ७१ ॥ जो पाखण्ड चौथे कालमें वीजरूपसे स्थित थे, वे सब इस कलिकालरूपी (पंचमकालरूपी) पृथिवीमें प्रगट होकर विस्तारको प्राप्त होगये ॥ ७२ ॥ जो समस्त देवोंकर वंदनीक है और जिसने विरागताके साथ केवलज्ञानरूपी आलोकसे तीनों लोकोंका अवलोकन किया है वही जिनेन्द्र परमेष्ठी सत्यार्थ आप्त वा देव है और ॥ ७३ ॥ जिस आगममें संसार और मोक्षको कारणसहित वर्णन किया है, और जो समस्तप्रकारके बाधकप्रमाणोंसे निर्मुक्त (रहित) है, वही सच्चा आगम (शास्त्र) है ॥ ७४ ॥ और-उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य और ब्रह्मचर्य्य ये ही कल्याणकारक दशप्रकारके धर्म हैं और-॥ ७५ ॥ जो वाह्यअभ्यंतर २४ परिग्रहरहित, जितेन्द्रिय, निःकषाय, परिषहोंका सहनेवाला और नग्नमुद्राका धारक हो वही सच्चा गुरु है ॥ ७६ ॥ इसप्रकार ये चारों (देवशास्त्रगुरुधर्म) मोक्षरूपी नगरके द्वार, संसाररूपीदावानलको जलके समान और मनवांछित सिद्धिके एकमात्र कारण हैं. तथा ॥ ७७ ॥ ये ही चारों सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र और तपरूपी माणिक्यके देनेवाले हैं इन चारोंके सिवाय और कोई भी मुक्तिका कारण नहीं है ॥ ७८ ॥ हे मित्र! इस असारसंसारमें भ्रमण करते हुये जीवोंने सर्वप्रकारकी लब्धियें प्राप्त कीं, परन्तु इन चारोंमेंसे एकको भी प्राप्त नहिं की ॥ ७९ ॥

संसारमें देश, जाति, कुल, रूप, इन्द्रियोंकी पूर्णता, नरोगता. दीर्घ जीवन ये सब एकसे एक अधिक दुर्लभ हैं। इनसे भी अधिक दुर्लभ सच्चे धर्मका उपदेश श्रवण तथा ग्रहण है. परन्तु इन सबके प्राप्त होनेपर भी संसाररूपी वृक्षको काटनेवाली कुल्हाड़ी और सिद्धिरूपी महलमें प्रवेश करनेवाली बोधिका (अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र) बहुत दुःखसे प्राप्त होती है ॥ ८०-८१ ॥ हे मित्र! जिस किसी मतमें जो कुछ समीचीन उपदेश है, वह सब जैनमतका ही समझना. क्योंकि मोती अनेक जगह (जौहरीआदिके घर) मिलते हैं परन्तु वे सब समुद्रसे ही निकले हुये हैं ॥ ८२ ॥ जिनेन्द्रभगवानके वचनोंके सिवाय किसीका भी वचन पापोंको नाश करनेवाला नहीं है. क्योंकि सूर्य्यके ही प्रभावसे दुर्भेद रात्रिसम्बंधी अंधकार नाश होता है ॥ ८३ ॥ हे मित्र! जिसप्रकार धान्यको नष्ट करनेवाले सलभ अर्थात् (टिड्डियां) हैं, उसीप्रकार अन्य जितने धर्म हैं, वे सबके सब आदिभूत पूजनीय जिनेन्द्रधर्मको जड़मूलसे नाश करनेवाले हैं ॥ ८४॥ पवनवेगके चित्तमें जो दुर्भेद्य मिथ्यात्वरूपी गांठ थी, सो मनोवेगने पर्वतको वज्रके समान उपर्युक्तवचनोंसे ढीली करके खोल दी, तब नष्ट हो गया है मिथ्यात्वरूपी पर्वत जिसका, ऐसा वह पवनवेग पश्चात्तापके साथ कहने लगा कि—" हाय हाय! मुझ नष्टबुद्धिने अपना जन्म वृथा ही खो दिया ॥ ८५-८६ ॥ हाय! मुझ अज्ञानीने तेरे वचनको न सुनकर जिनेन्द्रके वचनरूपी रत्नोंको छोड़कर अन्यमतका वचनरूपी पत्थर ग्रहण किया ॥८७॥ हे मित्र! मुझे मिथ्या-

त्वरूपी विषके पीनेवाले और उपर्युक्त सकल विडंवना दे- खनेवालेने आपके दियेहुए अभ्रान्त जिनेन्द्रवचनरूपी अमृ- तको नहिं पिया ॥ ८८ ॥ हा मित्र ! तेरे सदा निवारण करने पर भी मैंने निर्दोष सम्यक्त्वरूपी सुधापानको छोडकर जन्मजरामृत्युको देनेवाले महाभ्रमरूप कष्टसे है अंत जिसका ऐसे मिथ्यात्वरूपी विषका सेवन किया ॥ ८९ ॥ हे मित्र ! मेरा तू ही तो वन्धु है, तू ही पिता है. और तू ही मेरा कल्याणकारक गुरु है. क्योंकि-तूने मुझे संसाररूपी अंधकूपमें पड़तेहुये अपने उत्तम वाक्यरूपी रस्सीसे वांधकर पकड़ा (रोका) है ॥ ९० ॥ यदि तू जिनेन्द्रभगवान्कर भाषित धर्मको दिखाकर मुझे नहीं रोकता तो मैं चिरकालतक महादुःखदायक वृक्षोंवाले अ- पारसंसाररूपी बनमें भ्रमण करता रहता ॥ ९१ ॥ हे मित्र ! मैं मिथ्यात्वमोहिनी मिश्रमोहिनी सम्यक्त्वमोहिनी और मिथ्या- त्वरूपी अंधकारसे मोहित होकर कष्टसे है अंत जिसका ऐसी परवाक्यरूपी रात्रिको प्राप्त हो गया था, सो तूने ही मुझे मोह रूपी अंधकारको नाश करनेवाली, जिनेन्द्रसूर्य्यकी वाक्यरूपी उज्वलकिरणोंसे प्रवोधित किया है ॥९२॥ हाय! मैं निराकुल- रूप सिद्धिपुरीमें प्रवेशकरानेवाले जिननाथकर-भाषित निर्दोष मार्गको छोड़कर वहुत कालसे दुष्टोंकर दिखायेहुये नर्कमें लेजानेवाले महाभयंकर मार्गमें लग गया ? ॥९३॥ वास्तवमें जी- वोंको उत्तम घर स्त्री पुत्र सेवक वन्धु नगर और ग्रामोंसे भरी हुई राज्यसंपदा पैंड पैंड़पर प्राप्त हो सक्ती है, परन्तु पंडितोंकर

पूजनीय निर्मल तत्त्वरुचिका मिलना कठिन है ॥ ९४ ॥ हे मित्र! मूढजन जिससे दूषित होकर, दिखायेहुये समस्त वस्तुस्वरूपको विपरीत देखते हैं. उस मिथ्यात्वको नष्ट करके तूने ही मुझे अलभ्य निर्मल सम्यक्त्व दिया है ॥ ९५॥ मैंने अब मिथ्यात्वरूपी विषको त्यागकर मनवचनकायसे जिनशासनको ग्रहण किया, सो हे महामते! अब तेरे प्रसादसे मैं व्रतरूपी रत्नसे भूषित हो जाऊं, ऐसा उपाय कर ॥९६॥ दूर होगया है मिथ्यात्व जिसका ऐसे अपने मित्रकी उपर्युक्त वाणी सुनकर मनोवेग अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुवा. सो ठीक ही है, अपने उपायसे मनवांछितकार्य्यकी सिद्धि होनेपर ऐसा कौन पुरुष है कि जिसको तुरंत ही हर्ष न हो? ॥ ९७ ॥ तत्पश्चात् मनोवेगने अन्य कुछ भी न शोचकर उसी वक्त जिनेन्द्रवचनोंसे वासित अपने मित्रको लेकर शीघ्र गतिसे उज्जयिनी नगरीको जानेका प्रबंध किया. सो ठीक ही है ऐसा कौन पुरुष है जो मित्रोंके प्रयोजन साधनेमें प्रमाद करे? ॥ ९८ ॥ जिसप्रकार इन्द्र उपेन्द्र नन्दन वनको जाते हैं, उसीप्रकार अन्धकारको नाश करनेवाले आभूषणोंसे अलंकृत वे दोनों मित्र मनके वेगकी समान चलनेवाले विमानपर चढकर प्रसन्नताके साथ उज्जयिनी नगरीके वनको गये ॥ ९९ ॥ उस वनमें पहुँचकर वे दोनों मित्र मनरूपी घरमें रहनेवाले अनिवार्य्य लोकव्याप्त मोहरूपी अंधकारको वाक्यरूपी किरणोंसे नष्ट करनेमें समर्थ अपरिमाण है ज्ञानकी गति जिनके ऐसे केवलज्ञानीरूप सू-

र्य्यको भक्तिपूर्वक नमस्कार व स्तुति करके जिनमतिनामा मुनिके चरणोंके निकट बैठ गये ॥ १०० ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें अठरहमां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १८॥

जब वे दोनों जिनमतिनामा मुनिके पास बैठ गये, तब मुनिमहाराज मनोवेगकी तरफ दृष्टिकरके बोले कि–हे भद्र! क्या यही तुमारा मनका प्यारा पवनवेग मित्र है? कि-जिसको संसारसमुद्रसे तारनेवाले धर्मग्रहण करानेकी इच्छासे तुमने महाविनयकेसाथ केवली भगवानसे उपाय पूछा था? ॥ १–२ ॥ यह सुनकर मनोवेगने मस्तकपर दोनों हाथ रखकर (हाथ जोड़कर) कहा कि– हे साधो! यही है वह पवनवेग. अब यह व्रतग्रहण करनेकी इच्छासे यहांपर आया है ॥ ३ ॥ हे साधो! मैंने इसको पटने नगरमें लेजाकर अनेकप्रकारके दृष्टान्तोंसे समझाकर मुक्तिरूपी घरमें प्रवेश करनेवाला सम्यक्त्व ग्रहण करादिया है ॥ ४ ॥ हे साधो! वमन करदिया है मिथ्यात्व जिसने ऐसा पवनवेग इस समय जिसप्रकार व्रतरूपी आभरणसे भूषित हो जावे, ऐसा उपदेश दीजिये ॥ ५ ॥ यह सुनकर जिनमतिनामा मुनिमहाराजने कहा कि–हे भद्र! परमात्मा और गुरुकी साक्षीसे सम्यक्त्वपूर्वक श्रावकके व्रत ग्रहण कर क्योंकि व्यापारीके समान साक्षीपूर्वक व्रत ग्रहण करनेवाला भ्रष्टताको प्राप्त नहिं होता. इसकारण यह व्रत साक्षीपूर्वक ही ग्रहणकरने योग्य है ॥ ६–७ ॥ जिसप्रकार खेतकी क्यारीमें जलके बिना

रोपण कियाहुवा धान्य फलीभूत नहीं होता, उसीप्रकार सम्यक्त्वके विना ग्रहण करना भी सफल नहिं होता ॥ ८॥ गहरी नींवके देवमंदिरके सदृश सम्यक्त्वसहित जीवोंका ही दुर्धरव्रत निश्चल होता है ॥ ९ ॥ जिनेन्द्र-भगवानकरभाषित्त जीव अजीव आस्रव वंध संवर निर्जरा और मोक्ष इन सप्त तत्त्वोंके श्रद्धानकरनेको सत्पुरुषोंने व्रतोंको पोषनेवाला सम्यक्त्व कहा है ॥ १० ॥ इस पवित्र सम्यग्दर्शनको शंका कांक्षादि आठ दोषरहित और संवेग वैराग्य दया और आस्तिक्यादि गुणोंकर सहित धारणकरनेवाले पुरुषका ही व्रत (चारित्र) फलवान् होता है ॥ ११ ॥

श्रावकाचारका वर्णन ।

श्रावकाचारमें पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इसप्रकार द्वादशव्रत कहे गये हैं ॥ १२ ॥

१ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय ४ ब्रह्मचर्य्य और ५ असंगता (अपरिग्रहत्व) इनके एकदेश धारण करनेको पांच अणुव्रत कहते हैं ॥ १३ ॥ हे वत्स ! व्रतको धारण करना तो सहज है परन्तु उसकी रक्षा करना कष्टकारक है. जैसें वांसका काटना तो सहज है परन्तु घसना बड़ा कठिन है ॥ १४ ॥ जिसप्रकार मनवांछितसुखको देनेवाले धनको घरमें छिपाकर रक्षा करते हैं, उसीप्रकार अपने चित्तरूपी घरमें ग्रहण कियेहुये व्रतरूपी रत्नको रखकर यत्नसे सदा रक्षा करना चाहिये ॥ १५ ॥ क्योंकि जो व्रत प्रमादसे नष्ट हो जाता है वह फिरसे प्राप्त नहिं होता. क्या कोई समुद्रमें

डाला हुवा दिव्यरत्न ला देनेको समर्थ है ? कदापि नहीं ॥ १६ ॥

त्रस और स्थावरके भेदसे जीव दो प्रकारके हैं उनमेंसे व्रतकी इच्छाकरनेवाले श्रावकको (गृहस्थको) त्रस जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये, त्रस जीवोंकी रक्षा करनेको ही अहिंसाणुव्रत कहा है ॥ १७ ॥ दो इन्द्रियवाले तीन इन्द्रियवाले चतुरिन्द्रियवाले और पांचइन्द्रियवाले इन ४ प्रकारके त्रस जीवोंको जानकर अपने हितकी वांछा करनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि मनवचनकायसे इनकी रक्षा करें ॥ १८ ॥ हिंसा दो प्रकारकी है. एक आरंभी दूसरी अनारंभी. सो मुनि तो दोनों ही प्रकारकी हिंसाको छोड़ते हैं. परन्तु गृहस्थ अनारंभी हिंसाको ही छोड़ता है ॥ १९ ॥ जो श्रावक मोक्षकी इच्छा रखनेवाले और करुणाके धारक हैं. उनको चाहिये कि निरर्थक स्थावर जीवोंकी हिंसा भी नहिं करें ॥ २० ॥ वहुतसे दयाहीन देवता, अतिथि, औषधि, पितृयज्ञ व मंत्रादि साधनेकेलिये जीवोंकी हिंसा करते हैं, सो इनके अर्थ कदापि जीवहिंसा नाहिं करना चाहिये ॥ २१ ॥ किसी जीवको बांधना, मारना, नासिकादिका छेदन भेदन करना, वहुत भार लादना, भूखा प्यासा रखना, इत्यादि अतीचारोंसहित हिंसाका त्याग करनेसे अहिंसाणुव्रत स्थिर होता है ॥ २२ ॥

जिह्वास्वादके वशीभूत हो मांसभक्षणके लोभसे, भयभीत जीवोंका प्राण हरना कदापि योग्य नहीं ॥ २३ ॥ जो पुरुष अपने मांसकी पुष्टिकेलिये परके मांसको खाता है वह निर्दयी हिंसक नरकके अनन्तदुःखोंसे नहीं छूट सकता है

॥ २४ ॥ यह तो नियम ही है कि—मांसभक्षीके चित्तमें दया किसीप्रकार भी नहीं हो सक्ती. जब दया ही नहीं है तो उस निर्दय पुरुषमें धर्मांश कहांसे हो ? और धर्मरहित जीव अनेक दुःखोंके घर सातवें नरकको जाता है ॥२५ ॥ जिसका चित्त प्राणीघात करते समय देखने व स्पर्श करनेको दौड़ता है, वह भी नरकमें जाता है तो फिर हिंसा करनेवाला नरकमें क्यों नहिं जायगा ? ॥ २६ ॥ जो पुरुष मांसकी लोलुपतासे जन्मभर हिंसा करता है, मैं देखता हूं कि वह नरकरूपी कूपसे कभी नहीं निकलेगा ॥ २७ ॥ जो मनुष्य मांसभक्षणकरनेमें रत होता है, उसको नरकमें नारकी जीव लोहेकी शलाकाओंसे छिन्नभिन्नकरकें जबरदस्ती पकड़कर जाज्वल्यमान वज्राग्निमें डाल देते हैं ॥ २८ ॥ जिसप्रकार मांसभक्षी सिंहका चित्त मृगादिकको देखते ही उनके मारनेको चलित होता है. उसीप्रकार मांसभक्षी मनुष्योंकी बुद्धि भी जीवोंके मारनेमें प्रवर्तती है. इसकारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि मांसभक्षणका त्याग करें ॥ २९ ॥ जो नीच उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थोंको छोड़कर मांसभोजन करते हैं, वे निश्चयकरके महादुःखमय नरकोंसे कभी नहिं निकलेंगे ॥ ३० ॥ बहुत तो क्या मांसभक्षी और कुत्तोंमें कुछ भी भेद नहीं है इसकारण हितैषी पुरुषोंको कालकूटविषकी समान जानकर मांसको अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ३१ ॥

जिसके द्वारा दावानलसे लताके समान लोकमर्यादा नष्ट हो जाती है, उस धर्म अर्थको नष्टकरनेवाली शरावको (मदिराको) कदापि नहिं पीना चाहिये ॥ ३२ ॥ मदि-

रासे उन्मत्त होकर मनुष्य अपनी माता बहन और पुत्रीको भी भोगनेकी इच्छा करने लग जाता है, इसलिये मद्यसे अधिक निन्द्य और दुःखदायक पदार्थ जगतमें और कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ जो पुरुष मद्य पीता है, वह पागल होकर रास्तेमें गिरपड़ता है. उसके मुहमें कुत्ते पेशाव कर जाते हैं और चौर कपड़े चुराकर ले जाते हैं ॥ ३४ ॥ जिसप्रकार दावाग्नि वृक्षोंको जला देती है, उसीप्रकार मद्यपान करनेसे मनुष्यके चित्तसे विवेक संयम क्षमा सत्य शौच (पवित्रता) दया जितेन्द्रियता आदि समस्त धर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ मद्यके समान न तो कोई कष्टदायक है, न कोई अज्ञानदायक है, और न कोई निंदनीय और महाविष है ॥३६॥ जो पुरुष मद्यपीकर मतवाला (पागल) हो जाता है, वह जिस जिसको देखता है उसी २ के आगे निर्लज्ज होकर नमस्कार करता है· रोता है. चक्कर लगाता है. स्तुति करता है· शब्द करता व गाता है. तथा नृत्य करने लग जाता है ॥३७॥ मद्य जो है सो रोगोंको अपथ्यके समान समस्त दोषोंका मूल है अतएव इसका सदैवके लिये त्याग करना चाहिये ॥ ३८ ॥

अनेक जीवोंकी हिंसासे उत्पन्न हुवा, मधुमक्खियोंकी जूठन, और म्लेच्छभीलोंकी लालोंसे मिलाहुवा महापापदायक मधु (शहद) दयालु पुरुषोंको सर्वथा भक्षण करना योग्य नहीं है ॥३९॥ अनेकजीवोंसे भरेहुये सातग्रामोंके जलानेमें जितना पाप होता है, उतना पाप मधुके एक कण भक्षण करनेमें लगता है ॥ ४० ॥ जो धर्मात्मा पुरुष होते हैं, वे मक्खियोंके द्वारा एक २ पुष्पसे लाकर वमन किये हुए उच्छिष्ट अपवित्र

मधुको कदापि भक्षण नहिं करते ॥ ४१ ॥ मद्य मांस और मधुमें प्रत्येकके रसानुसार भिन्न २ जातिके जीव होते हैं, वे सब-के सब निर्दयी जीवोंकेद्वारा भक्षण किये जाते हैं ॥ ४२ ॥

जो नीच पुरुष प्रत्यक्ष जीवोंके भरे हुये पांचप्रकारके वड, पीपल, ऊमर, (गूलर) पाकर और कठूमर (अंजीर) उदुम्बरफल खाते हैं, उनके चित्तमें दया कहांसे हो सक्ती है? ॥ ४३ ॥ जो सात्त्विक जिनाज्ञाके पालनेवाले और जीव-हिंसाके त्यागी हैं, उनको पांचप्रकारके उदुम्बरफल सर्वथा छोड़ देना चाहिये ॥ ४४ ॥ इनके आतिरिक्त जीवोत्पत्तिके कारण कंद, मूल, फल, पुष्प, नवनीत (मक्खन) और अन्ना-दिक भी दयावान् पुरुषोंको छोड़देने चाहिये ॥ ४५ ॥

दूसरे—स्वहितवांछक पुरुषोंको काम क्रोध मद द्वेष लोभ मोहादिके वशीभूत होकर परको पीड़ाकारी वचन बोलना छोड़ देना चाहिये ॥ ४६ ॥ जिनवचनोंके बोलनेसे धर्मकी हानि हो, लोकसे विरोध हो, और विश्वास नष्ट हो जावे, ऐसे वचन क्यों कहना? ॥ ४७ ॥ जिस बचनसे नीचता उत्पन्न हो, जिस असत्यवचनकी म्लेच्छ लोग भी निंदा करें, ऐसा असत्य वचन श्रावकजन कदापि नहिं कहते ॥ ४८ ॥

तीसरे—खेतमें, गांवमें, खलियानमें, (खलेमें), गौशालामें, पत्तनमें (नगरमें) वनमें, और मार्गमें भूले हुये गिरेहुये हरायेहुये गडे हुये रक्खेहुये वा स्थापन कियेहुये विना दियेहुये (मालि-ककी आज्ञाके विना) परद्रव्यको निर्माल्यके समान देखते हुये परतापसे भीत बुद्धिमान् पुरुष कदापि ग्रहण नहिं करते. क्योंकि—धनादिक हैं, सो जीवोंके समस्तकार्य्योंको साधने-

वाले वाहरके प्राण हैं, सो उनके नष्ट होनेपर मनुष्य प्रायः शीघ्र ही मर जाते हैं ॥ ४९-५०-५१ ॥ जिसने किसीका द्रव्य हरा, उसने उसके समस्त सुखोंके देनेवाले धर्म वंधु पिता पुत्र कान्ति कीर्त्ति बुद्धि स्त्री आदिक सव हरे ॥ ५२ ॥ मरन होनेमें तो एक क्षणभरके लिये एक जीवको ही दुःख होता है, परन्तु द्रव्यनाश होनेपर मनुष्यको सकुटुंव उमरभर दुःख होता है ॥ ५३ ॥ तथा मच्छ व्याध व्याघ्र शिकारी ठग आदिक निरंतर दुःखदेनेवालोंसे भी चौर अधिक पापीष्ठ होता है ॥ ५४ ॥ जो नर परद्रव्यहरण करता है, उसको इस लोकमें तो राजादिकसे सर्वस्वहरणादि घोर दंड मिलता है और परलोकमें नरकके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥

चौथे-नरकरूपी कूपका मार्ग, स्वर्गरूपी घरमें जानेसे अटकानेवाली खाई जो परस्त्री,उसके सेवनका त्यागकर व्रती पुरुषको स्वदारसन्तोष व्रत धारण करना चाहिये ॥ ५६ ॥ जो स्वर्ग-मोक्षादिके सुखप्राप्तिकी इच्छा रखते हैं, उन पुरुषोंको अपनी स्त्रीके अतिरिक्त समस्त स्त्रियोंको माता वहन वेटीसमान देखना चाहिये ॥५७॥ परस्त्री अत्यंत स्नेहयुक्त होनेपर भी दुःखदेनेवाली है. निर्मल (सुंदर) होनेपर भी पापरूपी मैलकी करनेवाली है, रसकी आधार होनेपर भी तृष्णाको बढ़ानेवाली है, जड़ता (जलता) सहित होनेपर भी आतापकी बढ़ानेवाली है, अपना सर्वस्व देनेपर भी द्रव्य हरनेवाली है, इसप्रकार विरुद्धाचारसे प्रवर्तनेवाली जो परस्त्री सो दूरसे ही त्यागने योग्य है ॥ ५८-५९ ॥ यद्यपि स्वस्त्री और पर-स्त्रीके सेवनमें कुछ भी विशेष नहीं है. परन्तु परस्त्रीसेवन

करनेवाला तो नरकमें जाता है और स्वदारसन्तोषी स्वर्गको जाता है. कारण इसका यही है कि स्वस्त्रीकी अपेक्षा परस्त्रीसेवनमें अनुराग अधिक होता है. और परद्रव्यमें राग करना ही दुःखका मुख्य कारण है ॥ ६० ॥ जो स्त्री अपने पतिको छोड़कर निर्लज्ज हो परपुरुषके साथ रमण करती है, उस परस्त्रीपर किसप्रकार विश्वास किया जाय? ॥ ६१ ॥ रमणीय देखनेसे सुख न होकर आकुलता और नरकमें ले जानेवाले घोर पाप होनेके सिवाय कुछ भी प्राप्ति नहीं होती है ॥६२॥ जिसके संगमात्रसे उभय लोक सम्बंधी हानि होती है,ऐसी परस्त्रीको लोग स्वदारसन्तोषता छोड़कर किसकारण सेवन करते हैं? ॥ ६३ ॥ जो पुरुष कामरूप अग्निसे सन्तप्त परस्त्रीको सेवन करता है, वह नरकमें साक्षात् वज्राग्निसे संतप्त (लाल) की हुई लोहमयी स्त्रीसे (पुतलीसे) चिपटाया जाता है ॥ ६४ ॥ ऐसा जानकर विद्वानोंको चाहिये कि यमराजकी दृष्टिके समान प्राणसंहार करनेवाली परस्त्रीको छोड़ देवें ॥ ६५ ॥

पांचवें—जिसप्रकार दुःसहतापकी देने वाली अग्नि जलसे शमन की जाती है, उसी प्रकार अपना बढ़ा हुवा लोभ सन्तोषकरके शमन करना चाहिये ॥ ६६ ॥ जो संतोषव्रतके धारी हैं, उनको चाहिये कि, धन धान्य गृह क्षेत्र द्विपद चतुष्पद आदिका परिमाण कर लेवें ॥ ६७ ॥ जिसप्रकार काष्ठके डालनेसे अग्नि बढ़ती है, उसीप्रकार कषायोंके छोड़नेसे धर्म और स्त्रीके संगसे काम और लोभसे लोभ बढ़ता है ॥ ६८ ॥ नहिं जीताहुवा लोभ मनुष्यको भयानक नरकमें ले जाता है सो

ठीक ही है. जो वलवान् वैरी होते हैं, वे क्या क्या कष्ट न देते ? ॥ ६९ ॥ उपार्जन की हुई धनसम्पदाओंके भोगने वहुत हैं, परन्तु जव यह जीव उस आरंभसे उपार्जन कियेहु पापका फल नरकमें भोगता है उसवक्त वे धनसम्प भोगनेवाले पुत्रकलत्रादि कोई भी सहायक नहिं होते॥ ७० जिस मनुष्यके निश्चल संतोष है, उसके देव किंकर हैं, कल्प वृक्ष उसके हाथमें हैं, और निधियें उसके घरमें हुई हैं, ऐसा समझना चाहिये. क्योंकि–इन सव सुखदाय सम्पदाओंके होनेपर भी जिसके चित्तमें कल्याण करनेवा संतोष नहीं है, वह सदा दरिद्र और दुःखी ही है ॥ ७१–७२

इन पांच अणुव्रतोंके सिवाय दिशा, देश और अन दंडसे विरक्त होना ऐसे तीनप्रकारके गुणव्रत हैं. मो इच्छा करनेवाले श्रावकोंको ये तीनों गुणव्रत मनवचनकाय धारण करना चाहिये ॥ ७३ ॥

दशोंदिशाओंमें विधिपूर्वक जाने आनेका परि करके उससे आगे नहीं जाना सो पहिला दिग्व्रतना गुणव्रत है ॥ ७४ ॥ इस गुणव्रतके धारणकरनेसे– मर्य दाके वाहर त्रस और स्थावर दोनोंप्रकारके जीवोंकी हिंस का सर्वथा त्याग हो जानेसे उस श्रावकके घरमें रहते भी मर्य्यादासे वाहर महाव्रत होता है ॥ ७५ ॥ जिसने य दिग्व्रत धारण किया, उसने तीनलोकको उल्लंघन करनेवाल लोभरूपी अग्निका स्तंभन किया अर्थात् अपना लो घटाया ॥ ७६ ॥

दिग्व्रतमें जो दशों दिशावोंका परिमाण किया, उ

दशोंदिशावोंमें कोई भी प्राणी एक दिनमें नहिं जा सक्ता इस कारण प्रतिदिन, सात दिन, पन्द्रह दिन अथवा महीने भर इत्यादि कालकी मर्य्यादासे क्षेत्रका परिणाम कर लेना, सो दूसरा देशव्रत है. इसका फल उपर्युक्त गुणव्रतके समान त्याज्यक्षेत्रमें महाव्रत पालनेकासा और भी अधिक होता है, सो ठीक ही है. विशेषकारणसे विशेषकार्य्य क्यों न हो ? ॥ ७७–७८ ॥

व्यर्थ हिंसादिके त्यागनेकी इच्छा रखनेवालोंको धर्मकार्य्योंमें अनुपकारी और पापकार्य्योंमें सहायक ऐसे पांचप्रकारके अनर्थदंडोंको त्यागना चाहिये ॥ ७९ ॥ दयावानश्रावकोंको चाहिये कि हिंसाके कारण मयूर कुत्ता बिल्ली मैना तोता कुक्कुटादिकको पकड़कर पालना पोषणा न करें ॥ ८० ॥ तथा हिंसाके कारण फांसी, दंडा, विष, शस्त्र, हल, रस्सी, अग्नि, धात्री, लाख, लोहा, नील इत्यादि पदार्थ किसीको मांगनेसे न दें ॥८१॥ इसके अतिरिक्त जिनमें जीवोत्पत्तिकी पूर्णसंभावना हो, ऐसे संधान (आचारमुरब्बा), फूलीहुई (पुष्पित) वस्तु, वींधे हुये सड़े हुये पदार्थोंका भक्षण भी कदापि न करें ॥ ८२ ॥

३. सामायिक, उपवास, भोगोपभोगपरिमाण, और आतिथि संविभाग ये चार प्रकारके शिक्षाव्रत (मुनिव्रतकी शिक्षा देनेवाले) हैं ॥ ८३ ॥

प्रथम–जीवन मरण सुखदुःख योग वियोगादिकमें समान भाव रखकर निरालस्य हो नित्य समायिक करना चाहिये ॥ ८४ ॥ सामायिकके समय परवस्तु तथा अन्यान्य

समस्त कार्य्योंसे विरक्त होकर समभावपूर्वक दो आसन (कायोत्सर्ग वा पद्मासन) द्वादश आवर्त (एक २ दिशामें तीन तीन) और चारों दिशाओंमें चार प्रणति करके त्रिकाल वंदना (सामायिक) करना चाहिये ॥ ८५ ॥

दूसरे–पर्वचतुष्टयमें (दो अष्टमी दो चतुर्दशीके दिन) समस्तप्रकारके आरंभ और भोगोपभोगादिका त्यागकरके भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये॥८६॥ जिस उपवासमें पांचो इन्द्रियें अपने २ विषयसे निवृत्त होकर आत्मामें ही स्थिर हों, किसीविषयमें भी चलायमान न हों इसप्रकार जिते-न्द्रियताकेसाथ चार प्रकारके आहारका त्याग करके समस्त-दिनरात ध्यानस्वाध्यायमें ही विताया जाय, उसीको भग-वानने उपवास करना कहा है ॥ ८७–८८ ॥

तीसरे–भोग्य (जो एकवार भोगनेमें आवे) उपभोग्य (जो वारंवार भोगनेमें आवे) का जो परिमाण (गिनती) करना सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है. जिसमें पुष्पमाला गन्धलेपन पक्वान्न ताम्बूल भूषण स्त्री वस्त्र सवारी आदिकका नित्यप्रति परिमाण करके व्रतकी इच्छा रखने-वाले सज्जन पुरुषोंको सेवन करना चाहिये ॥ ८९–९० ॥

चौथे–घरपर आये हुये आरंभत्यागी, जितेन्द्रिय, उत्तम श्रावक (क्षुल्लक एलक), श्राविका मुनि अर्जिकादि अति-थिकेलिये भक्तिपूर्वक अन्नपान औषधादिकका विभाग करना अर्थात् दानकरके सेवन करना सो अतिथिसंविभाग है, सो श्रावकमात्रको करना चाहिये॥९१॥ जो भक्त पुरुष हैं, उनको चाहिये कि कठिनसे है अंत जिसका, ऐसे संसारका (भ्रम-

णका) नाश करनेकेअर्थ विनयपूर्वक चार प्रकारका प्राशुक आहार मुनिअर्जिका और श्रावक श्राविकाओंकेलिये नित्यप्रति प्रदान किया करैं ॥९२॥ मुनिको दान देते समय श्रावकको दातारके श्रद्धादिक सातगुणसहित नवधा भक्तिपूर्वक प्रीतिके-साथ प्रवर्तना चाहिये. क्योंकि विना भक्तिके दियाहुवा दान फलदायक नहीं है ॥ ९३ ॥

इन १२ व्रतोंके पालनेवाले बुद्धिमान सत्पुरुषोंको चाहिये कि किसी समयमें अनिवार्य्य मरणकाल आ जावे, तो अपने कुटुंबियोंको पूछकर सल्लेखना (सन्यासपूर्वक मरना) धारण करै. क्योंकि सज्जन पुरुष समयानुसार कार्य करतेही है ॥ ९४ ॥ प्राणान्तके समय गुरुजनोंके सन्मुख ज्ञानसहित दर्शन और चारित्रका शुद्ध करनेवाला चतुर पुरुष समस्त दोषोंकी आलोचना करके चार प्रकारके आहार और शरीरसे रागभाव छोड़ दे ॥ ९५ ॥ जो सुधी पुरुष क-षाय निदान और मिथ्यात्वरहित होकर सन्यासविधिको धार-णपूर्वक मरण करते हैं, वे मनुष्य और देवलोकके सुखोंको भोग कर २१ भवके भीतर २ मोक्षपदको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥

इसप्रकार श्रावकके द्वादशव्रत जिनेन्द्र भगवानने कहे है सो जो कोई संसारसागरमें पड़नेके भयसे डरनेवाला इनको धारण करता है, वह समस्त प्रकारके कल्याणको प्राप्त होता है ॥९७॥

इसके अतिरिक्त जितेन्द्रियप्रवृत्ति श्रावक है, सो भ्रू नेत्र हुंकार करांगुलि आदिकसे इशारा करनेका और लोलु-पताका त्यागकरके व्रतोंको वढ़ानेवाला मौनधारणपूर्वक भो-जन करता है तथा—॥९८॥ सुरनरकरके जिनके चरणपूजित हैं

समस्त कार्य्योंसे विरक्त होकर समभावपूर्वक दो आसन (कायोत्सर्ग वा पद्मासन) द्वादश आवर्त (एक २ दिशामें तीन तीन) और चारों दिशाओंमें चार प्रणाति करके त्रिकाल वंदना (सामायिक) करना चाहिये ॥ ८५ ॥

दूसरे–पर्वचतुष्टयमें (दो अष्टमी दो चतुर्दशीके दिन) समस्तप्रकारके आरंभ और भोगोपभोगादिका त्यागकरके भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये॥८६॥ जिस उपवासमें पांचो इन्द्रियें अपने २ विषयसे निवृत होकर आत्मामें ही स्थिर हों, किसीविषयमें भी चलायमान न हों इसप्रकार जितेन्द्रियताकेसाथ चार प्रकारके आहारका त्याग करके समस्तदिनरात ध्यानस्वाध्यायमें ही विताया जाय, उसीको भगवानने उपवास करना कहा है ॥ ८७–८८ ॥

तीसरे–भोग्य (जो एकबार भोगनेमें आवे) उपभोग्य (जो बारंबार भोगनेमें आवे) का जो परिमाण (गिनती) करना सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है. जिसमें पुष्पमाला गन्धलेपन पक्वान्न ताम्बूल भूषण स्त्री वस्त्र सवारी आदिकका नित्यप्रति परिमाण करके व्रतकी इच्छा रखनेवाले सज्जन पुरुषोंको सेवन करना चाहिये ॥ ८९–९० ॥

चौथे–घरपर आये हुये आरंभत्यागी, जितेन्द्रिय, उत्तम श्रावक (क्षुल्लक एलक), श्राविका मुनि आर्जिकादि अतिथिकेलिये भक्तिपूर्वक अन्नपान औषधादिकका विभाग करना अर्थात् दानकरके सेवन करना सो अतिथिसंविभाग है, सो श्रावकमात्रको करना चाहिये ॥९१॥ जो भक्त पुरुष हैं, उनको चाहिये कि कठिनसे है अंत जिसका, ऐसे संसारका (भ्रम-

णका) नाश करनेकेअर्थ विनयपूर्वक चार प्रकारका प्राशुक आहार मुनिआर्जिका और श्रावक श्राविकाओंकेलिये नित्यप्रति प्रदान किया करैं ॥९२॥ मुनिको दान देते समय श्रावकको दातारके श्रद्धादिक सातगुणसहित नवधा भक्तिपूर्वक प्रीतिके-साथ प्रवर्तना चाहिये. क्योंकि विना भक्तिके दियाहुवा दान फलदायक नहीं है ॥ ९३ ॥

इन १२ व्रतोंके पालनेवाले बुद्धिमान सत्पुरुषोंको चाहिये कि किसी समयमें अनिवार्य्य मरणकाल आ जावे, तो अपने कुटुंबियोंको पूछकर सल्लेखना (सन्यासपूर्वक मरना) धारण करै. क्योंकि सज्जन पुरुष समयानुसार कार्य करतेही है ॥ ९४ ॥ प्राणान्तके समय गुरुजनोंके सन्मुख ज्ञानसहित दर्शन और चारित्रका शुद्ध करनेवाला चतुर पुरुष समस्त दोषोंकी आलोचना करके चार प्रकारके आहार और शरीरसे रागभाव छोड़ दे ॥ ९५ ॥ जो सुधी पुरुष कषाय निदान और मिथ्यात्वरहित होकर सन्यासविधिको धारणपूर्वक मरण करते हैं, वे मनुष्य और देवलोकके सुखोंको भोग कर २१ भवके भीतर २ मोक्षपदको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥

इसप्रकार श्रावकके द्वादशव्रत जिनेन्द्र भगवानने कहे हैं सो जो कोई संसारसागरमें पड़नेके भयसे डरनेवाला इनको धारण करता है, वह समस्त प्रकारके कल्याणको प्राप्त होता है ॥९७॥

इसके अतिरिक्त जितेन्द्रियवृत्ति श्रावक है, सो भ्रू नेत्र हुंकार करांगुलि आदिकसे इशारा करनेका और लोलुपताका त्यागकरके व्रतोंको वढ़ानेवाला मौनधारणपूर्वक भोजन करता है तथा—॥९८॥ सुरनरकरके जिनके चरणपूजित हैं

ऐसे निर्दोष पंचपरमेष्ठीकी नैवेद्य गन्ध अक्षत दीप धूप पुष्पादिकसे नित्यपूजा करनी चाहिये ॥ ९९ ॥

जो इस पूजनीय श्रावकव्रतको अतिचाररहित पालन करते हैं वे पुरुष मनुष्य और देवोंकी सम्पदा पाकर निष्पाप हो निर्वाण पदको प्राप्त होते हैं ॥ १०० ॥ व्रतकी प्रशंसा करनेवाली समस्त पापोंको चुरानेवाली जिनमति यतिकी वाणी सुनकर तथा देवमनुष्योंकर पूजित केवलिभगवानके चरणकमलोंको नमस्कार करके वह निर्मल आशयवाला पवनवेग श्रावकके व्रतरूपी रत्नोंसे भूषित हो गया. सो ठीक ही है भव्य पुरुष अपरिमित ज्ञानकी गतिवाले साधुओंकी सदुपदेशरूप वाणीको प्राप्त होकर उसे वृथा कैसे कर सक्ते हैं ? अर्थात् ऐसे साधु पुरुषोंकी आज्ञा अवश्यमेव धारण करते हैं ॥ १०१ ॥

इति श्रीअमितगतिआचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें सतरहवॉ परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १७ ॥

अथानन्तर फिर भी मुनिमहाराजने विद्याधरपुत्रको कहा कि हे भद्र ! उपर्युक्त द्वादशव्रतोंके अतिरिक्त और भी जो कई प्रकारके नियम श्रावकोंको भक्तिपूर्वक पालना चाहिये, सो कहता हूं ॥ १ ॥

जिसमें क्षुद्रकीटादिका संचार रहता है, मुनि लोग चलते फिरते नहीं हैं, भक्ष्यअभक्ष्य वस्तुका भेद मालूम नहिं होता है, आहारपर आये हुये सूक्ष्मजीव दीखते नहीं हैं, ऐसी रात्रिमें दयालुश्रावकोंको कदापि भोजन नहीं करना चाहिये ॥२-३॥ जो पुरुष जिह्वाके वशीभूत होकर रात्रिमें भोजन करता है,

उस नीचके अहिंसाणुव्रत कहां ? ॥ ४ ॥ जो पुरुष रात्रिको भोजन करता है, वह समस्त प्रकारकी धर्मक्रियासे हीन है. उसमें और पशुमें सिवाय शृङ्गके (सींगके) कोई भी भेद नहीं है ॥ ५ ॥ शूकर सांवर कंक मार्जार तीतर वक कुत्ता सारस वाज कौवा मेंडक सर्प वौना (वामन) दादखुजलीवाला, गूंगा, अधिक केशवाला, कर्कश, शठ, दरिद्र, दुर्जन, कोढ़ी इत्यादि जो होते हैं, सो रात्रिभोजनके पापसे ही होते हैं ॥ ६—७ ॥ जो रात्रिभोजनके त्यागी है, वे पंडित प्रियवादी निरोगी सज्जन मंदरागी त्यागी भोगी यशस्वी समुद्रपर्य्यन्त पृथिवीके पति, आदरणीय, भाग्यमान वक्ता कामदेवके समान सुन्दर और पूजित होते हैं ॥ ८—९ ॥ रात्रिभोजनके प्रभावसे सर्वत्र दुःखकी ही प्राप्ति होती है और दिवसके भोजनसे सुखकी प्राप्ति होती है, इसकारण दिनमें भोजन करना ही हितकारी है ॥ १० ॥ जो मनुष्य दिवसके अन्तकी दो घड़ीसे पहिले २ भोजन कर लेता है, उसीको महाभाग अनस्तमितभोजी (रात्रिभोजनका त्यागी) कहा है ॥ ११ ॥ जो पुरुष सवेरे और शामके दो दो घटिका समयको छोड़कर भोजन करते हैं, उनके महीनेमें दो उपवास सहजमें ही हो जाते हैं ॥ १२ ॥

जो सुधी शुक्लपंचमीके दिन उपवास करता है, वह मनुष्य भव और स्वर्गके सुखको प्राप्त होकर मोक्षमें जाता है ॥ १३ ॥ यह उपवास आषाढ कार्तिक और फाल्गुन इन तीन महीनोंमेंसे किसी एक महीनेमें गुरुकी साक्षीपूर्वक विधिकेसाथ ग्रहण करके पांच वर्ष और महीनेपर्य्यन्त विधि

और भक्तिसहित करना चाहिये ॥ १४-१५ ॥ उपवासके करनेसे जिसप्रकार शरीर क्षीण होता है, उसीप्रकार जीवके अनेक भवके संचय कियेहुये कर्म निःसंदेह क्षीण हो जाते हैं ॥ १६ ॥ तथा जिसप्रकार सूर्य्य तड़ागोंके जलको शोषण करता है, उसीप्रकार यह पंचमीका उपवास भी जीवोंके पूर्वकालके संचित किये हुये पापोंको शोषण (नष्ट) करता है ॥ १७ ॥ उपवास किये विना इन्द्रियां और कामदेव जीते नहिं जा सक्ते. क्योंकि वनके वड़े २ हस्तियोंको सिंह-ही मार सक्ता है ॥ १८ ॥

जिसदिन रोहिणी और चन्द्रमाका योग हो, उस दिन भी उपवास करना चाहिये. सो व्रह भी पांच वर्ष और पांच महीनेतक भक्तिपूर्वक करनेसे समस्त सिद्धि प्राप्त होती है. इन दोनों व्रतोंका फल अधिक क्या कहैं तीसरे ही भवमें मोक्ष होती है ॥ १९-२० ॥ ज्ञानी पुरुष वहुधा प्रधानफ-लका वर्णन करते हैं. उसके आनुषंगिक छोटे २ फलोंको नहीं कहते-जैसे खेती करनेमें धान्य होनेको फल कहते हैं. पिराल (पयाल) वगैरहभी अनेक फल होते हैं, परंतु उनको मुख्य नहिं करते. भावार्थ-उपर्युक्त व्रतका मुख्य फल तो तीसरे भव मोक्ष जाना है. इसके सिवाय स्वर्ग मनुष्य भवके अनेकप्रका-रके सुख सौभाग्यादिकी भी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥ इन दोनों उपवासोंके विधिपूर्वक पूरा होनेपर पूर्ण फलकी वांछा करनेवालोंको अपनी विभूतिके अनुसार उद्यापन भी अवश्य करना चाहिये ॥ २२ ॥ यदि किसीकी विधिपूर्वक उद्यापन करनेकी सामर्थ्य न हो, तो द्विगुण विधि करना चाहिये.

अर्थात् १० वर्ष और दश महीनेतक उपवास करना चाहिये. क्योंकि इसप्रकार यदि नहिं किया जाय तो व्रतविधि पूरी कैसे हो? ॥ २३ ॥

संसारको (भवभ्रमणको) नष्ट करनेवाले—अभय आहार औषध और शास्त्र इसप्रकार ये चारों दान भी नित्यप्रति देना चाहिये ॥ २४ ॥

जीवोंको सवसे अधिक प्यारे प्राण हैं. इसकारण जीवोंकी रक्षा करना अर्थात् समस्त दानोंमें अभयदान करना ही श्रेष्ठ है. क्योंकि प्राणीमात्र जो कुछ धंदा रोजगारादि आरंभ करते हैं, सो एक मात्र अपने जीवकी रक्षाके लिये ही करते है इसकारण जीवरक्षासे अधिक श्रेष्ठ कोई भी दान नहिं हो सक्ता ॥ २५–२६ ॥ पुरुषके धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंका आधार जीवन है. सो जिसने जीवदान दिया, उसने तो क्या नहिं दिया? अर्थात् सब कुछ दिया और जिसने प्राण हर लिये उसने बाकी क्या छोड़ा? सब कुछ हर लिया ॥ २७ ॥ जगतमें अनेक प्रकारके भय हैं. इस कारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि जिसप्रकार वने सदा ही जीवरक्षा करते रहैं ॥ २८ ॥

धर्मध्यान साधनेकेलिये मूलकारण शरीर है, और शरीरकी रक्षा अन्नके विना नहिं होती, इसकारण धर्मात्मा पुरुषोंको आहार दान भी सदैव देना चाहिये ॥ २९ ॥ जब दुर्भिक्ष पड़ता है तब अनेक जन क्षुधाशान्ति करनेकेलिये अपने अतिशय प्यारे वालवच्चोंतकको वेच देते हैं. इसकारण आहार जो है सो पुत्रादिकोंसे भी अधिक प्यारा

है ॥ ३० ॥ संसारी जीवोंके लिये इस सर्वनाशी क्षुधारूपी दुःखसे वड़ा और कोई भी दुःख नहीं है. इसकारण जिसने आहार दान दिया उसने क्या नहिं दिया ? और आहारको नष्ट करनेवालेने क्या नहिं हरण किया ? ॥ ३१ ॥ अन्न-दान जो है सो मनुष्यको कांति कीर्ति वल वीर्य यश धन सिद्धि बुद्धि शम संयम धर्मादिक देता है. इसी कारण जगतमें आहारदानी पुरुष ही सुखी और सुख देनेवाले होते हैं ॥ ३२ ॥ जो शरीररक्षा करनेकी शक्ति अन्नभक्षण करनेमें है, वह शक्ति सुवर्ण मणिरत्नोंमें कदापि नहीं है. इसकारण परोपकारी जन मुनियोंके लिये रत्नादिकको छोड़ आहारदान ही दिया करते हैं ॥ ३३ ॥

जब मुनिगण तीव्र व्याधिसे पीड़ित हो जाते हैं तव वे तप करनेमें असमर्थ हो जाते हैं, इसकारण दानीगण उन तप-स्वियोंकी विघ्नकारक व्याधि दूर करनेकेलिये विधिपूर्वक भोजनादिके साथ औषधिका भी दान किया करते हैं॥३४॥ जैसे जलमग्न पुरुष अग्निसे दुखित नहीं होता है, उसीप्रकारसे जो श्रावक रोगी योगियोंको भक्तिपूर्वक औषधदान देता है, वह वातपित्तकफजनित रोगोंसे कदापि पीड़ित नहिं होता॥३५॥

जो शास्त्र द्वेष राग मद मत्सर मूर्च्छा क्रोध लोभ भयादिक-को नष्ट करनेमें समर्थ है, और मोक्षरूपी घरका मार्ग वताने-वाला है, वह अव्यय (अक्षय) सुखकी प्राप्तिके अर्थ मुनि-योंको अवश्य ही देना चाहिये ॥ ३६ ॥ शास्त्रका स्वाध्याय करनेसे विवेक होता है. विवेकसे अशुभ कर्मोंकी हानि होती है. और कर्मोंकी हानिसे मोक्षपदकी प्राप्ति होती है, इस-

कारण अनर्थोंका नष्टकरनेवाला शास्त्र भी मुनिकेलिये अवश्य देना चाहिये ॥ ३७ ॥ जिसदानमें जीवोंको पीड़ा न हो, जिसके प्रभावसे यति विषयरूपी वैरीके वश न हो, और पापोंको नाश करनेवाले तपकी वृद्धि हो, वही दान सुखका देनेवाला और श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ३८ ॥

इसके सिवाय रत्नत्रयधर्मका वढ़ानेवाला और भी निर्दोष दान, शील संयम दया—जितेन्द्रियताके घर और परिग्रहरहित उत्तम पात्रको देना योग्य है ॥ ३९ ॥ गृह कलत्रादिसे दूषित पात्र, गृहकलत्रादिमें रहनेवाले दानीको वांछित निवृति (सुख) कदापि नहिं दे सक्ता सो नीति ही है कि समुद्रमें पत्थर पत्थरको नहिं तारसक्ता ॥ ४० ॥

चतुर पुरुषोंको चाहिये कि—मुखसे मीठी मीठी वातें वनानेवाली, चित्तमें दुष्टता रखनेवाली, सर्वतया नीच, सैंकड़ों व्यभिचारियों द्वारा मर्दन की हुई, और अशुभ लेश्यायुक्त वेश्याको कदापि न सेवें ॥ ४१ ॥ जो, मनसे एकको चाहती है, वचनसे दूसरेको प्यार वताती है, और तनसे किसी तीसरेको ही सेवन करती है. ऐसी नये नये पुरुषोंको चाहनेवाली वेश्या किसप्रकार सुखदायक हो सक्ती है? ॥ ४२ ॥ नष्ट भया है शम संयम योग जिसका, ऐसा जो पुरुष रतिमें मोहितचित्त होकर मद्य मांस भक्षण करनेवाली वेश्याका मुख चुम्वन करता है, उसके व्रतरूपी रत्न किसप्रकार रह सक्ता है? ॥ ४३ ॥ जो नीचाचारी मूढ सर्वकाल वेश्याके वशीभूत हो पुत्र मित्र वांधव और आचार्य्योंके (सदुपदेशकोंके)

समूहका कहा नहिं मानता, उसको शान्त पुरुषोंद्वारा आराधनेयोग्य धर्मकी प्राप्ति कहां ? ॥ ४४ ॥

यद्यपि निजस्त्री सुखकारी है परन्तु अतिशय आसक्तिसे सेवन की हुई वह भी महादुःखका कारण है. जिसप्रकार कि—शीतविशिष्ट मनुष्यको अग्नि प्यारी है तथापि अतिशय सेवन की हुई क्या शरीरको व खूनको जलानेवाली नहीं है ? अवश्य है. इसकारण जो जितेन्द्रिय, तीव्र कामके वाणोंके गर्वको नष्ट करनेवाला महापुरुष अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वोंमें सदैव मैथुनकर्मका त्यागी है, वह समस्त देवताओंद्वारा पूज्य स्वर्गका इन्द्र होता है ॥ ४५–४६ ॥

जो पूर्वोपार्जित पुराने धनको क्षणभरमें नष्टकरके घरमें अनिवार्य्य दरिद्रको भरता है वह जूवाखेलना भी बुद्धिवानोंको अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ४७ ॥ जुवारीको भाई वंधु छोड़ देते हैं. पंडितजन उसकी निंदा करते है, दुर्जन पुरुष हंसी करते हैं, सज्जन पुरुष उसकी दुर्दशापर अफसोस करते हैं, और अन्यान्य जुवारी उसको वांधते हैं, लातें मारते हैं, पीड़ा देते हैं और नाना प्रकारकी ताड़नायें करते हैं ॥ ४८ ॥ यह द्यूतकर्म धर्म अर्थ कामको नष्ट करनेमें चतुर, समस्त प्रकारके पापकर्मोंको वढ़ानेकेलिये तत्पर और शीलसंयमियोंके द्वारा निन्दनीय है. इसकारण द्यूतसे अधिक अनिष्टकारक और कोई भी नहीं है ॥ ४९ ॥ जो मूढ़ निर्लज्ज होकर अपनी माताके वस्त्रको भी चुरा लेता है, वह नीच जुआरी अन्य समस्त जनोंको कष्टदायक क्या कार्य्य नहीं करेगा ? ॥ ५० ॥ इस लोकमें मद्य पीना १, मांसभक्षण २,

परद्रव्यहरण ३, द्यूत खेलना ४, शिकार करना ५, परस्त्रीसेवन ६, वेश्यासंग ७ ये सातों ही नीच पुरुषोंके आचार हैं, सो श्रेष्ठपुरुषोंको त्यागना चाहिये ॥ ५१ ॥

जो मनुष्य श्रावकके ११ स्थानोंमें (दरजोंमें) रहता है, प्रवर्तता है, वही उत्कृष्ट श्रावक होता है. और वही संसार-परिभ्रमणको नष्ट करनेमें समर्थ ऐसा चौदह गुणस्थानवर्ती योगी होनेको समर्थ होता है ॥ ५२ ॥

१. जिसके हृदयमें हारयष्टिके सदृश तापको हरनेवाली, और चंद्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल, निर्मलदृष्टि (सम्यक्त्व) होती है, वही दर्शनप्रतिमाका धारक निर्दोषद्युतिवाला दर्शनी नामक श्रावक होता है ॥ ५३ ॥

२. जो महात्मा दुर्लभ्य धनको घरमें रखनेके समान अपने हृदयरूपी घरमें अतिचाररहित द्वादश व्रतरत्नोंको धारण कर रखता है, उसी सुधीको व्रतीपुरुष दूसरी व्रतप्रतिमाका धारक व्रती कहते हैं ॥ ५४ ॥

३ जो श्रावक इन्द्रियरूपी घोड़ोंको दमन करके प्रिय अप्रिय और मित्र शत्रुमें समताभाव रखताहुवा त्रिकाल सामायिक करता है, उसको प्रवीण पुरुषोंने तीसरी सामायिक प्रतिमाका धारक सामायिकी श्रावक कहा है ॥ ५५ ॥

४. जो नर भोगोपभोग पदार्थोंसे चित्त हटाकर आरंभरहित चारों पर्वोंमें (दो अष्टमी दो चतुर्दशीके दिन) हमेशा उपवास किया करता है, वही चौथी प्रोषधप्रतिमाका धारक विद्वानोंका प्यारा प्रोषधी श्रावक है ॥ ५६ ॥

५. जो श्रावक समस्त जीवोंकी करुणा करनेमें तत्पर होकर

समस्तप्रकारके सचित्त पदार्थोंको छोड़ प्रासुक अन्नजलादिक भोजनपान करता है, उसको यतियोंके नाथ गणधर भगवानने पांचवीं सचित्त त्यागप्रतिमाका धारक **सचित्तविरति** श्रावक कहा है ॥ ५७ ॥

६. जो मंदरागी धर्मात्मा दिवसमें स्वस्त्रीसेवनका त्याग करता है, उसको महत्पुरुषोंने धन्यवादके योग्य दिन मैथुनत्याग प्रतिमाका धारक **दिनमैथुनत्यागी** श्रावक कहा है ॥५८॥

७. जो श्रावक कामदेवरूपी महाशत्रुके गर्वको मर्दन करके देव मनुष्योंको जीतनेवाले स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाणोंसे नहिं जीता जाता, अर्थात् स्वस्त्रीका भी त्यागी होता है उसको सातवीं ब्रह्मचर्य्यप्रतिमाका धारक ब्रह्मचारी श्रावक कहते हैं ॥ ५९ ॥

८. जो धर्मात्मा श्रावक सर्वप्रकारकी जीवहिंसाके कारणोंको जानकर रागद्वेषादिको मंदकरके सर्वप्रकारके आरंभोंको छोड़ देता है; उसको यथार्थज्ञानके धारक पुरुषोंने आठवीं आरंभत्याग प्रतिमाका धारक **अनारंभी** श्रावक कहा है।६०।

९. जो श्रावक उत्कृष्ट कषायरूपी शत्रुवोंको मर्दनकरके जीवहिंसाके कारणरूप परिग्रहको जानकर तृणके समान त्याग कर देता है, उसको गणधरोंने नववीं परिग्रहत्यागप्रतिमाका धारक अपरिग्रही श्रावक कहा है ॥ ६१ ॥

१० जो विविधप्रकारके जीवोंको तापकारक अग्निके समान गृहकार्य्योंमें सम्मति देनेका त्याग कर देता है, उसको ज्ञानी।पुरुष दशमी अनुमतित्याग प्रतिमाका धारक—अनुमतित्यागी श्रावक कहते हैं ॥ ६२ ॥

११. जो जितेन्द्रिय श्रावक अपने लिये तयार किये हुये भोजनका मनवचनकायसे त्यागकरके मुनियोंके समान अनुद्दिष्ट प्रासुक भोजन करता है, उसको ग्यारहवीं उद्दिष्टत्यागप्रतिमाका धारक उद्दिष्टत्यागी श्रावक कहते हैं ॥ ६३ ॥

इसप्रकार जो क्रमसे प्रमादरहित एकादश पदोंको धारणकर श्रावकाचारको पालन करता है, वह पुरुष देवमनुष्यकी सुखसम्पदासे तृप्तचित्त हो समस्तकर्मोंको नष्टकरके सिद्धपदको (मोक्षको) प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

उपर्युक्त समस्त व्रतोंमें तारोंमें चन्द्रमाके समान समस्त प्रकारके तापोंको नष्ट करनेमें समर्थ, तत्वोंका प्रकाशक दैदीप्यमान एकमात्र सम्यक्त्व ही मुख्य (प्रधान) है ॥ ६५ ॥ संसाररूपी वृक्षको काटनेके लिये शस्त्र और सबको इष्टरूप यह सम्यक्त्व निसर्गज और अधिगमज भेदसे दो प्रकारका कहा गया है. तत्वोपदेशके विना ही उत्पन्न होनेवाला सम्यक्त्व तो निसर्गज कहलाता है और जिनागमका अभ्यास करनेसे अर्थात् परोपदेशसे उत्पन्न होनेवाला सम्यक्त्व अधिगमज कहलाता है ॥ ६६ ॥ इसके सिवाय ज्ञानचारित्रकी शुद्धि करनेवाला, भवभ्रमणका ध्वंस करनेवाला, व मनोवांछित सुखका देनेवाला यह सम्यक्त्व क्षायिक शामिक(औपशमिक) और वेदक (क्षायोपशमिक) भेदसे तीन प्रकारका है ॥ ६७ ॥ इस सम्यक्त्वरूपी रत्नको हरनेवाले अथवा इस धर्मरूपी वृक्षको काटनेकेलिये कुठारके समान प्रथमके चार कषाय (अनंतानुवंधिक्रोध अनंतानुवंधिमान अनन्तानुवंधिमाया और अनन्तानुवंधिलोभ) और

मिथ्यात्व सम्यक्त्व और मिश्र ये तीन दर्शनमोहिनीकी प्रकृतियें, इसप्रकार सात प्रकृतियें हैं ॥ ६८ ॥ सो जिस समय जीवोंके इन सातों प्रतिबंधक प्रकृतियोंके नष्ट होनेसे मेघपटलोंके अभावसे समस्त अंधकारको नष्टकरनेवाले सूर्य्यविम्बके समान जो सम्यक्त्व प्रगट होता है. वह सबसे श्रेष्ठ और शुद्ध क्षायिकसम्यक्त्व है. और यह सम्यक्त्व उत्पन्न होनेपर पीछे कभी नष्ट नहिं होता है तथा जो इन सातों प्रकृतियोंके शमन होनेसे उत्पन्न होता है, उसको शामिकसम्यक्त्व कहते हैं यह सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त ही रह सक्ता है और जो इन सातों प्रकृतियोंके कुछ क्षय और कुछ शमन होनेसे उत्पन्न होता है उसको वेदकसम्यक्त्व तथा मिश्र वा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ॥ ६९–७० ॥ जो सम्यग्दृष्टि जिनमतके तत्त्वोंमें शंका नहीं करै (१) सांसारिक सुखोंकी वांछा नहिं करै (२) धर्मात्मा रोगी दरिद्री आदिक जैनोंसे ग्लानि नहिं करै (३) कुदेव कुगुरु और कुधर्ममें विशुद्धचित्त हो मोहको (अज्ञानभावको) प्राप्त न होय (४) संयमी मुनिश्रावकोंके दोषोंको छिपावै (५) अपने तथा परके पवित्र चित्तमें स्थिरता करै (६) धर्मात्माओंसे शल्यरहित वात्सल्य रक्खै (७) अहिंसा धर्मकी महिमा (प्रभावना) वढावै (८) संवेग (संसारसे भयभीत) होकर (९) वैराग्यरूप (१०) मन्दकषायी रहै (११) अपनी निंदा करै (१२) अपनेको प्राप्त हुये दोषोंकी निंदा करै (१३) पंचपरमेष्ठीमें नित्यप्रति भक्ति करै (१४) दयारूपी स्त्रीसे ही आलिंगन करनेमें अपनी इच्छा रक्खै (१५) समस्त जीवोंमें मैत्रीभाव

रक्खै (१६) चारित्रधारियोंको (गुणाधिक्य पुरुषोंको) देखकर प्रमोदित हो (१७) विपरीत चेष्टावालोंसे मध्यस्थ रहै (१८) और सांसारिक कदाचारोंसे विरक्त रहै (१९) वही धीर पुरुष व्रतरूपी धान्यके बीजभूत, दीनोंको दुर्लभ, मनोवांछित सुखोंके देनेवाले, विद्वानोंकर पूजनीय, सम्यक्त्व-रूपी रत्नको विशुद्ध (निर्मल) करता है और उसी पुरुषका जन्म प्रशंसा करनेयोग्य है ॥ ७१-७२-७३-७४-७५- ॥ इस जगतमें सम्यक्त्वके समान कोई भी हितकारी, आत्मीय, परमपवित्र और उत्तम चारित्र नहीं है ॥ ७७ ॥ जिसपुरुषके सम्यक्त्व हैं, वही पंडित, श्रेष्ठ, कुलीन और दीनतारहित है ॥ ७७ ॥ जो सम्यक्त्वधारी उदार पुरुष है, वे महाकान्ति ज्ञान कीर्ति और तेजके धारक कल्पवासी देवोंके सिवाय हीन विभूतिवाले अन्य देवोंमें कदापि उत्पन्न नहिं होते ॥ ७८ ॥ जो सम्यग्दृष्टि भव्य है, सो पहिले नरकसे आगें किसी अन्य नरकमें नहिं जाता—स्त्रीपणे और नपुंसकपणेको भी प्राप्त नहिं होता, और न वह पूज्य पुरुप अपूज्य पुरुषोंमें प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ जो भव्य कमसे कम अन्त मुहूर्त्त ही सम्यक्त्वरत्नको धारण करलेता है, वह अनन्त अपार संसारको शीघ्र ही तर जाता है ॥ ८० ॥ इसप्रकार त्रिभुवनके वंधु जिनमतिनामा मुनिकी निर्दोष तत्त्वोंको प्रकाश करनेवाली, विद्वानोंकर पूजनीय और पवित्र वाणीको वह खेचरपुत्र पवनवेग अपने चित्तमें धारण करके महाहर्षको प्राप्त हुवा ॥ ८१ ॥ जिसप्रकार निपुत्री पुत्रकी प्राप्तिसे, स्त्रीवियोगी स्वस्त्रीको प्राप्त होनेसे, अंधा नेत्रोंके

प्राप्त होनेसे, रोगी नीरोगताको और निर्धन खजानेको पा· कर हर्षित होता है. उसीप्रकार पवनवेग भी व्रतको धारणकर अतिशय प्रमोदको प्राप्त हुवा ॥ ८२ ॥ तत्पश्चात् वह पवनवे- ग मुनिमहाराजको नमस्कारपूर्वक कहने लगा कि—हे मुने ! आज मेरे समान कोई भी धन्य नहीं है, जो नरकरूपी कूपमें पड़ता हुवा आपके बचनरूपी आलम्बनको प्राप्त हुवा ॥८३॥ जो नर आपके वचनोंको सुनता है, वह भी मनोवांछित फलको प्राप्त होता है, तो जो एकाचित्त हो आपके बचनोंके अनु- सार चलता है; उसका फल कैसा उत्तम होगा सो कहनेमें कोई भी समर्थ नहीं है ॥८४॥ जो मनुष्य आपके बचनोंको सुनकर कुछ भी नहिं करते, वे निश्चयकरके मनुष्य नहीं हैं क्योंकि रत्नभूमिमें प्राप्त होकर पशु ही खाली हाथों आता है, मनुष्य कदापि खा- लीहाथ नहिं आता ॥ ८५ ॥ इसप्रकार वह पवनवेग निर्दोष वचनोंको कहकर व्रतसमितिवाले मुनिसमूहसहित केवली भ· गवानको प्रीतिपूर्वक नमस्कार करके अपने मित्र मनोवेग· सहित विजयार्द्ध पर्वतपर अपने घर जाता हुवा ॥ ८६ ॥ उस पवनवेगको जैनधर्मावलंबी देखकर मनोवेग वहुत ही हर्षित हुवा, सो नीति ही है कि अपने किये हुये परिश्रमको सफल होनेपर ऐसा कौन पुरुष है कि जिसके हृदयमें प्रमोद न हो? ॥ ८७ ॥ तत्पश्चात् मनोहर आभूषणोंके धारक वे दोनों मित्र चारप्रकारके पवित्र श्रावकधर्मको हर्षके साथ धारण करके परस्पर महाप्रीतिरूपी वंधनसे अपने २ चित्तको वांधेहुये सुखसे अपना समय विताने लगे और—॥ ८८ ॥ अनेक आभूषण पहरेहुये स्फुरायमान रत्नोंके समूहकर शोभित अपने विमा-

नमें बैठकर देवमनुष्योंके राजा इंद्र और चक्रवर्त्तियोंकर पूजनीय मनुष्यक्षेत्रोंके (अढाई द्वीपमें) कृत्रिमाकृत्रिम समस्त जिनमंदिरोंमें स्थित जिनप्रतिमाओंकी निरन्तर भक्ति पूजा वंदना करते हुये तिष्ठे. सो ठीक ही है. शुद्धज्ञानके धारक सत्पुरुष अपने हितकार्य्योंमें कदापि प्रमादी नहिं होते ॥८९॥ जैसे उस विस्तृतकीर्त्ति पवनवेगने लीलामात्रसे दो दिनमें ही देव मनुष्योंकर पूजनीय अपने सम्यग्दर्शनको चन्द्रमाके समान उज्वल किया उसी तरह विस्तृत कीर्तिवाले अमितगत्याचार्य्यने अपने इस काव्यकी दो मासमें ही दोषरहित रचना की ॥ ९० ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्य-विरचित-धर्मपरीक्षासंस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें बीसवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ २० ॥

अथ प्रशस्तिः ।

श्रीमाथुर संघके मुनियोंमें श्रेष्ठ, सिद्धान्त समुद्रके पारगामी कषायोंको नष्ट करनेके उपायोंमें चतुर और आचार्य्योंमें गण्यमान ऐसे एक वीरसेन नामके आचार्य्य हुए ॥ १ ॥ उनके शिष्य, उदयाचलसे सूर्य्यके समान नष्ट कियी है समस्त अंधकार (अज्ञान) की प्रवृत्ति जिनोंने, लोकमें ज्ञानरूपी प्रकाशको करनेवाले, सत्पुरुषोंके प्यारे, धीरताके कारण नष्ट किये हैं समस्त दोष जिनोंने ऐसे, देवसेन नामक आचार्य्य हुए ॥ २ ॥ उनके शिष्य, पदार्थोंके समूहको प्रकाश करनेवाले, दोषरहित, मुनिगणोंके नाथ (संघकेनाथ) सूर्य्यसे दिनके समान भव्यरूपी कमल समूहको प्रफुल्लित करनेवाले

एक अमितगतिनामा आचार्य्य हुए ॥ ३ ॥ उन अमितगति महाराजके शिष्य, पवित्र धर्मके अधिष्ठाता, विभु, पार्वतीनाथके सदृश कामदेवको नष्ट करनेवाले, मनवचन कायको वशमें करनेवाले, और मुनि आर्जिका श्रावक श्राविकाके संघसे पूजित, ऐसे नेमिषेण नामक आचार्य्य हुए ॥ ॥ ४ ॥ उन नेमिषेण आचार्य्यके शिष्य, कोपानिवारी, शमदमधारी, प्रकर्षतासे नम्रताका है रस जिनमें, मद (गर्व) का दलनेवाले, मुनियोंमें श्रेष्ठ, शमन कर दिया है मन्मथ जिन्होंने, ऐसे माधवसेन नामा आचार्य्य हुएं ॥ ५ ॥ उन माधवसेनाचार्य्यके शिष्योंमें श्रेष्ठ, निर्दोष ज्ञानके धारक अमितगति नामा चतुर शिष्यने धर्मकी परीक्षा करनेकेलिये सबको शरणरूप यह श्रेष्ठ धर्मपरीक्षा बनाई है ॥ ६ ॥ यह धर्मपरीक्षा मुझ अल्पज्ञने बनायी है, इसमें जो कुछ विरुद्ध वाक्य हो, उन्हें स्वपरशास्त्रके जाननेवाले शोधकर ग्रहण करो. क्या ऊंची बुद्धिके धारक विद्वज्जन सारासार समझकर तुषको छोड सस्य समूहको ही ग्रहण नहिं करते ? ॥ ॥ ७ ॥ " प्राचीन कविता ही सुखदायक है नवीन कविता सुखदायक नहीं" बुद्धिमानोंको इसप्रकार कदापि नहिं समझना चाहिये वृक्षोंको प्रतिवर्ष नये नये फल आते हैं तो क्या वे पहिले वर्षोंके फलोंसरिखे श्रेष्ठ व मिष्ट नहिं होते ॥८॥ तथा कोई कोई " पुराणोंको छोड़कर पुराणोंसे उत्पन्न हुवा यह ग्रन्थ ग्रहण करनेमें नहिं आ सक्ता " सो यह कहना भी ठीक नहीं. क्योंकि सुवर्णमयी पत्थरसे निकाला हुवा सोना, क्या महामूल्य से नहिं बिकता ? ॥ ९ ॥ मैंने इस पुस्तकमें जो अन्यमतके

शास्त्रोंका विचार किया है, सो बुद्धिका गर्व प्रगट करके अथवा पक्षपातसे नहिं किया है; किन्तु जो धर्म शिवसुखका देनेवाला है, केवल मात्र उस धर्मकी परीक्षा करनेके निमित्त ही यह परिश्रम किया गया है ॥ १० ॥ विष्णु महादेव आदिने तो मेरा कुछ हरण नहिं कर लिया और जिनेन्द्र भगवान्‌ने मुझे कुछ दे नहिं दिया, जो विष्णु आदिका खंडन करके जिनेन्द्रकी स्तुति करूं. क्योंकि विद्वज्जन निरर्थक क्रिया नहिं करते ॥ ११ ॥ मेरा तो केवलमात्र यही कहना है कि जो सत्पुरुष हैं वे कुगतिकी प्रवृत्ति करानेवाले मार्गको (धर्मको) छोडकर सुगतिमें ले जानेवाले मार्गका (धर्मका)आश्रय करो जिससे नरकादि गतिमें जानेवालोंको समस्त अंगको आतापकारी महादुःख प्राप्त नहिं हो ॥ १२ ॥ जो भलेप्रकार निवेदन किये हुए हितको ग्रहण नहिं करते, वे अवश्य ही आगामी कालमें अनेक प्रकारके दुःखोंको प्राप्त होंगे. और जो निवारण करने पर कुमार्गमें नहिं रहते,वे भविष्यतमें दुःख नहिं पावैंगे ॥ १३ ॥ जैसे कड़वी औषध खाते समय दुःखदायक है परन्तु परिणाममें वांछित सुखको देती है, उसीप्रकार मेरा कहा हुवा यह कठोर वाक्य (शास्त्र) भविष्यतमें निश्चय करके सुखदायक होगा ॥ १४ ॥ हे विद्वज्जनो ! मेरे किये हुये इस ग्रन्थको विचार करके ग्रहण करोगे तो निश्चय करके अपने आप इसके शुभाशुभ पणेको जान जावोगे. यद्यपि निवेदन करनेसे सैंकड़ों मनुष्य रसको जान जाने हैं. परन्तु उसके स्पष्ट अनुभव (स्वाद) को कदापि नहिं भोगते ॥ १५ ॥ जिसके हृदयरूपी मंदिरमें मिथ्यात्वरूपी अन्धकारका नाश

एक अमितगतिनामा आचार्य्य हुए ॥ ३ ॥ उन अमितगति महाराजके शिष्य, पवित्र धर्मके अधिष्ठाता, विभु, पार्वतीनाथके सदृश कामदेवको नष्ट करनेवाले, मनवचन कायको वशमें करनेवाले, और मुनि आर्जिका श्रावक श्राविकाके संघसे पूजित, ऐसे नेमिषेण नामक आचार्य्य हुए ॥ ॥ ४ ॥ उन नेमिषेण आचार्य्यके शिष्य, कोपानिवारी, शमदमधारी, प्रकर्षतासे नम्रताका है रस जिनमें, मद (गर्व) का दलनेवाले, मुनियोंमें श्रेष्ठ, शमन कर दिया है मन्मथ जिन्होंने, ऐसे माधवसेन नामा आचार्य्य हुए ॥ ५ ॥ उन माधवसेनाचार्य्यके शिष्योंमें श्रेष्ठ, निर्दोष ज्ञानके धारक अमितगति नामा चतुर शिष्यने धर्मकी परीक्षा करनेकेलिये सबको शरणरूप यह श्रेष्ठ धर्मपरीक्षा बनाई है ॥ ६ ॥ यह धर्मपरीक्षा मुझ अल्पज्ञने बनायी है, इसमें जो कुछ विरुद्ध वाक्य हो, उन्हें स्वपरशास्त्रके जाननेवाले शोधकर ग्रहण करो. क्या ऊंची बुद्धिके धारक विद्वज्जन सारासार समझकर तुषको छोड सस्य समूहको ही ग्रहण नहिं करते ? ॥ ॥ ७ ॥ " प्राचीन कविता ही सुखदायक है नवीन कविता सुखदायक नहीं" बुद्धिमानोंको इसप्रकार कदापि नहिं समझना चाहिये वृक्षोंको प्रतिवर्ष नये नये फल आते हैं तो क्या वे पहिले वर्षोंके फलोंसरिखे श्रेष्ठ व मिष्ट नहिं होते ॥८॥ तथा कोई कहे " पुराणोंको छोड़कर पुराणोंसे उत्पन्न हुवा यह ग्रन्थ ग्रहण करनेमें नहिं आ सक्ता " सो यह कहना भी ठीक नहीं. क्योंकि सुवर्णमयी पत्थरमें निकाल्या हुवा सोना, क्या महामूल्य में नहिं बिकता ? ॥ ९ ॥ मैंने इस पुस्तकमें जो अन्यमतके

शास्त्रोंका विचार किया है, सो बुद्धिका गर्व प्रगट करके अथवा पक्षपातसे नहिं किया है; किन्तु जो धर्म शिवसुखका देनेवाला है, केवल मात्र उस धर्मकी परीक्षा करनेके निमित्त ही यह परिश्रम किया गया है ॥ १० ॥ विष्णु महादेव आदिने तो मेरा कुछ हरण नहिं कर लिया और जिनेन्द्र भगवान्ने मुझे कुछ दे नहिं दिया, जो विष्णु आदिका खंडन करके जिनेन्द्रकी स्तुति करूं. क्योंकि विद्वज्जन निरर्थक क्रिया नहिं करते ॥ ११ ॥ मेरा तो केवलमात्र यही कहना है कि जो सत्पुरुष हैं वे कुगतिकी प्रवृत्ति करानेवाले मार्गको (धर्मको) छोडकर सुगतिमें ले जानेवाले मार्गका (धर्मका)आश्रय करो जिससे नरकादि गतिमें जानेवालोंको समस्त अंगको आतापकारी महादुःख प्राप्त नहिं हो ॥ १२ ॥ जो भलेप्रकार निवेदन किये हुए हितको ग्रहण नहिं करते, वे अवश्य ही आगामी कालमें अनेक प्रकारके दुःखोंको प्राप्त होंगे. और जो निवारण करने पर कुमार्गमें नहिं रहते,वे भविष्यतमें दुःख नहिं पावेंगे ॥ १३ ॥ जैसे कड़वी औषध खाते समय दुःखदायक है परन्तु परिणाममें वांछित सुखको देती है, उसीप्रकार मेरा कहा हुवा यह कठोर वाक्य (शास्त्र) भविष्यतमें निश्चय करके सुखदायक होगा ॥ १४ ॥ हे विद्वज्जनो ! मेरे किये हुये इस ग्रन्थको विचार करके ग्रहण करोगे तो निश्चय करके अपने आप इसके शुभाशुभ पणेको जान जावोगे. यद्यपि निवेदन करनेसे सैंकड़ों मनुष्य रसको जान जाते हैं. परन्तु उसके स्पष्ट अनुभव (स्वाद) को कदापि नहिं भोगते ॥ १५ ॥ जिसके हृदयरूपी मंदिरमें मिथ्यात्वरूपी अन्धकारका नाश

करनेवाला जिनेन्द्र मतरूपी दीपक जलता है, वही पुरुष वि-
द्वानोंकर माने हुए वस्तुके निर्दोष स्वरूपको जानता है. तथा
वही पुरुष समस्त कलंकोंको नाश करनेवाली उज्वल कीर्त्ति-
को पाता है ॥ १६ ॥ जो पुरुष अपने और परके मतका
तत्त्व दिखानेवाले पवित्र शास्त्रको भक्तिपूर्वक कहता है,अथवा
एकचित्त होकर सुनता है, वह पुरुष समस्त तत्त्वोंको जानकर
केवल ज्ञान ही है नेत्र जिसके, ऐसे देवोंकर पूजनीय पदको
प्राप्त होकर मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ अन्तमें
आचार्य्य आशीर्वाद देते हैं कि जगतमें निरन्तर सुखका
देनेवाला जैनधर्म विघ्नरहित होवो लोगोंमें शान्ति रहो, राजा-
लोग न्यायसे पृथिवीका पालन करो, और साधुजन
हैं, वे यम नियमरूपी बाणोंसे, कर्मरूपी शत्रुवोंको
नष्ट कर सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त होवो और समस्त प्राणीजन
हैं, वे मिथ्या ज्ञानको नष्ट करके अपने हितमें लवलीन होवो॥१८
जितने दिनतक सुपयोधरा (निर्मल जलवाली), मीन ही
हैं नेत्र जिनके तथा उच्च शब्द करनेवाली नदीरूपी स्त्रियें
अपने लहररूपी हाथोंसे समुद्ररूपी भरतारको आलिंगन
करैगी, उतने ही दिनतक धर्माधर्मके ज्ञाता विद्वानोंकर प्रस-
न्नताके साथ व्याख्यान होता हुवा, यह अनघ निर्दोष शास्त्र
इस पृथिवीपर वर्त्तमान रहो ॥ १९ ॥ अन्य मतके निषेध
करनेवाला जिनेन्द्रधर्मकी अपरिमाण युक्तवाला यह धर्म-
परीक्षा नामक ग्रन्थ विक्रमराजाके १०७० एक हजार
सत्तरकी सालमें पूर्ण हुवा ॥ २० ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।